डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कमजोर की मजबूती

राजकिशोर

मेरी समझ में नहीं आता कि कमजोर प्रधानमंत्री कहे जाने से डॉ. मनमोहन सिंह दुखी क्यों होते हैं। या, कांग्रेस यह साबित करने में क्यों तुली हुई है कि उनका प्रधानमंत्री कमजोर नहीं, मजबूत है। ऐसा लगता है कि ये लोग भारत में कमजोर की स्थिति को वाकई कमजोर समझते हैं। यह सच्चाई से कई किलोमीटर दूर है।

इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि मनमोहन सिंह इसीलिए प्रधानमंत्री बने क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से वे एक कमजोर व्यक्ति थे। आज भी कांग्रेस उन्हें अपना अगला प्रधानमंत्री घोषित करके प्रसन्न है, तो इसीलिए कि वे राजनीतिक दृष्टि से कमजोर आदमी हैं। जब सोनिया गांधी ने तय कर लिया कि उन्हें प्रधानमंत्री पद की शपथ नहीं लेनी है, तो उन्होंने कांग्रेस के ब्वायज में नजर दौड़ाई कि उनमें कौन ऐसा है, जिसे प्रधानमंत्री बनाने से बहुत ज्यादा बदनामी नहीं होगी और जो सचमुच प्रधानमंत्री बनने की कोशिश नहीं करेगा। इस नुस्खे के सबसे करीब मनमोहन सिंह दिखाई पड़े और उन्हें प्रधानमंत्री की कुरसी पर बैठा दिया गया। जो बात पूरा देश जानता है, उसे स्वीकार लेने से मनमोहन सिंह का बड़प्पन ही सामने आता।

कहने की जरूरत नहीं कि मनमोहन सिंह, प्रधानमंत्री के रूप में, कांग्रेस की नजर में नहीं, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की नजर में पूरी तरह से खरे उतरे। उन्होंने अपना कोई राजनीतिक व्यक्तित्व बनाने की कोशिश नहीं की। यहाँ तक कि उन्होंने लोक सभा का चुनाव भी नहीं लड़ा, जो किसी भी ऐसे प्रधानमंत्री की, जो लोक सभा का सदस्य नहीं है, पहला लोकतांत्रिक फर्ज है। जार्ज फर्नांडिस ने ठीक ही कहा कि मैं अभी ऐसा नाकारा नहीं हो गया हूँ कि राज्यसभा में जा कर बैठूँ। जैसे शेर जंगल में शोभा देता है, किसी अफसर के ड्राइंग रूम में नहीं, वैसे ही सच्चा राजनेता लोक सभा में शोभा देता है, राज्य सभा में नहीं। पर हमारे विद्वान प्रधानमंत्री ने, जो लोकतंत्र के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध हैं और दूसरों को भी इतना ही प्रतिबद्ध रहने की प्रेरणा देते हैं, अपने मामले में कभी भी लोक सभा और राज्य सभा में फर्क नहीं किया। आजकल उनके चुनावी भाषणों से पता चलता है कि वे समानता के कितने बड़े पैरोकार हैं। महापुरुष उपदेश देने से पहले उदाहरण पेश करते हैं।

मनमोहन सिंह ने सिर्फ एक बार अपनी मजबूती दिखाई। उन्होंने ऐसा क्यों किया, यह तब तक रहस्य रहेगा, जब तक कोई खोजी पत्रकार इस रहस्य को भेदने के लिए कमर नहीं कस लेता। मामला अमेरिका से परमाणु करार का था। विपक्ष इसका समर्थन नहीं कर रहा था। जिन वामपंथियों के समर्थन के बल पर मनमोहन की सरकार टिकी हुई थी, वे उसका उग्र विरोध कर रहे थे। यहाँ तक कि कांग्रेस पार्टी का बहुमत भी इस परमाणु करार को लेकर असमंजस में था। सोनिया गांधी भी कुछ दिनों तक चुप रहीं। अकेले मनमोहन अड़े हुए थे कि यह करार नहीं हुआ

तो मैं प्रधानमंत्री पद छोड़ दूँगा। कमजोर प्रधानमंत्री की इस मजबूती से कांग्रेस दहल गई। वाम मोर्चा ने समर्थन वापस ले लिया, सांसदों को सार्वजनिक तौर पर खरीदा गया और लोक सभा में एक करोड़ रुपए के नोट उछाले गए। यह सब इसलिए सहन किया गया, क्योंकि सोनिया गांधी के पास प्रधानमंत्री पद के लिए दूसरा कोई विश्वस्त आदमी नहीं था। कमजोर की मजबूती का यह अकेला उदाहरण नहीं है। हमारे पुरखे बहुत पहले बता गए हैं कि दुधारू गाय की लात भी सही जाती है।

दुनिया का तौर-तरीका यही है कि टिकता वही है जो कमजोर है। डार्विन का सिद्धान्त कि जो सबसे दुरुस्त होता है, इस मामले में फेल है। या, शायद कमजोर होना ही सामाजिक संरचना में दुरुस्त होने की निशानी है। कहते हैं कि जब तूफान आता है, तो बड़े-बड़े शक्तिशाली पेड़ जमीन पर आ गिरते हैं, पर विनम्र दूब का कुछ नहीं बिगड़ता। इसीलिए दुनियादार लोग यह सीख देते हैं कि जमे रहना है, तो दूब बन कर रहो। कारखाने में, दफ्तर में, दुकान में, संस्थान में - तुम जहाँ भी काम करते हो, दूब की-सी विनम्रता बनाए रखो। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। जो चीखते हैं, चिल्लाते हैं, अहंकार दिखाते हैं, वे बहुत जल्द खलास हो जाते हैं। गुलामी के सर्वव्यापक माहौल में उनके लिए कोई जगह नहीं है। भारत के सभी संस्थान इसी नियम पर चलते हैं। राजनीतिक दलों में यही संस्कृति पाई जाती है, तभी ये दल टिके हुए हैं। कांग्रेस और दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों पर यह बात सबसे ज्यादा लागू होती है। संस्थाएँ भी वही टिकी हुई हैं जहाँ के अधिकांश लोग अधीनस्थता के इस सिद्धांत का पालन करते हैं। इसलिए मनमोहन सिंह को यह घोषित करने में देर नहीं करनी चाहिए कि हाँ, मैं कमजोर आदमी हूँ और भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व करता हूँ, क्योंकि देश ऐसे ही कमजोर व्यक्तियों की मजबूती के बल पर चल रहा है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

क्या हालचाल है?

राजकिशोर

वह मेरे प्रिय मित्रों में एक था। बहुत दिनों के बाद उससे मुलाकात हुई थी। उसने पूछा, क्या हालचाल है? मैंने जवाब दिया, सब ठीक-ठाक है। वह हँसने लगा, खाक ठीक-ठाक है? सुना, पिछले साल तुम्हारे छोटे भाई की मृत्यु हो गई। मैंने कहा, हाँ, उसकी दोनों किडनियाँ फेल हो गई थीं। वह थोड़ा गंभीर होते हुए बोला, और तुम्हें अपना मकान बेचना पड़ा? दिल्ली छोड़ कर तुम गाजियाबाद चले गए हो। मैंने स्वीकार किया, हाँ, दिल्ली का मकान अच्छे दामों पर जा रहा था। हमने सोचा, इसे बेचकर सस्ते में गाजियाबाद में मकान ले लें। रिटायर होने के बाद कहीं भी रहो, क्या फर्क पड़ता है। उसने आगे पूछा, सुना है, भाभी जी आजकल चल-फिर नहीं पातीं। बेड पर ही पड़ी रहती हैं। मुझे कहना पड़ा, दरअसल, उसका गँठिया बहुत बढ़ गया है। कोई भी दवा काम नहीं कर रही है। इस पर भी वह शांत नहीं हुआ। पूछा, और तुम्हारा बेटा जर्मनी चला गया है। वहीं उसने शादी भी कर ली है। मैंने स्वीकार किया, तुम्हारी सूचना सही है। छह-छह महीने तक उसका ईमेल नहीं आता। आता भी है, तो मुख्तसर-सा - उम्मीद है, आप लोग मजे में हैं। दफ्तर से छुट्टी नहीं मिलती। इंडिया आने का प्लान बनाता रह जाता हूँ।

मित्र हँसने लगा, फिर भी तुम कहते हो, सब ठीक-ठाक है? लानत है तुम पर। मैंने जवाब दिया, यार, इतने दिनों के बाद तो मिले हो। मैंने सोचा, अपनी मुसीबतें बता कर तुम्हें बोर क्यों करूँ। थोड़ी देर बाद चलते-चलते उसने कहा - तुमने मेरा हाल नहीं पूछा? मैंने कहा, चुस्त-दुरुस्त आदमी हो। सब ठीक-ठाक ही होगा। वह बोला, अभी कुछ दिन दिल्ली में ही हूँ। सारा किस्सा अगली मुलाकात में बताऊँगा। अभी इतना ही जान लो कि हैदराबाद वाली मेरी नौकरी छूट गई है। तीन महीने से कोशिश कर रहा हूँ, पर नई नौकरी नहीं खोज पाया हूँ। इसी सिलसिले में दिल्ली आना हुआ। पर यहाँ भी गुंजाइश दिखाई नहीं पड़ती।

बाई-बाई करता हुआ वह चला गया। उसके लिबास और चलने के अंदाज से लगा जैसे वह किसी फैशन शो की अध्यक्षता करने जा रहा हो।

यह हम दो मित्रों की मुलाकात थी। सोचो तो यह किन्हीं दो मित्रों की मुलाकात हो सकती है। थोड़ा और सोचो, तो यह किन्हीं दो व्यक्तियों की मुलाकात हो सकती है। ऐसी मुलाकातों की विडंबना यह है कि जब क ख से पूछता है कि क्या हालचाल है, तो क्या वह वाकई ख का हालचाल जानना चाहता है? ऐसा नहीं है कि उसे ख से कोई मतलब नहीं है। लेकिन जब क उसका हालचाल पूछता है, तो मईज एक शिष्टाचार निभा रहा होता है।

जरा सोचिए, जवाब में आप अपना पूरा हालचाल बताने लग जाएँ, तो पूछने वाले पर क्या गुजरेगी? अगर वह कुछ कम शिष्ट हुआ तो कहेगा, मैं अभी जरा जल्दी में हूँ। इस बारे में बाद में बात करूँगा। अगर वह शिष्ट हुआ, तो

बात-बात पर 'अच्छा! अच्छा!' कहता रहेगा और थोड़ी देर बाद उसके चेहरे पर यह लिखा हुआ मिलेगा कि यार, कब तक बोर करोगे? वह बहुत शिष्ट हुआ, तो काफी देर तक धैर्यपूर्वक सुनता रहेगा, लेकिन सिर्फ सुनता ही रहेगा। वास्तव में उसका ध्यान कहीं और भटक रहा होगा। इसकी कल्पना आप स्वयं कर लें कि वह अशिष्ट हुआ, तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी। सभी शिष्ट लोग एक जैसे होते हैं, पर अशिष्ट लोगों में विविधता दिखाई देती है। शिष्टाचार का एक शास्त्र है, पर अशिष्टता हमेशा अराजक होती है। एक को अर्जित करना होता है और दूसरे का आविष्कार।

इसीलिए जब हालचाल पूछे जाने पर कोई 'सब ठीक-ठाक है' कहता है, तो वह प्रश्न से पलायन नहीं करना चाहता है। वह जानता है कि आप सचमुच उसका हालचाल नहीं जानना चाहते, बस शिष्टाचार निभा रहे हैं। इसीलिए 'सब ठीक-ठाक है' कह कर वह शिष्टाचार का जवाब शिष्टाचार से देता है। वह जानता है कि अगर वह सचमुच अपना हाल-चाल बताने लगा, तो आप उसे छोड़ कर उठ भागेंगे। समझिए कि वह एक तरह से आप पर करुणा करता है। वैसी ही करुणा, जैसी आपने उसके प्रति की थी।

बहुत कम लोग होते हैं, जो 'सब कुछ ठीक-ठाक होने' का दावा कर सकते हैं। सच पूछिए तो किसी का हाल ठीक-ठाक नहीं होता। इस धरती पर कोई ऐसा जूता नहीं बना जो कहीं न कहीं काटता न हो। दिनकर के शब्दों में कहा जाए तो, आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है; उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता, और फिर बेचैन हो जगता न सोता है। धरती को मृत्यु लोक कहने के बजाय अगर चिन्ता लोक कहा जाए, तो ज्यादा सही होगा। लेकिन स्वर्ग भी चिन्ता-विहीन लोक है, इसका प्रमाण नहीं मिलता। वहाँ भी सत्ता खोने की चिन्ता होती है, एक-दूसरे से प्रतिद्वंद्विता होती है और बीच-बीच में शान्ति भंग होने लगती है। अप्सराएँ भी इन समस्याओं से मुक्त नहीं हैं। उर्वशी, मेनका और रंभा की कथाओं से तो यही जाहिर होता है। आजकल देवताओं के बीच क्या चल रहा है, इसकी खबर नहीं आती, इसलिए उनके जीवन के बारे में हम भ्रम में पड़े रहते हैं। वैसे, अगर 'इतिहास का अन्त' मुहावरा किसी सन्दर्भ में सत्य है, तो देवताओं के सन्दर्भ में ही। वे चिर काल तक एक ही स्थिति में रहते हैं। अमेरिका अपने को पृथ्वी का एकमात्र देवता समझता है, क्या इसीलिए उसने इतिहास के अन्त की घोषणा कर दी है? लेकिन उसका अपना हालचाल ही कौन-सा ठीक है?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कल्याण सिंह की अंतरात्मा

राजकिशोर

संवाददाताओं को संबोधित करने के बाद कल्याण सिंह घर लौटे, तो सीधे बेडरूम में गए। वहाँ उनकी अंतरात्मा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। कल्याण को देखते ही वह उनकी ओर लपकी जैसे कोई लंबे समय से विरह की मारी युवती अपने प्रिय की वापसी पर उसकी ओर लपकती है। हालाँकि कल्याण सिंह की अंतरात्मा जवान नहीं रह गई थी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ दिखाई पड़ने लगी थीं और उसे दिखने भी कम लगा था। पर नाक और कान पहले से ज्यादा सजग हो गए थे। वह सब कुछ सुनने और सूँघने की कोशिश करती थी। इससे उसे जो सामग्री मिलती, उसके कारण वह बहुत चिंतित रहती थी और कल्याण सिंह से बातचीत करने का मौका ढूँढ़ती रहती थी। कल्याण सिंह थे कि अकसर उसे धता बता कर कहीं निकल जाते थे। उनकी अधेड़ अंतरात्मा घर में अकेले बैठी कुढ़ती रहती थी। कभी-कभी उसका मन करता था कि वह कल्याण सिंह को हमेशा के लिए छोड़ कर गोमती में छलाँग लगा दे। पर अंतरात्माएँ बेवफा नहीं होतीं। सो वह उस समय का इंतजार करती रहती थी जब कल्याण सिंह सुबह के भटके की तरह शाम को घर लौट आएँगे।

आज कुछ वैसा ही वाकया हुआ। कल्याण सिंह ने अपनी अंतरात्मा को दोनों हाथों से हौले से उठाया और छाती से लगा लिया। अंतरात्मा के सामने के तीन दाँत टूट चुके थे, इसके बावजूद उसकी हँसी में सम्मोहन बरकरार था। उसने कल्याण से कहा, 'मुझे हमेशा यह लगता रहा है कि तुम मुझे सच्चे दिल से प्यार करते हो। तुम लौट आए, तो मेरी सारी शिकायत जाती रही।'

कल्याण सिंह ने अपनी अंतरात्मा को रिझाते हुए कहा, 'मुझ पर तुम्हारा बोझ बढ़ता जा रहा था। आज मैंने सारा हिसाब चुकता कर दिया। मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण तुम दोनों ही हो। एक वह और एक तुम। उसके साथ तो मैंने हर हाल में वफा की, पर तुम्हारा दर्द कचोटता रहता था। आज मैंने सब कुछ स्वीकार कर अपने को हलका कर लिया।'

अंतरात्मा कुछ क्षणों के लिए ठिठकी, फिर बोली, 'उसकी बात छोड़ो। मैं बच्ची नहीं हूँ। दिल के मामलों में कुछ भी बोलना मैंने छोड़ दिया है। बस दूर से देखती रहती हूँ कि क्या गुल खिल रहा है। मुझे पता है कि यही वह जगह है जहाँ अंतरात्मा को दरवाजे के बाहर छोड़ दिया जाता है। लेकिन तुमने ऐसा क्या किया कि मेरा दूसरा बोझ हलका हो गया?'

कल्याण सिंह ने मुसकराते हुए कहा, 'आज मैंने सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लिया कि बाबरी मस्जिद के गिरने की पूरी नैतिक जिम्मेदारी मैं लेता हूँ।'

‘लेकिन यह नैतिक जिम्मेदारी तो तुम पहले ही स्वीकार कर चुके थे। बावरी मस्जिद गिरते ही तुमने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा नहीं दे दिया था?’

‘वह नैतिक जिम्मेदारी नहीं, राजनीतिक जिम्मेदारी थी। मुख्यमंत्री का पद नैतिक पद नहीं, राजनीतिक पद होता है। इसलिए मेरा वह इस्तीफा राजनीतिक था। असली नैतिक जिम्मेदारी तो मैं अब स्वीकार कर रहा हूँ। अब मुसलमान मुझ पर भरोसा कर सकते हैं।’

अंतरात्मा अचानक जोर-जोर से हँसने लगी। इससे उसे खाँसी आ गई। कल्याण सिंह ने उसे पास रखे गिलास से पानी पिलाया और उसकी पीठ सहलाई। खाँसी रुक गई, तो अंतरात्मा कल्याण सिंह की गोद में लेटते हुए गुनगुनाने लगी, ‘सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है।’

कल्याण सिंह लजा गए। मुसकराते हुए बोले, ‘खुदा से ही तो समझौता करके आ रहा हूँ। अब उसकी गाज गिरेगी तो आडवाणी, राजनाथ सिंह वगैरह पर। मैं तो मुक्त हो गया।’

अंतरात्मा गोद से छिटक कर पलंग पर सीधे बैठ गई। बोली, ‘मुझसे मत बनो। मैं तुम्हें बचपन से जानती हूँ। तुम्हें सत्ता चाहिए। वह चाहे रामलला की कृपा से मिले या खुदा की मेहरबानी से। इसके लिए तुम मस्जिद भी तुड़वा सकते हो, चर्च भी और मंदिर भी। तुम हमेशा अपने चक्कर में रहते हो। मेरी बात तुमने कभी सुनी। इसी तरह कुढ़ते-कुढ़ते एक दिन कूच कर जाऊँगी।’

कल्याण सिंह पुचकारने लगे, ‘तुम्हारे साथ यही परेशानी है। जमाना बदल गया, मैं बदल गया, पर तुम नहीं बदली। मुलायम सिंह जी को देखो। उन्होंने किससे समझौता नहीं किया? कभी मायावती का हाथ पकड़ा, कभी कांग्रेस के साथ लेटे। कभी-कभी भाजपा की कलाई भी थाम लेते हैं। आज उन्हें मेरी जरूरत है। मुझे भी उनकी जरूरत है। तो साथ आने में बुराई क्या है?’

कल्याण सिंह की अंतरात्मा ने खिसियाई हुई आवाज में कहा, ‘मेरे सामने मुलायम सिंह का नाम मत लो। मैं तो फिर भी कुछ ठीक-ठाक हूँ। उनकी अंतरात्मा अधमरी हो चुकी है। एक दिन हजरतगंज के पास मिली थी। बोल रही थी -- ‘बहन, अब हद हो गई। मुलायम तो मेरे पास अब आता ही नहीं है। कहता है, चुपचाप एक किनारे पड़ी रहो। मैं राजनीति में हूँ। इसमें तुम्हारा कोई काम नहीं।’

कल्याण सिंह की अंतरामा की पीठ पर धौल जमाते हुए बोले, ‘फिर भी तुम्हारी आँख नहीं खुली! एक राज की बात बताता हूँ। इन दिनों सभी अंतरात्माओं का यही हाल है। इसलिए तुम्हें अफसोस नहीं करना चाहिए।’

कल्याण सिंह की अंतरात्मा ने तुनक कर कहा, ‘खबरदार जो मुझे छुआ। आज से मैंने अपने आपको विधवा मान लिया। अब मैं विधवा की तरह ही रहूँगी। तुम्हें जो करना है, शौक से करते रहो।’

तभी कल्याण सिंह का मोबाइल बज उठा। फोन सुनने के बाद कल्याण सिंह गंभीर हो गए। फोन करनेवाले से उन्होंने कहा, ‘रात को एक बज रहे हैं। फिर भी आता हूँ। आप लोग वहीं मेरा इन्तजार करें।’

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

किडनी चोर को रिहा करो

राजकिशोर

प्रिय प्रधानमंत्री जी,

मैं सिर्फ अपनी ओर से नहीं, हिन्दुस्तान के करोड़ों गरीब लोगों की ओर से यह पत्र लिख रहा हूँ। मुझे यह खबर पढ़कर अच्छा नहीं लगा कि डॉ. अमित कुमार को नेपाल में गिरफ्तार कर लिया गया। सच पूछिए तो मेरीआँखें भर आईं। एक परोपकारी व्यक्ति के साथ यह व्यवहार देश के भविष्य के बारे में शुभ संकेत नहीं देता। अमित कुमार ने ठीक ही कहा है कि वे निर्दोष हैं। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों से पूछ कर देखिए, वे भी यही कहेंगे। ऐसे व्यक्ति को किडनी चोर बता कर गिरफ्तार कर लेना न्यायसंगत नहीं है।

मेरा ख्याल है कि अमित कुमार आप ही के रास्ते पर चल रहे हैं, लेकिन अपने ढंग से। आप भी गरीबी हटाना चाहते हैं, अमित कुमार की ख्वाहिश भी यही है। आप प्रधानमंत्री हैं। इसलिए देश के करोड़ों लोगों की गरीबी के बारे में सोचते हैं। अमित कुमार सामान्य नागरिक हैं, वे अपने पूरे जीवन काल में दस-बीस हजार व्यक्तियों की ही गरीबी हटा सकते हैं। आपका नीतियों का परिणाम निकलने में समय लगता है। कभी-कभी समय लगता रहता है और परिणाम निकल ही नहीं पाता। इसके विपरीत, अमित कुमार का रास्ता इंस्टैंट दे और ले का है। इसलिए यह ज्यादा असरदार है। मेरा दृढ़ मत है कि यदि अमित कुमार की नीतियों को अपना लिया जाए, तो विदेशी मुद्रा का हमारा भण्डार कई गुना बढ़ सकता है और देश के एक बड़े हिस्से की गरीबी आनन-फानन में दफन हो सकती है।

दुनिया के सभी समृद्ध देशों में, भारत के समृद्ध वर्ग में भी, किडनी की माँग है। इस माँग में हर साल 22.65 की दर से वृद्धि हो रही है। इसके पहले कि किडनियों की सप्लाई में अफ्रीका का कोई देश आगे निकल जाए या चीन इसे अपने समाजवादी कार्यक्रम का हिस्सा बना ले, मैं हाथ जोड़कर आपसे यह कहना चाहता हूँ कि हमारे देश में इस नीति का कार्यान्वयन तुरन्त शुरू किया जाना चाहिए। हमारे ऋषि-मुनि यह रास्ता दिखा गए हैं। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे दी थीं। आज क्या हम किडनी भी नहीं दे सकते? हड्डियाँ दुबारा नहीं उगतीं। लेकिन किडनी तो हमारे पास दो-दो हैं। ईश्वर ने आँख, हाथ, कान, पैर, किडनी, फेफड़े - सब कुछ दो-दो दिए हैं, जबकि एक से ही आदमी का काम चल सकता है। जाहिर है, दूसरा स्पेयर है। इसे अपने पास रखो या बेच दो। इसलिए अपनी किडनी बेचना, अपनी एक आँख बेच देना - यह प्रत्येक व्यक्ति का फंडामेंटल अधिकार है। आप जिस अर्थनीति पर चल रहे हैं, उसमें बेचना सबसे फंडामेंटल कर्तव्य है। बेचो, वह सब बेचो, जो बिक सकता है। जमीन बेचो, पानी बेचो, खानें बेचो, नदियाँ बेचो, मजदूर बेचो, लाइसेंस बेचो, निर्णय करने का अधिकार बेचो। विदेशी जिस चीज पर नजर गड़ा दे, वह उसे तुरन्त बेच दो। वृद्धि दर बढ़ानी है कि नहीं? फिर इन्हें अपने पास रख कर क्या भुरता बनाना है?

विक्रयवादी नीति के तहत जब आप देश की आजादी तक बेच सकते हैं, तो क्या मैं अपनी किडनी भी नहीं बेच सकता? नहीं बेचूँगा, तो खाऊँगा क्या? खाना क्या आप देंगे? अमित कुमार को कृपया तुरन्त रिहा करें। जितने दिन तक वे हिरासत या जेल में रहेंगे, उतने दिनों तक पता नहीं कितने लोगों की गरीबी दूर होने का क्षण आगे खिसकता जाएगा।

अमित कुमार जैसे उद्यमियों से ही हम यह जान पाए हैं कि गरीब वास्तव में गरीब नहीं हैं। उनके पास पाँच लाख की किडनी है, तीन लाख का फेफड़ा है, दो लाख का कोर्निया है। भविष्य में टेक्नालॉजी का इसी तरह विकास होता रहा, तो हाथ, पैर, कान आदि भी बेचे जा सकेंगे। हम गरीब कम में काम चला लेने में माहिर हैं। हमारे जीवन निर्वाह के लिए एक किडनी और एक फेफड़ा काफी है। जहाँ एक से काम चल सकता है, वहाँ दो क्यों लगाएँ? इसी तरह, देखने के लिए भी एक आँख काफी है। दिखेगा तो वही सब न, जो दो आँखों से दिखता है! बाएँ हाथ को भी चलता किया जा सकता है। एक पैर बेच दें और खाली जगह पर जयपुर फुट लगवा लें, तो सारी क्रियाएँ सहजता से की जा सकती हैं। हम नाच भी सकते हैं, स्कीइंग भी कर सकते हैं और स्वास्थ्य, सफाई आदि किसी कॉज को ले कर चौरंगी या कनॉट प्लेस में दौड़ने की प्रतियोगिता में भी भाग ले सकते हैं।

हरियाणा के किडनी कांड के प्रकाश में आने के बाद आपकी सरकार के एक मंत्री ने कहा कि हम अंग प्रत्यारोपण कानून को युक्तिसंगत बनाएँगे। शायद उनका खयाल यह है कि वर्तमान कानून काफी सख्त है, इसलिए किडनी चोरी हो रही है। कानून उदार हो जाएगा, तो मानव अंगों का अवैध व्यापार बंद हो जाएगा। आपकी सरकार के साथ यही तो मुश्किल है। हमारे लिए जो अनुदारीकरण है, वह आपके लिए उदारीकरण है। अंग प्रत्यारोपण का कानून सख्त है, इसीलिए बहुत-से लोगों की रोजी-रोटी चल रही है। यह उदार हो जाएगा, तो डॉक्टर लोग गरीबों को क्यों पकड़ेंगे? कौन नहीं जानता कि ब्लड बैंकों में ज्यादातर खून गरीबों से ही आता है? जब कोई व्यक्ति खून बेचकर परिवार चला सकता है, तो वह किडनी या कॉर्निया बेच कर क्यों नहीं चला सकता? इसमें तो ज्यादा पैसा मिलता है। इसलिए मेरा निवेदन है कि कानून को न बदल कर कृपया एक राष्ट्रीय अंग कोष कायम करें। प्रत्येक मानव अंग का मूल्य निश्चित किया जाए और उसके रख-रखाव का उचित प्रबन्ध किया जाए। यह राष्ट्रीय मानव अंग की जिम्मेदारी होगी कि वह इन अंगों को महँगे से महँगे दामों पर बेचकर दिखाए। इसके लिए टाइम, न्यूजवीक और इकॉनॉमिस्ट जैसी पत्रिकाओं में नियमित विज्ञापन भी दिया जा सकता है। मेरा खयाल है कि डॉ. अमित कुमार को, या किसी ऐसे व्यक्ति को जो इस पेशे में उनसे भी आगे निकल जाए, इस कोष का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाया जा सकता है।

आपका

महामंत्री, किडनी विक्रेता संघ

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

किसानों का आयात

राजकिशोर

केन्द्रीय बजट में किसानों की कर्ज माफी की घोषणा सुन कर नेताजी की आँखों में आँसू आ गए। आसमान की ओर दोनों बाँहें उठा कर उन्होंने आँखे मूँद लीं और कहा - 'प्रभु, तुम सचमुच दयालु हो। तुमने आखिर मेरी सुन ली। अब मैं कम से कम अपने चुनाव क्षेत्र में मुँह तो दिखा सकूँगा।'

संसद की बैठक अभी चल रही थी, पर नेताजी अगले दिन की पहली ट्रेन से अपने चुनाव क्षेत्र में पहुँच गए। जब से उनके इलाके में किसान आत्महत्या करने लगे थे, नेताजी ने अपने चुनाव क्षेत्र में पैर नहीं रखा था। वे लगातार दिल्ली में ही बने रहे। किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं के बारे में पहले तो उन्होंने बयान दिया कि यह सब विरोधियों का दुष्प्रचार है। जब इससे काम नहीं चला, तो उन्होंने कहना शुरू किया कि ये आत्महत्या के मामले नहीं हैं, किसानों ने आपसी रंजिश से एक-दूसरे की जान ली है। जब यह भी नहीं जमा, तो नेताजी ने फरमाया कि आत्महत्या की घटनाएँ दुनिया भर में बढ़ रही हैं - वास्तव में यह किसी विशेष क्षेत्र की नहीं, आतंकवाद की तरह ही एक अन्तरराष्ट्रीय समस्या है, इसलिए इसका समाधान विश्व स्तर पर ही हो सकता है। बाद में उन्होंने इस विषय पर बोलना ही छोड़ दिया। जब कोई पत्रकार जिद करने लगता, तो वे बिफर जाते - लगता है, आप अखबार नहीं पढ़ते! इस विषय में क्या हमारी पार्टी के किसी नेता ने बयान दिया है? फिर आप मेरा मुँह क्यों खुलवाना चाहते हैं? जब इस बारे में पार्टी कोई नीति निर्णय लेगी, तब आपको प्रेस स्टेटमेंट मिल जाएगा।

नेताजी जिस गाँव में सबसे पहले पहुँचे, वहाँ उनके दर्शन करने के लिए भीड़ उमड़ आई। माला लेकर खड़े लोगों से उन्होंने कहा, मैं यहाँ अपना स्वागत करवाने नहीं, किसान भाइयों की पीड़ा में शिरकत करने आया हूँ। उन्हें यह बताने आया हूँ कि किसानों को राहत देने के लिए हमारी सरकार ने कितना क्रांतिकारी कदम उठाया है। पहले मुझे उस परिवार में ले चलिए, जहाँ किसी किसान ने आत्महत्या की हो।

पीड़ित परिवार के घर तक पहुँचते-पहुँचते नेताजी का चेहरा रुआँसा हो चुका था। परिवार में मृत किसान की पत्नी और तीन बच्चे थे। उन्होंने नेताजी को खाट पर बैठाया और तश्तरी पर गुड़ तथा गिलास में पानी लेकर उनके सामने हाजिर हो गए। नेताजी ने किसान की पत्नी से कहा - बहन, जो होना था, वह हो गया। होनी को कौन टाल सकता है! अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। हमारी सरकार ने फैसला किया है कि सभी किसानों का कर्ज माफ कर दिया जाएगा। बहन कुछ नहीं बोली। मन ही मन सिसकती रही। उसके बड़े लड़के ने, जो दसवीं में पढ़ता था, जवाब दिया - लेकिन सर, अखबार में छपा है कि उन्हीं किसानों के कर्ज माफ होंगे, जिन्होंने बैंक से लोन लिया

था। नेताजी ने पुष्टि की - हाँ बेटा, तुमने ठीक सुना है। तुम्हारे परिवार पर कितना कर्ज है? लड़के ने कहा - हमारे पापा ने तो साहूकार से कर्ज लिया था। उनके मर जाने के बाद साहूकार कुछ दिन तक तो चुप रहा। अब अकसर आ धमकता है और कहता है कि कर्ज चुकाए बगैर तुम्हारे पिताजी को परलोक में मुक्ति नहीं मिलेगी। मम्मी सोच रही है कि जमीन बेच कर इस बला से किसी तरह छुटकारा पाएँ। नेताजी ने ढाढस बढ़ाया - न-न जमीन कभी मत बेचना। जिन्होंने साहूकारों से कर्ज लिया है, उन्हें राहत देने के बारे में भी हम सोच रहे हैं।

अब नेताजी वहाँ से जल्द से जल्द खिसकने की सोचने लगे। उनके चेहरे पर निराशा साफ-साफ झलक रही थी - यहाँ आना बेकार रहा। उसके बाद वे दूसरे गाँव में गए। लेकिन वहाँ भी समस्या थी। पता चला कि जिस किसान ने आत्महत्या की थी, उसके घरवाले बैंक के तगादों से परेशान होकर गाँव छोड़ कर चले गए हैं। कहाँ गए, यह पूछने पर जवाब मिला - पता नहीं। शहर में कहीं मजदूरी कर रहे होंगे। इस साल तो उनकी जमीन की बुआई भी नहीं हुई। अन्त में तीसरे गाँव में सफलता मिली। वहाँ कई लोगों ने बैंक से कर्ज ले रखा था। उन्होंने नेताजी का जबरदस्त स्वागत किया। जब नेताजी उठने लगे, तब एक बूढ़े किसान ने उन्हें रोक लिया। कहा, आपने हर्षवर्धन का नाम सुना होगा। नेताजी का भावहीन चेहरा देख कर वह बोला- हर्षवर्धन उज्जैन का राजा था। कहते हैं, कुंभ के अवसर पर वह अपना सब कुछ दान कर देता था - यहाँ तक कि अपने पहने हुए कपड़े भी। अपनी बहन से माँग कर कपड़े पहन लेता। लेकिन अगले कुंभ तक उसके पास सब कुछ पहले जैसा ही जमा हो जाता था। वह फिर सब कुछ दान कर देता। हम किसानों का हाल वैसा ही है। इस बार कर्ज माफी हो गई है। पाँच साल बाद हम फिर कर्ज से लद जाएँगे। सरकार कितनी दफा कर्ज माफी करेगी? इससे बेहतर क्या यह नहीं होगा कि आप लोग खेती के बारे में अपनी नीतियाँ ही बदल दें, ताकि किसानों पर न कर्ज लदे, न उसे माफ करने की जरूरत पड़े?

बताते हैं, उस रात नेताजी को ठीक से नींद नहीं आई। वे सपने में बड़बड़ा रहे थे - इस देश के किसान ही गड़बड़ हैं। लगता है, हमें अन्न के साथ-साथ किसानों का भी आयात करना होगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कॉमरेड का कहना है

राजकिशोर

बहुत दिनों से कॉमरेड से मुलाकात नहीं हुई थी। सो उन्हें अचानक घर आया देख मुझे अपार प्रसन्नता हुई। चाय-सिगरेट से उनका स्वागत किया। फिर ढेर सारे सामयिक विषयों पर बातचीत होने लगी। सिंगुर और नंदीग्राम के मामले को उठना ही था। वह उठा और कॉमरेड बैठ गए। सोफे पर पालथी मार कर। इसके बाद उनका जो भाषण हुआ, वह लंबा था। पाठकों को बोरियत से बचाने के लिए उसका सारांश पेश करता हूँ।

कॉमरेड का कहना था : हमारी किताबों में पहले से ही लिखा हुआ है कि किसान प्रतिक्रियावादी शक्ति हैं। उनके पास निजी संपत्ति होती है। सो वे कभी क्रांति नहीं कर सकते। वे जमीन से जुड़े नहीं, बँधे होते हैं। उनमें मोबिलिटी नहीं होती। इससे उनकी विचारधारा भी जड़ होती जाती है। आदमी जब तक अपनी जमीन से उखड़ न जाए, दूसरे शहरों में जाकर तरह-तरह की ठोकरें न खाए, वह पूँजीवाद की हकीकत को समझ नहीं सकता। फिर किसान उत्पादन के साधनों से पूरी तरह वंचित भी नहीं होते। वे अपना श्रम नहीं बेचते, बल्कि प्रकृति में उसका निवेश करते हैं। इससे जो फसल पैदा होती है, उसके बल पर वे काफी हद तक आत्मनिर्भर भी हो जाते हैं। इसलिए सभ्यता जब आगे बढ़ती है और परिवर्तन होने लगता है, तो वे घबराने लगते हैं। किसानों की सुनी गई होती, तो दुनिया में कल-कारखाने कहीं नजर ही नहीं आते।

बंदे में दम था। कॉमरेड राजनीतिक कार्यकर्ता होते हुए भी पढ़े-लिखे की तरह बोल रहा था। मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी। मैंने पूछा - लेकिन कॉमरेड, सत्ता में आने के बाद आप लोगों ने तो किसानों को ही मजबूत किया। बँटाईदारों के लिए नई व्यवस्था की। इससे भी खेती को ही फायदा पहुँचा। कॉमरेड मुसकराए, जैसे कोई विद्वान किसी मूर्ख की बात पर मुसकराता है। फिर शुरू हुए - माई डियर सर, आप किस दुनिया में रहते हैं! सत्ता में आने के बाद हम कम्युनिस्ट किसी को भी मजबूत नहीं करते, सिर्फ अपने आपको मजबूत करते हैं। अपने को मजबूत करने के लिए ही हमने किसानों को मजबूत किया। पश्चिम बंगाल में औद्योगिक सर्वहारा की संख्या कम है। सो हम किसानों के बल पर ही अपनी सत्ता को बनाए रख सकते थे। फिर सत्ता में आते ही हम पूँजीपतियों के साथ सहयोग करने लगते तो क्या बदनाम नहीं हो जाते? राजनीति में तो आप जानते हैं, बद अच्छा, बदनाम बुरा।

मेरी जिज्ञासा शांत होने की बजाय और बढ़ी - तो फिर अब आप किसानों को बेदखल क्यों कर रहे हैं? इस बार कॉमरेड मुसकराए नहीं, झुँझलाए - यही तो तुम बुर्ज्वा सोच वालों की कमजोरी है। तुम हमेशा नकारात्मक ढंग से सोचते हो। इतिहास को आगे ले जाने के बजाय पीछे की ओर धकेलना चाहते हो। हम किसानों को बेदखल नहीं कर रहे हैं, औद्योगिक संस्कृति को बढ़ाने का ऐतिहासिक काम कर रहे हैं। कायदे से यह काम कैपिटलिस्ट क्लास का है। सामंतवाद से संघर्ष की जिम्मेदारी उसी की है। लेकिन भारत के कैपिटलिस्टों में दम नहीं है। वे तो विदेशी

पूँजी के बल पर फलने-फूलने की सोच रहे हैं। ऐसा कहीं होता है? इतिहास का यह नियम क्या वे भूल गए कि बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है? इसीलिए हमने तय किया कि देशी पूँजीवाद को हम बढ़ावा देंगे। हम टाटा घराने के शुक्रगुजार हैं कि उन्होंने हमारे अनुरोध की रक्षा कर ली। नहीं तो हम कहीं के नहीं रहते। हम रूटीन कम्युनिस्टों की तरह काम करते, तो अंत में हमें रवीन्द्र संगीत की धुन पर यही गाना पड़ता कि उनसे आया न गया, हमसे बुलाया न गया।

हर उत्तर एक नए प्रश्न को आमंत्रित करता है। इसलिए मैंने पूछा - लेकिन इससे तुम लोगों के राजनीतिक आधार को नुकसान नहीं पहुँचेगा? कॉमरेड की मुसकराहट वापस आ गई - तुम कभी नहीं सुधरोगे। सचाई यह है कि इससे हमारा राजनीतिक आधार और बढ़ेगा। तुम तो जानते ही हो कि वाम मोर्चा के लंबे शासन में पश्चिम बंगाल में सर्वहारा वर्ग की संख्या घट गई थी। उद्योग-धंधे बंद हो रहे थे या अन्य राज्यों की ओर भाग रहे थे। ऐसी स्थिति में हम 'सर्वहारा की तानाशाही' की ओर कैसे बढ़ सकते थे? क्रांति कभी अचानक नहीं की जाती। उसकी ओर एक-एक कदम आगे बढ़ाना पड़ता है। कभी-कभी 'एक कदम आगे, एक कदम पीछे' की नीति भी अपनानी पड़ती है। जब किसानों में अपनी पैठ हमने मजबूत कर ली, तो हम मजदूरों की संख्या बढ़ाने पर विचार करने लगे। बिना सर्वहारा के, औद्योगिक मजदूरों के कम्युनिस्ट अकेले क्या कर सकते हैं? दीवार से सिर टकराने से तो विप्लव होगा नहीं। जो इस बात को नहीं समझते, वे ही सिंगुर और नंदीग्राम की आलोचना कर रहे हैं। हमें उनकी रत्ती भर भी परवाह नहीं है। सच्चा कम्युनिस्ट वही होता है, जो आलोचना की परवाह नहीं करता। मैंने कॉमरेड को याद दिलाने की कोशिश की - लेकिन तुम लोग तो नंदीग्राम में विदेशी पूँजी को जगह दे रहे हो?

अब कॉमरेड के झुँझलाने की बारी थी - देखो, पूँजी पूँजी होती है। वह न देशी होती है, न विदेशी होती है। इस बात को मार्क्स ने ही सबसे पहले समझा था। भूमंडलीकरण का कॉन्सेप्ट तो अब आया है। सबसे पहले कम्युनिस्टों ने ही अंतरराष्ट्रीयकरण की बात की थी। जैसे पूँजी का कोई देश नहीं होता, वैसे ही सर्वहारा का भी कोई देश नहीं होता। दोनों स्वभाव से ही अंतरराष्ट्रीय होते हैं। जब अंतरराष्ट्रीय पूँजी हमारे यहाँ आएगी, तो हमारे सर्वहारा का भी अंतरराष्ट्रीयकरण होगा। इसीलिए हमने सलेम ग्रुप को आमंत्रित किया है। शुक्र है कि उन्होंने भी हमारी इज्जत रख ली।

मैंने जानना चाहा - लेकिन केंद्र में तो तुम विदेशी पूँजी का विरोध करते हो?

कॉमरेड ने बताया - पश्चिम बंगाल हमारा है। हम वहाँ चाहे जो करें। लेकिन उसके बाहर तो हमें कम्युनिस्ट होने की भूमिका निभानी ही पड़ेगी। हम यह कैसे गवारा कर सकते हैं कि हमारी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता पर आँच आए?

अब मेरे मुस्कराने की बारी थी - तो पश्चिम बंगाल में विदेशी पूँजी आने से हमारी प्रभुसत्ता को आँच नहीं आती?

कॉमरेड का कहना था - उलटा मत सोचो। हम नहीं चाहते कि पश्चिम बंगाल प्रगति की दौड़ में पीछे रह जाए। हम यहाँ मजबूत होंगे, तभी इस नव-उपनिवेशवाद से लड़ सकते हैं। सभी को उस पूँजीवाद का स्वागत करना चाहिए जो साम्यवादी सत्ताओं को मजबूत करे।

मैंने कहना चाहा, जैसे चीन में? लेकिन तभी चाय की दूसरी किस्त आ गई।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

गरीब कौन

राजकिशोर

मेज पर कोका-कोला की आधी पी हुई बोतल रखे हुए, अफसर किसी फाइल के अध्ययन में तल्लीन था। फाइल इस बारे में थी कि राशन की दुकानों के माध्यम से कंडोम वितरित किए जाएँ या नहीं। करीब डेढ़ सौ पन्नों की फाइल थी। ऊपर से नीचे तक सभी अधिकारियों की टिप्पणियाँ भरी पड़ी थीं। कुछ का कहना था कि इससे ग्रामीण इलाकों में जन्म दर में भारी कमी आ सकती है। कुछ का मानना था कि इससे परिवार नियोजन कार्यक्रम हास्यास्पद बन जाएगा और गाँवों में अनैतिकता बढ़ सकती है। टिप्पणियाँ ऐसी थीं, जिनका मतलब हाँ और ना दोनों में निकाला जा सकता था। एक ने इतने बड़े पैमाने पर सप्लाई की समस्याओं पर विस्तार से लिखा था और यह आशंका जताई थी कि चावल और गेहूँ की तरह कंडोम की भी चोरी हो सकती है और उसका कालाबाजार विकसित हो सकता है।

तभी दरवाजे पर खट-खट की आवाज हुई और उसके पहले कि अफसर सिर उठा कर देखे, चपरासी ने प्रवेश किया - 'सर, एक आदमी आपसे मिलने आया है' 'उससे कहो, मैं अभी बेहद बिजी हूँ,' अफसर ने रुआब से कहा। चपरासी बोला, 'उसे कई बार बता चुका हूँ। कहता है, आज बुधवार है और बुधवार को तीन से पाँच बजे तक के बीच कोई भी आदमी अफसरों से मिल सकता है। यह सरकारी कानून है।' अफसर ने घड़ी देखी - साढ़े तीन। चपरासी से कहा, भेज दो।

थोड़ी देर बाद एक अधेड़ आदमी ने कमरे में प्रवेश किया। उसे देखते ही लगता था कि यह उस बेहया वर्ग का सदस्य है जो भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के लिए स्थायी सिरदर्द बना हुआ है। गरीबी हटाने की जितनी कोशिश होती है, गरीबी उतनी ही बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि गरीबी के बारे में निरंतर चर्चा करनेवालों का एक पूरा विद्वान वर्ग तैयार हो गया है। यह गरीबी पर पलता है, गरीबी पर चलता है और गरीबी के सवालों पर मचलता है। अफसर भी इसी वर्ग का था। लेकिन वह अफसर था। वह गरीब-अमीर सभी से डील करना जानता था। नौकरी शुरू करने से पहले मसूरी में उसे इसी कला में प्रशिक्षित किया गया था।

उस दाढ़ी-मूँछ बढ़े आदमी पर एक नजर डालकर अफसर ने पूछा - महीने में कितने कंडोम इस्तेमाल करते हो? आदमी के चेहरे पर अचरज की लकीरें उभरीं - कंडोम? अफसर को अपनी भूल समझ में आ गई। वह अभी तक अपनी फाइल के प्रभाव से उबरा नहीं था। अफसर ने अपनी आवाज में तनिक तरलता लाते हुए पूछा - तुम्हारा नाम? आदमी ने जेब से एक कार्ड निकाल कर दिखाया। अफसर ने पूछा - यह क्या है? आदमी ने कहा - बीपीएल कार्ड। आप इसे नहीं पहचान सकेंगे। यह सिर्फ गरीबों को दिया जाता है। अफसर - यानी तुम बीपीएल हो। आदमी - सर, अभी तक तो हूँ। पर सरपंच यह कार्ड छीनना चाहता है।

अफसर की त्यौरी चढ़ने लगी। उसे लगा कि उसका कीमती समय बरबाद किया जा रहा है। उसने थोड़ी कड़क आवाज में कहा - तो यहाँ क्यों आए हो? पुलिस के पास जाओ। रिपोर्ट लिखाओ। यह समाज कल्याण विभाग है? आदमी बोला - मैं समझता था कि समाज कल्याण में सब कुछ आ जाता है। अफसर - आता होगा, पर एक आदमी किस-किसका कल्याण कर सकता है। इसीलिए अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग विभाग बनाए गये हैं। आदमी - पर मेरा कल्याण तो आप कर ही सकते हैं। मुझे एक सर्टिफिकेट चाहिए कि मैं गरीब हूँ। किसी गजटेड ऑफिसर से लिखवा कर नहीं ले गया, तो सरपंच मेरा बीपीएल कार्ड छीन लेगा। कहता है, ऊपर से ऑर्डर आया है - गरीबों की संख्या कम करो।

अब अफसर गंभीर हो गया। उसे सिखाया गया था कि किसी को लिख कर कुछ न देना, बाद में फँसने का डर है। अफसर ने पूछा - लेकिन बात क्या है? तुम गरीब हो, तो तुम्हारा बीपीएल कार्ड तुमसे कौन छीन सकता है? आदमी - सर, हुआ यह कि पिछले महीने मेरी घरवाली मर गई। इस महीने बकरी ने तीन बच्चे दिये हैं। सरपंच का कहना है, तुम अब गरीब नहीं रहे। एक तो तुम्हारे परिवार की सदस्य संख्या कम हो गई, जिससे बाकी बचे लोगों की प्रतिव्यक्ति आमदनी बढ़ गई। दूसरे, सरकारी रिकार्ड के मुताबिक पहले तुम्हारे पास एक मवेशी था, अब चार हो गए। गरीबी मापने के लिए सरकार ने जो मानक तैयार किये हैं, उनके आधार पर तुम अब गरीब नहीं रहे। बीपीएल कार्ड सरेंडर कर दो, नहीं तो पुलिस में तुम्हारे खिलाफ धोखाधड़ी की रिपोर्ट लिखानी होगी।

अफसर सोच में पड़ गया। थोड़ी देर तक विचार करने के बाद बोला - देखो, लिख कर तो मैं कुछ नहीं दे सकता। मेरे पास इसका पॉवर नहीं है। पर रास्ता बता सकता हूँ। एक महीने के भीतर दूसरी शादी कर लो और बकरी के बच्चे किसी को दान कर दो। तब तुम्हारा कार्ड तुमसे कोई नहीं ले पाएगा।

अब सोच में पड़ने की बारी आदमी की थी।

इसके बाद क्या हुआ, मुझे मालूम नहीं, पर इतना जानता हूँ कि इस बातचीत के दौरान अफसर ने एक बार भी उस अधेड़ आदमी को कुरसी पर बैठने के लिए नहीं कहा था, जिसकी उम्र उस अफसर से कम से कम पंद्रह साल ज्यादा थी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

गांधी बनाम गांधी

राजकिशोर

गांधी को गांधी ही संशोधित कर सकता है - यही लिखा हुआ था हर तख्ती में, जिन्हें हवा में लहराते हुए खादी पहने प्रदर्शनकारी आगे बढ़ रहे थे। उनमें से प्रत्येक के चेहरे पर बौद्धिक तेज चमक रहा था, जैसे हर आधुनिक व्यक्ति के चेहरे से लालच टपकता रहता है। उन सभी में निष्ठा की ताकत साफ दिखाई दे रही थी, जैसे पतिव्रता स्त्री का शील उसके अंग-अंग में समाया रहता है। वे सभी भीतर से सख्त थे, पर ऊपर से मुलायम लग रहे थे, जो व्यापारी वर्ग की विशेषता है। उनमें एक आंतरिक लय थी, जो लेखकों और कलाकारों में होती है। वे अपने लक्ष्य के प्रति बेहद गंभीर थे, जैसे पूँजीवाद होता है या साम्यवाद हुआ करता था।

आप अगर अब भी अनुमान नहीं लगा पाए हैं, तो मैं बता ही दूँ कि वे कांग्रेसजन थे और कांग्रेस के संविधान को बदलने के लिए जुलूस की शक्ल में जनपथ की ओर बढ़े जा रहे थे। आजकल गांधी में मेरी दिलचस्पी बहुत बढ़ गई है। सो मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। जो नौजवान सबसे पीछे बार-बार पसीना पोंछते हुए, लेकिन उत्साह के साथ नारे लगते हुए जा रहा था, उसे मैंने बहुत ही विनयपूर्वक रोका। वह इस तरह रुक गया जैसे कोई बड़ा लेखक किसी सामान्य पाठक की कोई जिज्ञासा शांत करने के लिए एक क्षण के लिए उसके पास ठहर जाता है। मैंने उसकी ओर प्रशंसा से देखते हुए कहा, 'आपका नारा बहुत अच्छा है। गांधी जी लकीर के फकीर नहीं थे। वे अपनी लकीर के भी फकीर नहीं थे। जब भी जरूरत होती थी, अपने को संशोधित कर लेते थे।...' इस विषय पर मैं थोड़ा और बोल कर अपनी भड़ास निकालना चाहता था, पर उसके चेहरे पर अधीरता के गहरे होते चिह्नों को देख कर, जिनका तात्पर्य यह था कि 'तुमने मुझे सुनने के लिए रोका था या अपने को सुनाने के लिए?' मैंने जल्दी से कहा, 'इस जुलूस में जो लोग शामिल हैं, उनकी माँग क्या है?'

'हम कांग्रेस का संविधान बदलना चाहते हैं।'

'कांग्रेस का संविधान? क्या इस नाम की कोई चीज अभी तक बची हुई है? हम तो यही समझते हैं कि जो सोनिया गांधी कह दें, वही कांग्रेस का संविधान है।' मैंने अपने चेहरे पर आश्चर्य का भाव लाते हुए पूछा।

'बुजुर्गवार, आप ठीक समझते हैं। लेकिन यह बात टिकट बाँटने, मंत्री तय करने, कांग्रेस की कार्यसमिति गठित करने आदि पर लागू होती है। कांग्रेस की सदस्यता की शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। हम ये शर्तें बदलना चाहते हैं।' युवा बुद्धिजीवी ने इस तरह गर्व से कहा, जैसे उसके माथे पर कोई कलगी उग आई हो और वह दूसरों को दिखाई नहीं दे रही हो।

'लेकिन कांग्रेस की सदस्यता के नियम तो गांधी जी ने बनाए थे। उनमें आप किस तरह का परिवर्तन करना चाहते हैं? इसकी जरूरत क्या है? क्या गांधी जी अब प्रासंगिक नहीं रहे? विद्वान लोग तो कहते हैं कि उनकी प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। इनमें आपके प्रधानमंत्री भी हैं।'

'माफ कीजिए, आप सीनियर सिटिजन नहीं होते, तो मैं आपकी यह गज भर की जुबान खींच कर आपकी हथेली पर रख देता । क्या मनमोहन सिंह की सरकार सिर्फ हमारी सरकार है? आपकी सरकार नहीं है? देश भर की सरकार नहीं है?'

'वामपंथी तो ऐसा नहीं मानते। लेकिन चलिए, आपकी बात मान लेता हूँ। आखिर मुझे इसी देश में रहना है।'

कांग्रेस के युवा नेता के मुँह पर रुपए भर की मुसकान आ गई। उसकी छाती फूल आई, जैसे सेना में भर्ती के परीक्षण के दौरान जवानों की छाती फूल जाती है। इस बीच जुलूस आगे निकल गया था। हम पिछड़ गए थे। लपक कर हमें अंतराल को पाटना पड़ा।

'हाँ, तो आप बता रहे थे कि आप लोग कांग्रेस की सदस्यता के नियम बदलना चाहते हैं। जैसे?'

'जैसे यह कि कांग्रेस सदस्य के लिए खादी पहनना अनिवार्य होगा। जब यह नियम बनाया गया था, तब ठीक था। लेकिन आज इसकी क्या जरूरत है? खादी चोर-उचक्कों की वर्दी बन गई है। आज के जमाने में यह भी कोई पहनने की चीज है? इसकी वजह से हमारे नेता और मंत्री कार्टून नजर आते हैं। कांग्रेस के मेंबर हैं तो क्या, हमें शरीफ लोगों की तरह कपड़े तो पहनने दीजिए।'

'और?'

'और? और यह कि कांग्रेस का सदस्य शराब नहीं पी सकता। यह तो बाबा आदम के जमाने की बात हुई। वैसे मेरा खयाल है कि बाबा आदम भी यह शौक फरमाते होंगे। एक पत्रकार का कहना है कि माँ के दूध और ओआरएस के बाद धरती पर शराब ही सबसे मूल्यवान रसायन है। इससे हम कांग्रेसी क्यों वंचित रहें?'

'वाजिब है। क्या आप लोग नए नियम जोड़ना भी चाहते हैं?'

'जरूर। हम चाहते हैं कि कांग्रेस के प्रत्येक सदस्य के लिए 'गांधी' सरनेम लगाना अनिवार्य हो। इससे देश में गांधियों की कमी नहीं रह जाएगी। दूसरे, जो कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए अप्लाई करता है, उसके पास कुछ न्यूनतम संपत्ति होना आवश्यक है। जो अपना घर नहीं भर सकता, वह दूसरों का घर क्या भरेगा? तीसरे, कांग्रेस का कोई भी सदस्य सांगठनिक पदों के लिए चुनाव की माँग नहीं करेगा। प्रत्येक स्तर पर नामांकन की प्रणाली अपनाई जाएगी। इससे पार्टी की आंतरिक एकता बनी रहेगी। इसी तरह की और भी बातें हैं।'

'लेकिन गांधी जी के बनाए हुए नियमों को बदलना...'

'सीधी-सी बात है, गांधी ही गांधी को संशोधित कर सकता है। महात्मा गांधी के बनाए हुए नियमों को राहुल गांधी संशोधित करेंगे।'

संवाद की सारी गुंजाइश खत्म हो गई थी। जनपथ भी नजदीक आ गया था। मैंने जुलूस में शामिल देशभक्तों को प्रणाम किया और घर वापस जाने के लिए बस स्टॉप खोजने लगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

चाटुकारिता के बदले

राजकिशोर

कांग्रेस के केंद्रीय कार्यालय में राहुल गांधी पार्टी के काम-काज में मशगूल थे। बाईं ओर की दीवार पर तरह-तरह के रंगे-बिरंगे चार्ट लग हुए थे। एक चार्ट में लोक सभा के चुनाव क्षेत्रों का नक्शा था। दूसरे चार्ट में पिछले दो चुनावों में कांग्रेस पार्टी के हारने-जीतने का ब्यौरा था। तीसरे चार्ट पर कुछ नारे लिखे हुए थे, जैसे झोंपड़ियों में जाएँगे, भारत नया बनाएँगे; दलित जगेगा देश जगेगा, बेशक इसमें वक्त लगेगा; काम करेंगे, नाम करेंगे, चाटुकार आराम करेंगे आदि-आदि। सामने तीन लैपटॉप खुले हुए थे। राहुल गांधी कभी इस लैपटॉप पर, कभी उस लैपटॉप पर काम करने लगते। मेज पर दो मोबाइल फोन रखे हुए थे। तीसरा उनकी जेब में था। हर चार-पाँच मिनट पर कोई न कोई मोबाइल बज उठता। काम करते-करते राहुल गांधी मोबाइल पर बात भी करते जाते थे। वे सुनते ज्यादा थे, बोलने के नाम पर हाँ, हूँ, क्यों, कैसे, कब, अच्छा कहते जाते थे। चेहरे पर मुसकराहट कभी आती, कभी चली जाती।

तभी इंटरकॉम बज उठा। उधर से आवाज आई - सर, एक नौजवान आपसे मिलना चाहता है। राहुल गांधी - कह दो, इस समय मैं किसी से नहीं मिल सकता। उधर से - सर, मैं कई बार कह चुका हूँ। पर मानता ही नहीं है। राहुल गाँधी - नो वे। इस वक्त बहुत बिजी हूँ। उधर से - सर, इसे दो मिनट टाइम दे दें। नहीं तो यह यहीं पर सत्याग्रह पर बैठ जाएगा। प्रेसवाले इधर-उधर घूमते ही रहते हैं...राहुल गांधी - ओके, ओके, भेज दो। पर दो मिनट से ज्यादा नहीं।

दरवाजा खटखटा कर नौजवान ने कमरे में प्रवेश किया। देखने से ही छँटा हुआ गुंडा लग रहा था। झक्क सफेद खादी का कुरता-पाजामा। गले में सोने की चेन। कलाई पर महँगी घड़ी। चप्पलें ऐसी मानो अभी-अभी कारखाने से आई हों। नौजवान ने पहले राहुल गांधी को सैल्यूट जैसा किया और मेज पर फूलों का गुलदस्ता रख दिया। राहुल गांधी सिर उठा कर एकटक देखे जा रहे थे।

नौजवान कुछ बोल नहीं रहा था। उसकी नजर राहुल के सौम्य चेहरे पर टँगी हुई थी, जैसे वह आह्लाद के आधिक्य से चित्र-खचित हो गया हो। इसके पहले उसने किसी बड़े नेता को इतनी नजदीकी से नहीं देखा था। एक मिनट इसी में बीत गया।

राहुल ने मुसकरा कर पूछा - टिकट चाहिए? कहाँ के हो?

नौजवान - अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपके दर्शन पाने के बाद मेरी हर इच्छा पूरी हो गई।

राहुल - चापलूसी कहाँ से सीखी? क्या तुम्हारा परिवार पुराना कांग्रेसी है?

नौजवान - सर, हम लोग तीन पुश्तों से कांग्रेसी है। मेरे दादा ने साल्ट मार्च में हिस्सा लिया था।

राहुल - साल्ट मार्च? यह कब की बात है?

नौजवान - सर, द फेमस दांडी मार्च...

राहुल - ओह। अब तुम जा सकते हो। दो मिनट हो गए।

नौजवान - थैंक्यू सर। लेकिन असली बात तो रह ही गई।

राहुल - तीस सेकेंड में बोलो और चलते बनो। मैं बहुत बिजी हूँ।

नौजवान - सर, मैं अपने क्षेत्र की तरफ से आपको बधाई देने आया हूँ

कि...

राहुल - किस बात की बधाई?

नौजवान - कि आपने चापलूसी कल्चर के खिलाफ आह्वान कर एक क्रांतिकारी काम किया है। यह तो महात्मा गांधी भी नहीं कर सके।

राहुल - तो तुम्हें यह बात पसंद आई?

नौजवान - बहुत, बहुत ज्यादा पसंद आई। मैं तो शुरू से ही आपकी रिस्पेक्ट करता आया हूँ। लोक सभा में आपका भाषण सुनने के बाद तो मैं आपका मुरीद हो गया। सर, आपका भाषण सबसे डिफरेंट रहा। मैंने तो उसका वीडियो बनवा कर रख लिया है।

राहुल - हूँ...

नौजवान - सर, आप एकदम नई लाइन पर जा रहे हैं। दलितों की झोंपड़ियों में जाना, वहाँ खाना खाना, रात भर सोना...कांग्रेस में नई जान फूँक दी है आपने।

राहुल गांधी असमंजस में पड़ जाते हैं। कभी दीवार पर लगे चार्टों को देखते हैं कभी सामने पड़े लैपटॉप पर।

नौजवान - सर, चापलूसी खत्म करने की आपकी बात तो एकदम निराली है। आज तक किसी भी दल के नेता ने इतनी ओरिजिनल बात नहीं कही है। देश से चापलूसी का कल्चर खत्म हो जाए, तो हम देखते-देखते अमेरिका और जापान से कंपीट कर सकते हैं।

राहुल - तुम्हारा मतलब है, आम जनता को मेरा यह मेसेज अपील कर

रहा है?

नौजवान - अपील? सर, एव्रीबॉडी इज हैप्पी। चापलूसी के चलते ही हमारा देश आगे नहीं बढ़ पा रहा है। जैसे खोटा सिक्का अच्छे सिक्के को चलन से बाहर कर देता है, वैसे ही चापलूस लोग योग्य आदमियों को पीछे धकेल देते हैं। ऐसे में तरक्की कैसे होगी?

राहुल - अच्छा, ठीक है। अब तुम...

नौजवान - नो सर, इस मामले में आपको लीड लेना ही होगा। आप ही कांग्रेस से चापलूसी का कल्चर खत्म कर सकते हैं। देश का यूथ आपके साथ है। आप सिर्फ नेतृत्व दीजिए। काम करने के लिए हम लोग हैं न।

राहुल - यू आर राइट। यूथ को एक्टिव किए बिना कुछ नहीं होगा।

नौजवान - सर...

राहुल - ओके, योर टाइम इज ओवर।

नौजवान राहुल के पाँवों की धूल लेने के लिए गुंजाइश खोजता है। पर राहुल जहाँ बैठे हैं, उसे देखते हुए यह मुश्किल लगता है। सो वह प्रणाम-सा करते हुए दरवाजे की ओर मुड़ता है।

राहुल - बाइ द वे, तुम अपना सीवी सेक्रेटरी के पास छोड़ते जाना। देखता

हूँ...

नौजवान पहले से अधिक आत्म-विभोर हो जाता है। कार्यालय के बाहर उसके दोस्त-यार उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नौजवान अपनी दो उँगलियों की वी की शक्ल में उन्हें प्रदर्शित करता है। सभी एक बड़ी गाड़ी में बैठते हैं। नौजवान ड्राइवर को आदेश देता है - होटल अशोका।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

चाँदी का जूता

राजकिशोर

बलात्कार के हरजाने पर श्रीमती रीता बहुगुणा जोशी और सुश्री मायावती के बीच जो कर्कश विवाद हुआ, वह चाहे कितना ही दुर्भाग्यपूर्ण हो, पर एक वास्तविक मुद्दे को सामने लाता है। कैसे? यह स्पष्ट करने के लिए मैं एक छोटी-सी कहानी सुनाना चाहता हूँ। संभव है, यह एक लतीफा ही हो, पर है बहुत मानीखेज। एक अमीर आदमी ने किसी व्यक्ति पर जूता चला दिया था। उस पर अदालत में मुकदमा चला। जज ने जूता फेंकने वाले पर सौ रुपए का जुर्माना किया। इस पर उस अमीर आदमी ने अदालत में दो सौ रुपए जमा कर दिए और शिकायतकर्ता को वहीं खड़े-खड़े एक जूता और रसीद किया। फर्ज कीजिए कि जज ने अगर उसे हफ्ते भर जेल की सजा सुनाई होती, तब भी क्या उस धनी व्यक्ति ने शिकायतकर्ता को एक और जूता लगाया होता और अदालत से प्रार्थना की होती कि अब आप मुझे दो हफ्ते की जेल दे दीजिए?

हमारे देश में बलात्कार, सामूहिक हत्या, दुर्घटना आदि के बाद सरकार द्वारा रुपया बाँटने की जो नई परंपरा शुरू हुई है, वह गरीब या दुर्घटनाग्रस्त लोगों में पैसे बाँट कर अपना अपराधबोध कम करने और पीड़ितों के कष्ट को कम करने का तावीज बन कर रह गया है। दिल्ली में सिखों की सामूहिक हत्या के बाद भी पीड़ित परिवारवालों के लिए कुछ सुविधाओं की घोषणा की गई थी। लेकिन इससे उनके मन की आग शांत नहीं हुई है। हर साल उनकी ओर से जुलूस-धरने का आयोजन होता है कि हमें न्याय दो। पैसा देना न्याय नहीं है। यह आँसू पोंछना भी नहीं है। यह किसी की जुबान को खामोश करने के लिए उसे चाँदी के जूते से मारना है।

पैसा लेना भी न्याय नहीं है। इंडियन पीनल कोड की बहुत-सी धाराओं में लिखा हुआ है कि इस अपराध के लिए कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा। यहाँ तक कि बलात्कार, हत्या करने की चेष्टा, राष्ट्रीय अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले लांछन, पूजा स्थल पर किए गए अपराध, मानहानि, अश्लील कार्य और गाने तथा ऐसे दर्जनों अपराधों के लिए भी कैद के अलावा या उसके साथ-साथ जुर्माने का भी प्रावधान है। यह कानून सन 1860 में बनाया गया था। इस पर सामंती न्याय प्रणाली की मनहूस छाया है। सामंती दौर में राजा जिससे कुपित हो जाता था, उसकी सारी संपत्ति जब्त कर लेता था, ताकि वह दर-दर का भिखारी हो जाए। ब्रिटिश भारत में और स्वतंत्र भारत में दंडित व्यक्ति से धन छीनने पर यह सामंती आग्रह बना रहा। अरे भाई, किसी ने अपराध किया है तो उसे सजा दो, उसके पैसे क्यों छीन रहे हो? राजाओं और सामंतों का पैसे के लिए लालच समझ में आता है। लूटपाट करने के लिए वे कहाँ से कहाँ पहुँच जाते थे। उपनिवेशवादियों ने भी ऐसा ही किया। पर स्वतंत्र और लोकतांत्रिक भारत अपराधी से पैसे क्यों वसूल करता है?

जुर्माना लेने के पीछे जो भावना है, वही भावना आर्थिक हरजाना देने के पीछे है। किसी कारवाले ने धक्का दे कर मुझे गिरा दिया और फिर मेरी मुट्ठी में पाँच सौ रुपए रख कर चल दिया। क्या इसे ही इन्साफ कहते हैं? ज्यादा संभावना यह है कि अदालत भी कारवाले की यही सजा देगी। यह कुछ ऐसी ही बात है कि एक भाई किसी लड़की के साथ बलात्कार करे और दूसरा भाई उसकी मुट्ठी में कुछ नोट रखने के लिए वहाँ पहुँच जाए। यह शर्म की बात है कि अनुसूचित जातियों से संबंधित एक कानून में अनेक अपराधों के लिए सरकार द्वारा पैसा देने का प्रावधान है। यह गरीबी का अपमान है। कोई भी स्वाभिमानी आदमी ऐसे रुपए को छूना भी पसंद नहीं करेगा। जो रुपया दुनिया में अधिकांश अपराधों का जन्मदाता है, उसे ही अपराध-मुक्ति का औजार कैसे बनाया जा सकता है? हरजाना देने का मुद्दा तब बनता है जब अपराध के परिणामस्वरूप पीड़ित पक्ष की कमाने की क्षमता प्रभावित हो रही है। किसी व्यक्ति की हत्या हो जाने के आद उसकी पत्नी, बच्चों तथा अन्य प्रभावित परिवारियों को आर्थिक सुरक्षा देना न्याय व्यवस्था तथा राज्य व्यवस्था दोनों का कर्तव्य है। दूसरी ओर, बलात्कार की वेदना और उससे जुड़े कलंक का कोई हरजाना नहीं हो सकता।

पुस्तकालय में किताब देर से लौटाना, देर से दफ्तर आना, गलत जगह गाड़ी पार्क कर देना - ऐसी छोटी-मोटी गड़बड़ियों के लिए जुर्माना ठीक है। इसका लक्ष्य होता है ऐसी चीजों को निरुत्साहित करना। लेकिन जिस हरकत से किसी को या सभी को नुकसान पहुँचता है या नुकसान पहुँच सकता है, उसके लिए तो कारावास ही उचित दंड है। दिल्ली में कानून द्वारा निर्धारित स्पीड से ज्यादा तेज गाड़ी चलाने की सजा पाँच सौ रुपए या ऐसा ही कुछ है। यह न्याय व्यवस्था सड़क पर चलनेवालों का अपमान है। जिस कृत्य से एक की या कइयों की जान जा सकती है, उसके लिए तो कुछ दिनों के लिए जेल की मेहमानी ही उचित पुरस्कार है। जब बलात्कार या ऐसे किसी अपराध अथवा दुर्घटना के लिए सरकार पीड़ितों में पैसा बाँटती है, तो वह दरअसल अपने पर ही जुर्माना ठोंकती है। कायदे से सरकार को अपने को दण्ड़ित करना चाहिए यानी जिस सरकारी कर्मचारी की गफलत से ऐसा हुआ है, उसके खिलाफ मुकदमा चलाना चाहिए। यह एक मुश्किल काम है, क्योंकि हर सरकार अपने कर्मचारियों का बचाव करने की कोशिश करती है। इससे आसान है जानता के खजाने से थोड़ी रकम निकाल कर पीड़ित को दे देना। यह रकम अगर मंत्रियों और अफसरों की जेब से वसूल की जाती, तब भी कोई बात थी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

चीन से कौन डरता है

राजकिशोर

'चीन से कौन डरता है? कम से कम भारत तो नहीं।' अड्डे पर आते ही यह घोषणा कर सुंदरलाल अपनी पसंदीदा सीट पर बैठ गए और चाय आने का इंतजार करने लगे।

रामसराय को यह बात पसंद नहीं आई। उन्होंने तुरंत टोका, 'क्या इसलिए कि भारत सरकार ने यह कह दिया है कि भारत की जमीन से चीन-विरोधी गतिविधियों की अनुमति नहीं दी जाएगी?'

सुंदरलाल - यह तो भारत की भलमनसाहत है। वह नहीं चाहता कि चीन और भारत के संबंध बिगड़े।

सपना - तो क्या भारत में किसी भी अन्य देश के विरुद्ध गतिविधि करने के लिए भारत सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है?

अनवर - विदेश मंत्रालय का आशय कुछ और था। उसका कहना है कि हम इस तरह की गतिविधियों को बर्दाश्त नहीं करेंगे।

रामसहाय - तो क्या विदेश मंत्रालय ने उन देशों की सूची प्रकाशित कर दी है जिनके खिलाफ भारत में गतिविधियाँ की जा सकती हैं?

सुंदरलाल - आप भी गजब करते हैं! क्या कोई भी देश ऐसी सूची प्रकाशित करता है?

सपना - तो फिर इस संदर्भ में चीन का नाम अलग से लेने की क्या जरूरत थी? यह तो तिब्बत में दमन की कार्रवाइयों का विरोध करनेवालों को धमकाना हुआ।

अनवर - भारत में अगर तिब्बतियों के मानव अधिकारों के समर्थन में आंदोलन होता है, तो वह चीन-विरोधी गतिविधि कैसे हो गई?

सपना - लेकिन भारत में अमेरिका-विरोधी गतिविधियों पर तो कोई रोक नहीं है। स्वयं सरकार के सहयोगी वामपंथी दल निरंतर अमेरिका की आलोचना करते रहते हैं।

सुंदरलाल - अमेरिका की बात और है। वह साम्राज्यवादी देश है।

सपना - क्या भारत सरकार ने इस बात को मान लिया है? या वह वामपंथियों से डरती है?

सुंदरलाल - भारत सरकार किसी से नहीं डरती। यहाँ तक कि वह भारत की जनता से भी नहीं डरती।

रामसहाय - अगर अमेरिका साम्राज्यवादी देश है, तो चीन भी तो साम्राज्यवादी देश है। उसने हमारी बहुत सारी जमीन हड़पी हुई है। हमारी संसद का सर्वसम्मत प्रस्ताव है कि जब तक हम चीन के कब्जे से एक-एक इंच जमीन छुड़ा नहीं लेंगे, चैन से नहीं बैठेंगे। इसके बावजूद चीन अब भी अरुणाचल प्रदेश पर अपना दावा ठोंकता रहता है। उसने तिब्बत पर हमला कर उसे चीन में मिला लिया। अरसे से वह तिब्बती लोगों के मानव अधिकारों का उल्लंघन कर रहा है।

सपना - सावधान, आप चीन के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप कर रहे हैं। सीपीएम ने इस मामले की नजाकत सभी भारतीयों को बता दी है।

अनवर - फिर तो गुजरात में जो कुछ हुआ, वह भारत का आंतरिक मामला है। दुनिया भर के लोगों को गुजरात में मुसलमानों के कत्ले-आम पर टिप्पणी करने का क्या हक है?

अभी तक चुपचाच बैठे कपूर साहब को हँसी आ गई। वे बोले - मेरे एक दोस्त का कहना है कि घरेलू हिंसा विरोधी कानून संवैधानिक नहीं है, क्योंकि यह पति-पत्नी के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप है। पुलिस को क्या मतलब कि श्री शर्मा श्रीमती शर्मा के साथ क्या करते हैं।

रामसहाय - बिलकुल ठीक। इस तर्क से तो रंगभेद भी अमेरिका का आंतरिक मामला है। उसके बारे में अमेरिका के बाहर इतना क्यों लिखा जाता है?

सुंदरलाल - आप लोग बात को कुछ ज्यादा ही खींच रहे हैं। भारत सरकार ने बयान तो दे दिया है कि इस मामले में शामिल सभी पक्ष बातचीत से और अहिंसक तरीके अपनाते हुए समाधान निकाल लें।

अनवर - यह सलाह चोट खाते हुए तिब्बतियों को है या चोट करनेवाली चीन सरकार को?

सुंदरलाल - दोनों को। भारत को हिंसा का रास्ता पसंद नहीं। नक्सलवादियों, मजदूरों और किसानों की बात हो, तो बात अलग है।

रामसहाय - सचमुच भारत तिब्बत के मामले में बहुत संजीदा दिखाई दे रहा है! उसी तरह जैसे वह म्यांमार में जन विद्रोह के मामले में बहुत संजीदा था! दुनिया में कहीं भी अन्याय हो, यह उसे पसंद नहीं।

सपना - लेकिन अमेरिका? उसने भी तो तिब्बत के आंदोलनकारियों का पक्ष नहीं लिया। क्या वह भी चीन से नहीं डरता?

अनवर - नहीं, वह चीन से क्यों डरेगा? वह तो बार-बार कहता है कि चीन में मानव अधिकारों का सम्मान होना चाहिए।

कपूर - चीन में, पर तिब्बत में नहीं। वहाँ मानव अधिकारों का हनन हो सकता है।

सुंदरलाल - तिब्बत भी तो चीन का ही हिस्सा है।

सपना - लेकिन यह बात तो तिब्बती लोगों से पूछनी चाहिए कि वे चीन का हिस्सा हैं कि नहीं? कोई किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपना हिस्सा कैसे बता सकता है?

सपना - जैसे इराक के लोगों से पूछे बिना अमेरिका उनका उद्धार करने पहुँच गया!

सुंदरलाल - तो क्या आप चाहती हैं कि अमेरिका अपनी फौज ले कर ल्हासा पहुँच जाए?

सपना - यह तो तब होगा जब अमेरिका चीन से डरने लगेगा। अभी ऐसी कोई बात नहीं है।

अनवर - यानी अमेरिका भी चीन से नहीं डरता!

'कुल मिला कर साबित यह हुआ कि चीन से अगर कोई नहीं डरता, तो वे तिब्बत के लोग हैं!' यह युवा पत्रकार सुजाता की आवाज थी, जो हमारे अड्डे पर अनवर के साथ पहली बार आई थी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

चौराहे पर लड़की

राजकिशोर

संसद मार्ग के चौराहे पर बारह साल की एक लड़की लगातार बारी-बारी से रो और सिसक रही थी। वह कई वर्षों से यहीं पर थी। उसके बाल रूखे और अस्तव्यस्त हो रहे थे। गोरे गालों का रंग बदल गया था। वे काले-काले लग रहे थे। उन पर आँसुओं की धार की लकीरें बन गई थीं। आसपास के लोगों ने उसकी तकलीफ देखकर उसके लिए एक छोटी-सी कुर्सी का इंतजाम कर दिया था। कभी-कभी कोई दयालु खाने के लिए लड़की के हाथ में कुछ रख देता। लड़की बार-बार कहती थी कि मैं घर जाना चाहती हूँ। पर यह कैसे संभव था? सड़क के कई तरफ तैनात गुंडे यह नहीं चाहते थे कि वह वहाँ से हटे। वह जैसी भी थी, जिस हालत में थी, उसका उपयोग था।

मनमोहन सिंह को उस सड़क से गुजरते देख लड़की कसमसाने लगी। उसने जोर से धाड़ मारी - अंकल! दयालु प्रधानमंत्री रुक गए। नजदीक आए। पूछा - क्या बात है, बेटी? तुम कौन हो? लड़की से कुछ बोला नहीं गया। वह अंकल को सिर्फ देखती रही। उसके होठ काँप रहे थे। पर शब्द नहीं निकल पा रहे थे। सिंह अंकल ने उसके रूखे गाल थपथपाए। पूछा - तुम्हारा नाम क्या है? लड़की ने कहा - मेरा नाम महिला विधेयक है। मैं कई वर्षों से यहाँ सड़ रही हूँ। मेरी उम्र फकत बारह साल है, पर अभी से बूढ़ी लगने लगी हूँ। आप संसद में बिल पास करा कर मुझे मुक्त कराइए ना!

मनमोहन सिंह - यह क्या इतना आसान है, बेटी? हम तो चाहते हैं, यह बिल कल ही पास हो जाए। हमारी महान नेता सोनिया जी भी इसे लेकर बहुत फिक्रमंद हैं। लेकिन किया क्या जाए। कांग्रेस के बहुत-से एमपी इसके खिलाफ हैं। वे ऊपर-ऊपर से कह देते हैं, सोनिया जी का हर फैसला हमें मंजूर है, पर भीतर से विपक्षी सांसदों से मिल कर षड्यंत्र करते हैं कि बिल पास न हो। कुछ दिन और धीरज रखो, कुछ न कुछ कर लेंगे।

अंकल चल दिए, बेटी बिलखती रही। कई दिनों के बाद लालू प्रसाद वहाँ से गुजरे। उनके पीछे-पीछे चलने वालों में एक अकाउंटेंट भी था जो हिसाब लगा रहा था कि आज भारतीय रेल का शुद्ध लाभ किस बिन्दु पर पहुँच गया। लालू प्रसाद को रोकना नहीं पड़ा, एक धूल-धूसरित बालिका को देखकर वे खुद लपक पड़े। पहले उसके बगल में खड़े होकर फोटू खिंचवाया, फिर लड़की से पूछा - बिहार की लगती हो? कौन जिला तुम्हारा?

लड़की ने बताया कि वह किसी खास जिले या राज्य की नहीं है। इस पर लालू प्रसाद ने कमेंट किया - रूटलेस हो? इधर काफी लोग अपना रूट खो रहा है। लड़की ने कहा - रूट तो मेरा बहुत मजबूत है। लेकिन सिर्फ महिलाओं के बीच। वे बराबर चीखती-चिल्लाती रहती हैं कि इस बिल को तुरन्त पास कराओ, पर कोई सुन नहीं रहा है। सब हाँ-हाँ करते हैं। ना कोई नहीं करता। पर बात भी आगे नहीं बढ़ती। पता नहीं अड़चन कहाँ है!

लालू प्रसाद के चेहरे पर कोई तनाव नहीं आया। बल्कि एक मानीखेज मुसकान उभरी। बोले - तुम नाहक सत्याग्रह कर रही हो। जब तक लालू कैबिनेट में नंबर एक नहीं बनता, तब तक नेता लोग अपना ललाट खुजलाते रहेंगे। यह सवर्ण राजनीति का दाद है। दिलीप कुमारवाला दाग नहीं, चमड़ीवाला दाग, जो खुजलाता रहता है, पर जाता नहीं है। इसे ठीक करने में बड़े-बड़े डॉगडर फेल हो जाते हैं। इसे तो कोई जमीन से जुड़ा आदमी ही ठीक कर सकता है। देखा नहीं, बिहार में हमने एक लेडी को इतने साल मुख्यमंत्री बना कर रखा। और किसी नेता ने यह हिम्मत की है? थोड़ा दिन और इंतजार करो। मेरी तरह। तुम्हारा और मेरा, दोनों का काम एक साथ होगा।

लड़की क्या कहती! वह जन नेता को खरामा-खरामा जाते देखती रही।

अखबारों में छपी तस्वीरों से आडवाणी को पता चला कि मनमोहन और लालू प्रसाद यहाँ से गुजर चुके हैं तो वे भी गांधीनगर का अपना दौरा बीच में ही छोड़कर वहाँ पहुँच गए। वे मोड़ तक इस तरह आए जैसे उन्हें इस मुसीबतजदा लड़की के बारे में कुछ पता न हो। मोड़ पर अपनी चाल धीमी कर उन्होंने बाईं तरफ नजर दौड़ाई तो उनकी आँखों में चौंकने का भाव झलका। वे पहले से अधिक गंभीर होकर उस लड़की की तरफ बढ़ चले। उससे प्रारंभिक सवाल-जवाब शुरू हुआ था कि गले में केसरिया दुपट्टा बाँधे स्वयंसेवक पता नहीं किधर से अचानक प्रकट हो गए और नारे लगाने लगे - बहनों का उद्धार करेंगे, हम भारत से प्यार करेंगे। एक तिहाई अस्थान दो, संसद में सम्मान दो। महिला बिल को पास करो, और नहीं उपहास करो।

आडवाणी ने उन्हें रोका, तो वे रुक गए। फिर लौह-पुरुष उनमें से एक का भोंपू अपने हाथ में लेकर भाषण देने लगे - हम महिला विधेयक का सम्पूर्ण समर्थन करते हैं। हमने कोशिश भी की थी कि यह जल्दी से जल्दी पास हो जाए। लेकिन कांग्रेस ने अन्त तक यह स्पष्ट नहीं किया कि इस बिल पर उसका रुख क्या है। आज भी वह दुविधा में है। मुझे शक है कि उसका इटालियन नेतृत्व भारतीय महिलाओं का दर्द समझता भी है या नहीं। (उस लड़की की ओर देखकर) लेकिन बहन, घबराओ नहीं, इस बार कुछ न कुछ होकर रहेगा। लेकिन पहले कांग्रेस बिल को पेश तो करे। फिर हमारे हाईकमान की बैठक होगी और हम उचित समय पर उचित निर्णय लेंगे। बिल का स्वरूप देखे बिना हम इस मामले में अपने को कमिट नहीं कर सकते। लेकिन मैं यह हमेशा के लिए स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम आरक्षण के बढ़ते हुए दायरे का विरोध करते हैं, पर महिला आरक्षण का भरपूर समर्थन करते हैं। मैं मानता हूँ कि इक्कीसवीं सदी महिलाओं की है। भाजपा के नेतृत्व को इसके लिए अपने को अभी से तैयार करना चाहिए। (इस पर एक अखबार ने अगले दिन लिखा कि ऐसा कहकर आडवाणी जी ने अप्रत्यक्ष रूप से भाजपा के पुनर्निवाचित अध्यक्ष राजनाथ सिंह पर वार किया है। उनका संकेत यह था कि श्री सिंह मूलतः मर्दवादी हैं। यह खबर छपने के बाद राजनाथ सिंह ने स्पष्टीकरण दिया कि वे लिंगनिरपेक्ष हैं। और उनकी नजर में महिलाओं और पुरुषों, दोनों के लिए समान स्थान है।)

आडवाणी की भीड़ के विदा हो जाने के बाद लड़की एकदम खामोश हो गई। वह आसमान की ओर देखने लगी। पीटीआई के एक संवाददाता के अनुसार, अब भी वह आसमान की ओर ही ताकती रहती है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

जेसिका लाल की बहनें

राजकिशोर

एक पच्चीस-छब्बीस साल की देहाती युवती को पुलिस मुख्यालय में, और वह भी पुलिस कमिश्नर के दफ्तर के ठीक सामने, पाकर बाहर बैठा चौकीदार हैरत में पड़ गया। वह जब से सर्विस कर रहा है, ऐसा कभी नहीं हुआ था। 'अरे, अरे, तुम यहाँ कैसे? तुम्हें अन्दर किसने घुसने दिया?' युवती पहले से ही गुस्से में थी। उसने कहा, 'तुम्हे इससे क्या मतलब? गार्ड हो, गार्ड की तरह रहो। मुझे कमिश्नर साहब से मिलना है। बहुत जरूरी काम है।' 'क्या काम है?' 'तुम जान कर क्या करोगे? तुम्हारे बस की बात नहीं है। मुझे अन्दर जाने दो।' 'ऐसे कैसे जा सकती हो? टाइम लिया है?' 'टाइम माँगती, तो क्या मिल जाता?' यह कह कर वह भीतर जाने की कोशिश करने लगी। गार्ड ने उसकी बाँह पकड़कर रोका। दोनों में छीना-छपटी होने लगी। युवती ने शोर-मचाना शुरू कर दिया। शोर अन्दर पहुँचा। 'क्या बात है? क्या बात है?' कहते हुए परेशान-से कमिश्नर साहब बाहर निकल आये। गार्ड ने पूरी वफादारी के साथ सारा किस्सा बताया। कमिश्नर ने कहा, इसे छोड़ दो, फिर युवती से कहा, बेटी, भीतर चलो।

अपने छोटे-से, सजे-सजाए किले में लौटने के बाद पुलिस कमिश्नर ने पहले युवती के लिए पानी मँगाया, फिर पूछा, 'अब बताओ, बात क्या है?' युवती फफक-फफक कर रोने लगी। शांत हुई तो कहने लगी, 'अंकल, मेरा नाम कविता है। मैं त्रिलोकपुरी से आई हूँ। गुंडों ने मेरी छोटी बहन के साथ बलात्कार किया। उसके बाद उसकी जान ले ली। लाश नहर किनारे फेंक दी।' कमिश्नर ने धीरता के साथ कहा, 'तो यहाँ क्यों आई हो? जाकर लोकल थाने में रिपोर्ट करो। जो करेंगे, वही लोग करेंगे।' 'उन्हीं की तो शिकायत करने आई हूँ। यह कोई कल की बात थोड़े है। तीन साल हो गए। चार में से दो गुंडे गिरफ्तार हुए। हफ्ते भर पुलिस की जेल में रहे। एक पर मुकदमा चला। लेकिन वह सबूत की कमी की वजह से छूट गया। अब वह मुझे तंग करता है। धमकाता है कि तुम्हारे साथ भी वही होगा, जो तुम्हारी बहन के साथ हुआ था।' 'तो इसकी भी रिपोर्ट थाने में ही होगी। वहीं जाओ।' 'कमिश्नर साहब, मैं अपने लिए नहीं आई हूँ। मेरा जो होगा, सो होगा। बहुत हुआ तो इलाका ही छोड़ दूँगी। मैं अपनी बहन के लिए न्याय माँगने आई हूँ। आप दिल्ली के सबसे बड़े अफसर हैं। आप चाहें, तो सब कुछ हो सकता है।' कमिश्नर साहब ने अफसोस-भरा चेहरा बनाया, 'नहीं बेटी, अब कुछ नहीं हो सकता। अदालत ने सबूत के अभाव में बरी कर दिया है, तो कौन क्या कर सकता है?'

कविता मुसीबत की मारी हुई थी। उसने धीरज नहीं खोया। बोली, 'अंकल, मैं अनपढ़ नहीं हूँ। मैंने इग्नू से बीए किया है। कल ही मैंने पेपर में पढ़ा कि जेसिका लाल का हत्यारा भी सबूत के अभाव में छूट गया था। इस पर हल्ला-गुल्ला मचा तो पुलिस ने फिर से मुकदमा दायर किया है। अब सारा केस फिर से खुलेगा। हो सकता है, मनु शर्मा को इस बार सजा मिल ही जाए। यह सब पढ़ कर मैंने सोचा कि अगर जेसिका की हत्या का मुकदमा दोबारा

खुल सकता है, तो मेरी बहन का मुकदमा क्यों नहीं खुल सकता? जेसिका का तो सिर्फ मर्डर किया गया था। मेरी बहन के साथ तो बलात्कार भी हुआ था। अंकल, आप चाहें तो हमारा मुकदमा भी दोबारा खुल सकता है।'

अब सारा मामला पुलिस कमिश्नर की समझ में आ गया। तो यह लड़की जेसिका लाल से बराबरी करना चाहती है! वे जरा गुस्से में आ गए। बोले, 'लेकिन जेसिका मर्डर केस में तो कोर्ट के ऑर्डर हैं। हमें कुछ कार्रवाई करनी ही थी। नहीं तो अदालत की तौहीन हो जाती...तुम्हारा मामला पूरी तरह से खत्म हो चुका है। तुम निश्ंिचत होकर घर जाओ। रोने-कलपने से तुम्हारी बहन वापस थोड़ी ही आ जाएगी?' युवती ने हिम्मत करके पूछा, 'तो क्या दोबारा मुकदमा चलाने पर जेसिका लाल की जिंदगी वापस आ जाएगी?' 'मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता। इस मामले में सबूतों को जान-बूझ कर नष्ट किया गया है। कुछ चीजों की इन्क्वायरी भी नहीं हुई है। इन सब चीजों की दोबारा जाँच की जा सकती है। कुछ नई बात सामने आई तो मुकदमा भी फिर से चलाया जा सकता है। तुम्हारा मामला अलग है।'

अब तक युवती निराश-सी होने लगी थी। फिर भी उससे बोले बगैर नहीं रहा गया, 'अंकल, आप जाँच तो कराइए। हमारे मामले में भी कुछ नई बातें सामने आ सकती हैं। जिस बदमाश ने रेप किया था, वह अब सरेआम कहता फिरता है कि हाँ, मैंने रेप किया था। मर्डर भी किया था। अब यही सब उसकी बहन के साथ भी करूँगा। देखें, कोई क्या कर लेता है? दस-बारह लोगों ने उसके मुँह से यह बात सुनी है। उनमें से कुछ गवाही देने के लिए भी तैयार हैं। आखिर सभी की माँ-बहनें हैं।' 'बेटी, तुम समझ नहीं रही हो। अदालत में जाकर वे मुकर गए तो? हमारी सारी मेहनत मिट्टी में मिल जाएगी।' युवती ने कहना चाहा कि गवाह तो जेसिका लाल कांड में भी मुकर गए थे, पर अब तक वह पूरी तरह से निराश हो चुकी थी। उसकी आँखों से आँसू फिर बहने लगे थे।

जब वह अपना मासूम चेहरा लिए पुलिस कमिश्नर के केबिन से निकली और पुलिस मुख्यालय के बाहर आई, तो देखा, सैकड़ों मर्द-औरतें नारा लगा रहे थे : दिल्ली पुलिस दलाल है। रिश्वत खाकर मालामाल है। जेसिका लाल के हत्यारे को फाँसी दो। फाँसी दो, भाई फाँसी दो। उसे लगा कि उसके चारों तरफ दुनिया घूम रही है। अपने को गिरने से बचाने के लिए वह वहीं बैठ गई।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

जो गिरफ्तार नहीं हुए

राजकिशोर

बच्चू बाबू ने मेरे घर में प्रवेश किया तो वे बहुत उत्साह में थे। आज वे बीड़ी नहीं, सिगरेट पी रहे थे। होंठों की रंगत देख कर ऐसे लगता था कि उनका पान-पर्व अभी-अभी सम्पन्न हुआ है। दो व्यसनों की यह निकटता बता रही थी कि बच्चू बाबू के लिए आज का दिन विशेष महत्व रखता है। दूसरों की खुशी से मुझे भी खुशी होती है, इसलिए मैंने अपनी पूरी हँसमुखता के साथ उनका स्वागत किया। सभी महान आत्माएँ एक ही तरह से सोचती हैं, इस उक्ति पर मेरा विश्वास एक बार फिर दृढ़ हुआ, जब मैंने गौर किया कि वे कुर्सी पर इस तरह बैठ गए जैसे यह उन्हीं के लिए बनाई गई थी।

बच्चू बाबू का व्यक्तित्व ऐसा है कि उनका परिचय देने के लिए किसी को भी शब्दों के अभाव का सामना नहीं करना पड़ेगा। उनका समग्र परिचय हिंदी के एक छोटे-से, पर शक्तिशाली शब्द से दिया जा सकता है 'बच्चू बाबू गुंडा थे।' वे स्थानीय गुंडा थे और वैश्वीकरण के दौर में भी अपनी स्थानीयता पर टिके रहे। कुछ लोगों का कहना है कि वैश्वीकरण और स्थानीयता दोनों आवश्यक हैं या वैश्वीकरण का मुकाबला स्थानीयता से ही किया जा सकता है। इन प्रतिपादनों का ठीक-ठीक अर्थ क्या है, यह मैं बड़े-बड़े विद्वानों के लेख और किताबें पढ़ कर भी नहीं समझ पाया हूँ। क्या इसका मतलब यह है कि मोबाइल फोन का तार कान में लगा कर छठ मनाया जाए और ईमेल से करवा चौथ की शुभकामनाएँ भेजी जाएँ? या, विदेशी पूँजी का हमला तेज हो रहा हो, तो दुर्गा पूजा और भी भव्य तरीके से मनाई जाए? पता नहीं। इतना जरूर है कि बच्चू बाबू ने बिहार राज्य के बाहर एक ही बार कदम रखा था, जब वे कांग्रेसी लोगों के साथ थे और संजय गांधी ने नागपुर में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का एक बड़ा सम्मेलन बुलाया था, जिसे समय के चलन को देखते हुए 'राष्ट्रीय' की संज्ञा दी गई थी। सम्मेलन से लौटते हुए कार्यकर्ताओं ने विभिन्न रेलवे स्टेशनों पर जो लूट-पाट मचाई, उसकी खबर अखबारों में छपने पर कुछ लोगों को शक होने लगा था कि कहीं वह सम्मेलन अराष्ट्रीय तो नहीं था।

केंद्र में एक बार फिर मनमोहन सिंह की सरकार बन गई थी। कुछ दलों को इस बार सरकार में शामिल नहीं किया गया था। इससे जहाँ तक बच्चू बाबू का सवाल है, वे बहुत ही खुश थे। यहाँ 'गद्गद' शब्द का प्रयोग ज्यादा प्रासंगिक होता, पर यह समय पर नहीं सूझा। बच्चू बाबू ने मुझसे अपनी निजी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, 'अभी तक मुझे थोड़ा सँभल कर काम करना पड़ता था, पर अब मुझे लगता है कि मैं सरकार का अंग हूँ। अब आप किसी भी थाने में चले जाइए, मेरे खिलाफ एफआईआर नहीं लिखवा पाएँगे। उलटे उसी दिन नहीं तो अगले दिन दोपहर तक मुझे खबर मिल जाएगी कि मेरे खिलाफ एफआईआर लिखवाने कौन गया था।' संजय गांधी और

उनकी माँ इंदिरा गांधी को प्रगति का पर्याय माना जाता था। अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके नेतृत्व में देश सचमुच प्रगति ही कर रहा था।

चाय आने के पहले ही बच्चू बाबू ने अपना सवाल दाग दिया। उन्होंने कहा, 'माननीय रेल मंत्री लालू प्रसाद जी बड़े गर्व से यह दावा कर रहे हैं कि माननीय आडवाणी जी को गिरफ्तार करने का फैसला उनका अपना था। जो अन्य नेता इस गिरफ्तारी का श्रेय लेना चाहते हैं, वे असत्य बोल रहे हैं। माननीय शरद यादव ने तो गिरफ्तारी को रोकने तक की कोशिश की थी। आपकी क्या राय है?'

मैं जानता था कि इस सन्दर्भ में मेरी राय का कोई महत्व नहीं है। यह शिष्ट प्रश्न मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि वक्ता द्वारा अपनी राय प्रकट करने की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए पूछा जा रहा है। इसलिए मैंने एक बेचारा-सा उत्तर दे दिया, 'जल्दी क्या है? लालू प्रसाद जो पुस्तक लिख रहे हैं, उसमें वे सारा रहस्य खोल देंगे। तब इस पर विचार किया जाएगा।'

बच्चू बाबू ने अपना परिचित ठहाका मारा - 'इस तरह का वादा तो बहुत-से नेता कर चुके हैं। पर बाद में न कोई किताब लिखता है और न रहस्य प्रकट करता है। माननीय विश्वनाथ प्रताप सिंह ने 1989-90 में पता नहीं कितनी जन सभाओं में कहा था कि मेरे पास राजीव गांधी के उस खाते का नंबर है जिसमें उन्होंने बोफोर्स का पैसा रख छोड़ा है। उन्होंने कहा था कि मैं उचित समय पर यह नंबर सार्वजनिक कर दूँगा। पर वह समय सोलह साल के बाद भी नहीं आ पाया है। माननीय मुलायम सिंह जी भी इस तरह के वादे करते रहते हैं। माननीय अमर सिंह के पास भी काफी भेद हैं। माननीय नटवर सिंह का भी कहना है कि उनके पास ऐसे सीक्रेट हैं कि सोनिया गांधी और कांग्रेस दोनों दहल जाएँगे। लेकिन वे भी शायद समय आने पर ही खोलेंगे। पता नहीं, वह समय कब आएगा? आएगा भी या नहीं, कौन कह सकता है? यह भी हो सकता है कि जो यह हिम्मत करे, उसका हाल माननीय जसवंत सिंह जैसा हो जाए। जसवंत सिंह की इज्जत शायद इसी में थी कि वे ये रहस्य अपनी छाती में ही छिपा कर रखते।'

मैंने विषय बदलने की महत्त्वाकांक्षा के साथ कहा, 'खैर, यह तो आप मानेंगे ही कि माननीय आडवाणी जी को गिरफ्तार करना कम साहस की बात नहीं थी। बिहार को हमेशा इस पर गर्व रहेगा कि माननीय लालू प्रसाद के मुख्यमंत्रित्व में उसने उस विषाक्त रथ यात्रा को रोका।'

बच्चू बाबू ने फिर ठहाका लगाया, 'सर, गुजरात के उस सांसद को बिहार में गिरेंफ्तार करना कौन भारी काम था? माननीय लालू प्रसाद जी में नैतिक साहस होता तो वे (अपनी तरफ इशारा करते हुए) बच्चू प्रसाद को गिरफ्तार करके दिखाते! आपको पता है, बिहार में सीनियर और जूनियर, दोनों मिलाकर, बच्चू प्रसादों की कुल संख्या कितनी है? इन सबको जेल में बंद कर दिया जाता, तो बिहार एक बहुत बड़ी समस्या से मुक्त हो जाता। पर गिरफ्तार किया तो किसे? आडवाणी को, जो अपना ज्यादा समय बिहार के बाहर बिताते हैं। इससे बिहार की स्थिति में क्या फर्क पड़ा?'

मैंने पूछा, 'यह आप कह रहे हैं?'

बच्चू बाबू पहले गंभीर हुए, फिर मुस्कराए, 'मैंने कल ही 'लगे रहो मुन्नाभाई' देखी है।'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

झुको, झुको और झुको

राजकिशोर

कई उपन्यासों को पढ़ने और कई फिल्में देखने के बाद मैं इस बात का कायल हो चुका हूँ कि कोई पूरी तरह खत्म नहीं होता यानी पतित से पतित आदमी में भी कुछ संभावना बची रहती है। इसी तरह, पतित से पतित देश में भी नया उभार आ सकता है। हर समाज में, हर वर्ग में, हर समूह में प्रतिभा होती है। किसी को भी आप परमानेंटली डिलिट नहीं कर सकते। डिलिट किए जाने पर वह रिसाइकिल बिन में जाकर बैठ जाएगा और रिस्टोर होने की प्रतीक्षा करेगा। इसलिए आप किसी को भी खारिज नहीं कर सकते। कुछ भी संभावना से परे नहीं है। सब कुछ होना बचा रहेगा। तब भी खिलेंगे फूल। लोग अपनी जाति जाएँगे भूल। ये रात कभी तो जाएगी। वो सुबह कभी तो आएगी।

सो मित्रो, लखनऊ में यह हो ही गया। मैं तो पढ़ कर बहुत आह्लादित हुआ, पर यह समझ में नहीं आया कि इस समाचार को लिखने वाला संवाददाता परेशान है, हतप्रभ है या खुश है। उसकी रिपोर्ट बता रही थी कि 18 अक्तूबर को लखनऊ में गजब हो गया। गजब यह हुआ कि मायावती सरकार के मंत्रिमंडल विस्तार के अवसर पर आयोजित शपथ समारोह में 'अगड़े और पिछड़े, सभी मायावती के आगे दंडवत थे। कुछ ने शीश नवाया, कुछ चरण तक झुके, तो कुछ साष्टांग दंडवत हो गए। राजपूत भी थे, ब्राह्मण भी थे और यादव-वैश्य भी।...हालात ये थे कि एक ठाकुर मंत्री ने पैर छूने की हड़बड़ी में शपथ अधूरी छोड़ दी और राज्यपाल को टोकना पड़ा।'

मुझे उम्मीद नहीं थी कि मेरे जीते जी इतनी सुंदर घटना घट सकती है। मुझे बचपन से ही किसी के पैर छूना अटपटा लगता रहा है। कह सकता हूँ, अशिष्ट भी। अशिष्टता पैर छूने वाले की उतनी नहीं, जितनी छुआने वाले की। लेकिन आज मैं अपनी मूर्खता को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करना चाहता हूँ। मुझे मालूम ही नहीं था कि पैर छूना एक ऐतिहासिक घटना भी हो सकता है। इतिहास? नहीं, प्रति-इतिहास। इतिहास का तो अंत हो चुका। उसको नौकरी से हमेशा के लिए छुट्टी दे दी गई और प्रति-इतिहास को नियुक्त कर लिया गया। इतिहास आगे बढ़ने की जिद करता था। आजकल जिद्दी आदमियों के लिए कहीं जगह नहीं है। सो इतिहास की मृत्यु की घंटी बजा दी गई। प्रति-इतिहास किसी प्रकार की जिद नहीं करता। वह यह तक नहीं कहता कि किसी देश पर आक्रमण मत करो। किसी का खून मत बहाओ। किसी की बस्ती न जलाओ। औरतों को नंगा मत घुमाओ। औरतों के चेहरे पर जबर्दस्ती नकाब मत डालो। हमेशा अपने को सभ्य और दूसरे को असभ्य न मानो। प्रति-इतिहास एक विराट, सीमाहीन आशियाना है, जिसके भीतर कुछ भी किया जा सकता है। इस कुछ करने में कुछ न करना भी शामिल है। कह सकते हैं कि कुछ बनाने के लिए मिट्टी का गीला होना जरूरी है। सो हमने ठोस मिट्टी को 'भूरी भूरी खाक धूल' में बदल डाला है और उस पर दो लोटा पानी डाल कर अपनी प्रति-सृष्टि रच रहे हैं।

मायावती सरकार के ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य, यादव मंत्रियो, तुम्हें पता नहीं है कि तुमने अनजाने में क्या कर दिया है। तुम तो मायावती के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए झुके थे। पर तुम्हें नहीं पता कि तुम एक सिद्धांत भी रच रहे थे। इस देश में कोई कुछ देता है, तो वह बदले में इसी की माँग करता है : झुको, जितना झुक सकते हो, झुको। अगर नहीं झुकोगे तो मान लिया जाएगा कि जो तुम्हें मिला है, वह तुम्हारा प्राप्य था। तुम्हारी इस अधिकार चेतना को तुम्हारा अहंकार माना जाएगा और तुम्हें बिरादरी से बाहर कर दिया जाएगा। सो झुको, मिलने के पहले झुको, मिलने के बाद झुको। हो सके तो वहाँ तक झुको जहाँ उसके पैर हैं। यहाँ तक न झुक सको, तो घुटने तक झुको। इतना भी काफी है। वह समझ जाएगा कि तुम झुकना तो और नीचे तक चाहते हो, पर साहस नहीं हो रहा है। ये वो जगह है दोस्तो, जहाँ साहस नहीं, निरीहता देखी जाती है। निरीहता है, दाँत निपोर कर खड़े रहने की शक्ति है, तो तुम इसे किस शैली में व्यक्त करते हो, यह तुम्हारे अंतःकरण का मामला है। यथार्थ यह है कि तुममें झुकने की इच्छा जोर मार रही है। इतना ही काफी है, मित्र। तुम आगे जाओगे। तुम्हें आगे जाने से कोई रोक नहीं सकता। हाँ, रियाज नियमित रूप से करते रहना।

मुझे पूरा विश्वास है कि ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया आदि मंत्री मायावती के आगे जमीन तक झुकने के पहले पर्याप्त रियाज करके आए होंगे। आखिर इसके पहले तो झुकने की नौबत कभी आई नहीं थी। पहली ही बार में इतना परफेक्शन! नहीं, सिर्फ दो-चार दिन के रियाज से यह ऊँचाई हासिल नहीं की जा सकती। इसके पीछे सैकड़ों वर्षों की आदत होनी चाहिए। एक गुलाम और गरीब देश में झुके बिना काम नहीं चलता। वही पुरानी आदत 18 अक्तूबर को काम आई। इतिहासकारो, हाथ पर हाथ रखे क्यों बैठे हो? अपना भारी-भरकम पोथा निकालो और थोड़ा झुक कर एक नए पन्ने पर लिखो, अब उत्तर प्रदेश को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता। इन झुके हुए लोगों की पीठ पर चढ़ कर ही महामहिषी मायावती दिल्ली की तरफ कूच करेंगी।

चिंता मत करो, जरूरत पड़ने पर वे भी झुकेंगी। पता नहीं किसके सामने झुकना पड़े। अपने दम पर बहुमत नहीं आया तो? थोड़ा झुकना ही पड़ेगा। इसीलिए मैं उत्तर प्रदेश के नए मंत्रियों को बधाई देता हूँ। वे सिर्फ इतिहास के प्रवक्ता नहीं हैं, प्रति-इतिहास के निर्माता भी है। वस्तुतः ऐसे ही बिंदुओं पर इतिहास और प्रति-इतिहास एक दूसरे के गले में बाँहें डाल कर ताता थैया नाचते नजर आते हैं।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

झाँकी हिन्दुस्तान की

राजकिशोर

मास्टर ब्रजभूषण घर से बड़े उत्साह से चले थे कि बच्चों को भारत की संसद और राजनीति के बारे में बताऊँगा, ताकि उनका सामान्य ज्ञान बढ़ सके। हाल ही में वे एक ट्रेनिंग कोर्स करने दिल्ली गए थे, जहाँ उन्हें मालूम हुआ कि राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद पाठ्यक्रम को अद्यतन और सामयिक बनाने के लिए तरह-तरह के प्रयास कर रही है। उन्होंने परिषद द्वारा प्रकाशित नई किताबें भी देखी थीं। दसअसल, वे भी पिटी-पिटाई किताबें पढ़ा-पढ़ा कर थक चुके थे और सचमुच में कुछ नया करना चाहते थे।

मास्टर साहब जब भारत की राजनीति और संसद की एक मोटी-मोटी रूपरेखा पेश कर चुके, तो उन्होंने अपने झोले से, जो उन्हें दिल्ली में कोर्स शुरू करने के पहले भेंट किया गया था (गाँव लौटने तक उसकी जिप खराब हो गई थी), एक चित्र निकाला। बच्चों को वह चित्र दिखाते हुए वे बोले - बच्चो, इन्हें पहचानते हो, ये कौन हैं? पूरी क्लास चिल्ला उठी- मनमोहन सिंह। प्रधानमंत्री। मास्टर साहब ने पूछा, आगे? पूरी क्लास ने फिर एक स्वर में कहा, पहले लीडर थे, अब डीलर हैं। ये अमेरिका से डील करना चाहते हैं।

मास्टर ब्रजभूषण ने अपने झोले से फिर एक तस्वीर निकाली और बच्चों से पहचानने को कहा। बच्चे खिलखिला कर हँसने लगे। बोले - ये भी डीलर हैं। इनका नाम अमर सिंह हैं। मनमोहन सिंह अमेरिका से डील करना चाहते हैं, ये किसी से भी डील कर सकते हैं। एक विद्यार्थी ने कहा - ये ऐश्वर्या राय के साथ घूमते-फिरते हैं। अमिताभ बच्चन और मुकेश अंबानी से इनकी दोस्ती है। मुलायम सिंह इनको अपना नेता मानते हैं। मास्टर ब्रजभूषण को अपने बच्चों पर गर्व हुआ। उन्होंने एक और तस्वीर निकाली। यह तस्वीर मायावती की थी। बच्चों ने कहा - ये भारत की अगली प्रधानमंत्री हैं। इस बार ही बन जातीं, लेकिन मनमोहन सिंह ने बनने नहीं दिया। रुपया खिला कर सांसदों को अपने वश में कर लिया। एक बच्चा अलग से बोला - सर, ये भी डीलर हैं। इन्होंने लेफ्ट के साथ मिल कर अपनी गोटी फिट कर रखी थी। मुलायम सिंह के आदमियों से डील करके उन्हें तोड़ भी लिया था। पर आखिरी वक्त में ये सब बदल गए। पापा कह रहे थे कि अमर सिंह ने ज्यादा पैसा खिला दिया होगा।

उसके बाद अजित सिंह का नंबर आया। उनकी तस्वीर देखते ही लड़के खुल कर हँसने लगे। बोले, ये बहुत पुराने डीलर हैं। जो भी सत्ता में आता है, उसके साथ डील कर लेते हैं और मंत्री बन जाते हैं। एक छात्र कहने लगा - चौधरी चरण सिंह इनके फादर थे। मोहन भैया (स्कूल का बुजुर्ग चपरासी) बता रहे थे कि चरण सिंह ने भी एक बार कांग्रेस से डील की थी। दूसरे छात्र ने कहा - अजित सिंह मेरे मामा के इलाके के हैं। मामा जी बता रहे थे कि इतनी बार पार्टी बदल चुके हैं कि याद रखना मुश्किल हो जाता है कि आजकल किस पार्टी में हैं। देवगौड़ा की

तस्वीर दिखाने पर एक लड़के ने कहा - ये साउथ के अजित सिंह हैं। इन्हें एक बार प्रधानमंत्री की पोस्ट दी गई थी। पर सँभाल नहीं पाए। अपने घर कर्नाटक लौट गए। बीजेपी से डील करके अपने बेटे को मुख्यमंत्री बनवा दिया। अब इन्होंने सीपीएम से डील कर ली है।

मास्टर ब्रजभूषण प्रमुदित होते रहे। यहाँ तक कि ममता बनर्जी के बारे में भी एक छात्र को मालूम था। उसने कहा - किसी भी पार्टी से इनकी डील नहीं हो पाई, इसलिए ये संसद में गईं ही नहीं, घर बैठी रहीं।

प्रकाश करात को किसी ने पहचाना, किसी ने नहीं। एक ने कहा - ये राजनीति में नए आए हैं। धाकड़ डीलर हैं। बताते हैं, चीन से इनकी डीलिंग है। अमेरिका को भारत से उखाड़ना चाहते हैं। सरकार ने इनकी नहीं सुनी, तो ये सरकार को ही गिराने में लग गए। पहले ये सोनिया गांधी को अपना नेता मानते थे। अब मायावती को अपना नेता मानने लगे हैं। इनका कहना है, देश का प्रधानमंत्री वही बनेगा जिसे हम चाहेंगे।

कक्षा का समय समाप्त होने को आ रहा था। सो आखिर में मास्टर साहब ने एक मोटे-से, बूढ़े आदमी की तसवीर निकाली। लड़कों ने उन्हें तुरन्त पहचान लिया। बोले - ये लोक सभा के हेडमास्टर हैं। पर कोई इनकी बात नहीं मानता। ये कहते रहते हैं, सिट डाउन, सिट डाउन, पर कोई सीट पर बैठता नहीं। सब बोलते रहते हैं। एक ने बताया - अपनी ही पार्टी से इनकी डील नहीं हो पाई। पार्टी कह रही थी, अपना पद छोड़ दो। ये कह रहे थे, और चाहे जो करा लो, पोस्ट छोड़ने को मत कहो। इनको पार्टी ने निकाल दिया है।

मास्टर ब्रजभूषण ने कक्षा की राय पूछी - यह अच्छा हुआ या बुरा? पूरी कक्षा चिल्ला उठी - सर, अच्छा-बुरा आजकल कौन देखता है? जिसकी जहाँ डील हो जाए, उसके लिए वही अच्छा है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

तीन सिद्धान्तवादी

राजकिशोर

कहाँ हैं वे भारत निंदक, जो दिन-रात शिकायत किया करते हैं कि भारत की राजनीति पूरी तरह से सिद्धान्तहीन हो गई है? कहाँ हैं वे देश के दुश्मन, जिन्हें लगता है कि भारतीय राजनीति में कोई मूल्य बचे ही नहीं? कहाँ हैं वे विश्व शक्ति के रूप में उदीयमान भारत के आलोचक, जिनका मानना है कि भारत के नेता सिर्फ अपने परिवार के बारे में सोचते हैं और राष्ट्र हित की परवाह नहीं करते?

समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह ने बिना कोई किन्तु-परन्तु लगाए बयान दे दिया कि इस समय हमारे लिए पार्टी नहीं, राष्ट्र हित महत्त्वपूर्ण है। है किसी दूसरे नेता में ऐसा दम कि वह इस पाए की बात कह सके? अपने पचास साल के राजनीतिक कॅरियर में माननीय मुलायम सिंह ने पहली बार ऐसा उद्घाटक बयान देने का साहस किया है। राजनीतिक विश्लेषकों से, जिनमें से सभी के सभी न जाने क्यों दिल्ली में ही रहते हैं, निवेदन है कि वे समाजवादी नेता के इस बयान को साधारण न समझें। इसके द्वारा उन्होंने यह सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लिया है कि उनकी पार्टी हमेशा राष्ट्र हित का पक्ष नहीं लेती। वह राष्ट्र हित के विरुद्ध भी जा सकती है। इसलिए परमाणु करार का समर्थन करने का मन बनाते हुए मुलायम सिंह ने साफ-साफ कह दिया कि वे राष्ट्र हित में अपनी पार्टी की नीतियों की परवाह नहीं करेंगे। पार्टी की घोषित नीति को वे पीछे छोड़ देंगे और परमाणु नीति का समर्थन करने के बहाने कांग्रेस के नजदीक आ जाएँगे। साफ है कि मुलायम सिंह की पार्टी के चरित्र में कुछ ऐसा है जिसका राष्ट्र हित से मेल नहीं खाता। क्या ऐसी पार्टी को विसर्जित नहीं कर देना चाहिए? पूछने पर शायद नेताजी यह कहें कि देश हित की माँग हुई तो हम ऐसा भी कर सकते हैं और कांग्रेस के साथ समाजवादी पार्टी का विलय कर सकते हैं।

जिस कांग्रेस ने सिद्धान्तवादी होने का दाग अपने ऊपर अभी लगने नहीं दिया और जो कभी सांप्रदायिक कभी असांप्रदायिक, कभी समाजवादी कभी बाजारवादी और कभी आरक्षण विरोधी कभी आरक्षण समर्थक बनती रही, उसमें भी अचानक सिद्धान्तवादी होने का जज्बा जाग पड़ा है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पहली बार एक सैद्धान्तिक स्टैंड लिया है कि सरकार रहे या जाए, अगले चुनाव में हम हारें या जीतें, परमाणु करार तो हो कर रहेगा। कांग्रेस के किसी नेता ने इसके पहले कभी दिखाई थी ऐसी सैद्धान्तिक दृढ़ता? जवाहरलाल नेहरू का कहना था, मैं ही सिद्धान्त हूँ। इंदिरा गांधी मानती थीं कि वे ही सिद्धान्त हैं। नरसिंह राव बहुत बड़े विद्वान थे। सो उनके रहते सिद्वान्त की जरूरत ही क्या थी? वैसे, हमारे ज्यादातर विद्वान सिद्वान्तहीनता के इसी सिद्धान्त को माननेवाले हैं। सोनिया गांधी को अपने सिद्धान्तों का पता नहीं है। इसलिए वे सिद्धांत वगैरह के चक्कर में पड़ती ही नहीं। उनका स्पीच राइटर जो लिख दे, वही सोनिया जी का सिद्धांत है।

मनमोहन सिंह अलग धातु के बने हुए हैं। वे सिद्धान्त नहीं बघारते, चुपचाप काम करते रहते हैं। राव ही उन्हें राजनीति में ले आए थे। विद्वान ही विद्वान की वकत पहचानता है। मनमोहन सिंह ने भी राव से मौन का महत्व समझा। इसका मतलब यह नहीं कि जब राष्ट्र हित का निर्णायक सवाल खड़ा हो जाए, तब भी अपना पक्ष न चुना जाए। मनमोहन सिंह ने अपना पक्ष चुन लिया। जिस तरह इंदिरा गांधी ने पहला परमाणु परीक्षण कर और अटलबिहारी वाजपेयी ने दूसरा परमाणु परीक्षण कर इतिहास में अपना-अपना नाम लिखवा लिया, उसी तरह मनमोहन सिंह भी अमर होना चाहते हैं। वे अर्थशास्त्री हैं और इसलिए जानते हैं कि देश की आर्थिक समस्याओं को हल करना उनके बस की बात नहीं है। लेकिन वे परमाणु शक्ति के रहस्य को खूब जानते हैं। देश के करोड़ों लोगों में बिजली खरीदने की क्षमता हो या नहीं, मनमोहन सिंह चाहते हैं कि उनके जाने के बाद देश में बिजली की बाढ़ आ जाए। अमेरिका भी यही चाहता है। अमेरिका चाहता था कि भारत ग्लोबीकरण की नीति पर चले। मनमोहन सिंह ने ऐसा कर दिखाया। अब अमेरिका चाहता है कि भारत कोयले से नहीं, पानी से भी नहीं, हवा से तो बिलकुल नहीं, बल्कि परमाणु शक्ति से बिजली पैदा करे, तो मनमोहन सिंह का सिद्धान्त प्रेम जाग पड़ा। चुनाव के ग्यारह महीना पहले उनकी जेब में एक ही नुस्खा है - परमाणु समझौता करो, बाकी समस्याएँ अपने आप हल हो जाएँगी।

अब बचे वामपंथी। वे तो शुरू से ही सिद्धान्त के मारे हुए हैं। जब कोई और दल सिद्धान्त की बात तक नहीं करता था, वामपंथी सिद्वान्त ही पहनते थे और सिद्धान्त ही ओढ़ते थे। सबसे पहले उन्होंने ही पहचाना था कि पूँजीवादी व्यवस्था में समाजवादी रास्ते पर नहीं चला जा सकता। अब पश्चिम बंगाल के मार्क्सवादी मुख्यमंत्री ने साफ-साफ कह दिया है कि समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हमारे लिए संभव नहीं है, इसलिए हम पूँजीवादी व्यवस्था का निर्माण करने में अपनी सारी शक्ति झोंक देंगे। यह सिद्धान्तवाद नहीं तो और क्या है? इसीलिए वामपंथियों ने तब तक सरकार गिराने की जिद नहीं पकड़ी जब तक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जारी रही। लेकिन अमेरिका विरोध? वामपंथ के फटे हुए झोले में यही तो एक मुद्दा बचा है। उसे कैसे छोड़ दें? एक तौलिए से ही तो अपनी लाज ढके हुए हैं। यह भी उतार दें? तब हमें कोई सिद्धान्तवादी कैसे कहेगा?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

दूबे बनाम तिवारी

राजकिशोर

वह जुलाई की कोई तारीख थी। दो दिन से बारिश हो रही थी, पर आज धूप निकल आई थी। वायुमंडल में उमस का प्रवेश हो चुका था। मनमोहन सिंह की सरकार बच गई थी और कम्युनिस्ट तीसरा मोर्चा बनाने के लिए महात्माओं और साध्वियों की खोज में लगे हुए थे। वामपंथी तय नहीं कर पा रहे थे कि प्रकाश करात समस्या हैं या समाधान।

दोपहर होने के ठीक एक घंटा पहले दूबे जी तिवारी जी के घर में घुसे। दोनों कम्युनिस्ट थे। दोनों के पास पक्की सरकारी नौकरी थी, तीन शयनकक्षों का फ्लैट था, एक कार थी और अमेरिका में पढ़ रहा नौनिहाल था। दोनों समकालीन पतन से क्षुब्ध थे और उसके खिलाफ लेख लिखते थे। दोनों को स्त्री विमर्श से चिढ़ थी। पर व्यक्तिगत जीवन में वे स्त्री तत्त्व के महत्त्व को पहचानते थे। दोनों व्यक्ति के रूप में सफल थे और कम्युनिस्ट के रूप में विफल। पर इस विफलता का विश्लेषण दोनों का अलग-अलग था। एक का कहना था कि कम्युनिस्ट भारतीय समाज को इसलिए प्रभावित नहीं कर सके कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में नैतिकता का पालन नहीं किया। दूसरे का मानना था कि इस भ्रष्ट समाज में कोई नैतिक जीवन कैसे जी सकता है? फिर भी, दोनों में घोर प्रेम था। वे एक-दूसरे के काम आते थे और जो भी तीसरा होता, उसकी हँसी उड़ाते थे।

दूबे जी तिवारी जी के फ्लैट में आते ही रहते थे। लेकिन इस बार सब कुछ नया-नया लग रहा था। फर्नीचर नया, बुक शेल्फ नए, परदे नए और कंप्यूटर के स्थान पर लैपटॉप। दूबे जी को द्वेष का माइल्ड अटैक हुआ। बोले, अरे तिवारी जी, देश जितना पिछड़ रहा है, आप उतना ही आगे जा रहे हैं। पढ़ाते तो हम भी उन्हीं बच्चों को हैं, जिनको आप। लेकिन कहाँ हमारा घर और कहाँ आपका!

तिवारी जी मुसकराए, पर मूँछों के बाहर नहीं। प्रश्न जितना भौतिक था, उत्तर उतना ही साहित्यिक - आपको उसका गम नहीं होना चाहिए, जो नहीं है, जैसे सुरुचि।

दूबे जी ने चुनौती को महसूस किया। बोले, भइया, शमशेर से हमको क्यों मारते हो? क्या मुक्तिबोध मर गए?

तिवारी जी - मुक्तिबोध खतरनाक कवि हैं। क्योंकि वे सिर्फ वर्णन नहीं करते, माँग भी करते हैं। वे खरे कम्युनिस्ट थे। लेकिन सवाल खड़ा करते समय वे भूल जाते थे कि हम बूर्ज्वा व्यवस्था में रह रहे हैं। वे कक्षा में ही ठीक हैं। यह ब्रह्मराक्षस बनने का समय नहीं है। किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह कम्युनिस्ट भी देश-काल से बँधा हुआ होता है। इसका अतिक्रमण करना एक हवाई आदर्श है। हम यथार्थवादी हैं।

शुरुआत ही गलत हो गई थी। दूबे जी अपने सहकर्मी से उलझने नहीं आए थे। पर ज्ञान के प्रदर्शन की प्रतिद्वंद्विता से भागने में मर्दानगी नहीं थी। वे भी किताबें सिर्फ रखते नहीं थे, पढ़ते भी थे। बोले, यथार्थवाद भारत में फेल हो गया है। गांधी जी भाववादी थे, पर उनकी घुटने तक की धोती ने देश भर को बाँध लिया। यह देश सादगी पर जान छिड़कता है।

तब तक कोल्ड ड्रिंक के आधे भरे गिलास आ चुके थे। दोनों ने एक-एक चुस्की ले कर गला तर किया। फिर तिवारी जी ने मोर्चा सँभाला - इस धोती ने ही तो भारत को सर्वनाश कर दिया। हम गरीबी पर गर्व करते रहे। एक संपन्न आधुनिक राष्ट्र नहीं बन सके।

दूबे जी - किसी की पीठ पर छुरा मारना ठीक नहीं है। गांधी जी ने यह सीख थोड़े ही दी है कि भाइयो और बहनो, गरीब ही बने रहो। तुम्हें रोटी, कपड़ा और मकान नहीं, सिर्फ मोक्ष चाहिए। वे खुद गरीब की तरह रहते थे, क्योंकि जनता की असीम गरीबी देखने के बाद आलीशान कपड़े पहनना उनके जैसे नैतिक व्यक्ति के लिए संभव नहीं था।

तिवारी जी - इस नैतिकता की ऐसी की तैसी। एक आदमी के कम खाने-पीने से देश की समस्याएँ थोड़े ही हल हो जाएँगी? कम्युनिस्ट कल्पना लोक में नहीं रहते। वे हृदय परिवर्तन पर नहीं, व्यवस्था परिवर्तन पर जोर देते हैं।

दूबे जी - कम्युनिस्ट होने के नाते मान्यता तो मेरी भी यही है। पर मैं यह भूलना नहीं चाहता कि कम्युनिस्ट नैतिकता नाम की भी एक चीज होती है। यह ठीक है कि मैं खुद अपने जीवन में इसका पालन नहीं कर सका, पर यह बात हमेशा मुझे कचोटती है कि सर्वहारा की बात करने वाला आदमी खुद शान-शौकत से कैसे रह सकता है? कम्युनिस्ट अपने निजी जीवन में आदर्शों और मूल्यों का पालन नहीं करेगा, तो वह समाज को कैसे बदलेगा?

तिवारी जी - तो क्या आप चाहते हैं कि कम्युनिस्ट भिखमंगे हो जाएँ और कटोरा ले कर जंतर मंतर पर बैठे रहे? बूर्ज्वा व्यवस्था में हम बूर्ज्वा मूल्यों से नहीं बच सकते। सवाल यह नहीं है कि आप कैसे जीते हैं। सवाल यह है कि आप किसके लिए जीते हैं।

दूबे जी के दिमाग में एक जोरदार तर्क उभरा। पर अब उन्हें पछतावा होने लगा था कि जो बात परिहास में कही गई थी, वह कटुता की तरफ ले जा रही है। तब तक एअरकंडीशनर ने कमरा ठंडा कर दिया था। ठंडी हवा के झोंकों ने उन्हें मृदु कर दिया। तिवारी जी को राजी करने के लिए बोले - अजी छोड़िए इस फालतू बहस को। अभी तो कम्युनिज्म लाने का संघर्ष शुरू ही नहीं हुआ है। हम तो लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को बचाने में लगे हुए हैं। जब नदी पार करने का समय आएगा, तैरना भी सीख लेंगे।

तभी कोई जरूरी फोन आ गया। तिवारी जी बात करने लगे। दूबे जी ने राहत की साँस ली और सोचने लगे कि जिस काम से आए थे, उसे कैसे छेड़ें।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

दलित की बेटी

राजकिशोर

इस लोक सभा चुनाव की जिस घटना ने मुझे बुरी तरह आहत किया, वह है मायावती के साथ वोटरों का सलूक। वह बेचारी भारत का प्रधानमंत्री बनना चाहती थीं, पर यह मौका हाथ से निकल गया। उलटे वोट बाजार में उन्हें मार खानी पड़ी। उगते हुए सितारे को असमय ग्रहण लग गया। क्या बावरा देश है! वह समझता ही नहीं कि किसे वोट देना चाहिए और किसे नहीं। बताइए, यह भी कोई बात हुई कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को जिता दिया और बसपा को धूल चटा दी। अरे, मायावती को प्रधानमंत्री बनाने की ख्वाहिश नहीं थी, तो उन्हें उ.प्र. की मुख्यमंत्री क्यों बनाया! पता नहीं है कि किसी की आधी भूख मिटा कर उसके सामने से थाली नहीं हटा लेनी चाहिए?

मायावती के पराभव से मन बहुत खिन्न था। सोचा, शर्मा जी के पास चलूँ। शायद वहाँ कुछ समाधान निकल आए। उनके पास हर पहेली का कुछ न कुछ हल रहता है। तब और मजा आता है, जब वे कोई पहेली सुलझाते-सुलझाते एक नई पहेली गढ़ने लगते हैं। मैं चुप रह कर उन्हें सुनता रहता हूँ। उनके साथ रहते-रहते इतना इल्म तो हो ही गया है कि यह दुनिया ही एक पहेली है। इस मामले में अल्बर्ट आइंस्टीन की राय से मैं सहमत नहीं हूँ जो मानते थे कि ईश्वर पासे नहीं फेंकता। वह नहीं फेंकता होता, तो हम पासे क्यों फेंकते हैं?

शर्मा जी अभी-अभी कहीं से लौटे थे। उनके कपड़े धूल से पटे हुए थे। मैं कुछ पूछूँ, इसके पहले ही उन्होंने बताना शुरू कर दिया, 'पास की दलित बस्ती से लौट रहा हूँ। वहाँ चार दिन से पानी नहीं आ रहा है। बस्ती के लोग नगर निगम गए, तो उन्हें ताना सुनने को मिला, 'जाओ, जाओ, अब पानी तभी आएगा, जब मायावती प्रधानमंत्री बन जाएँगी। तुम लोग कांग्रेस सरकार का पानी पीना थोड़े ही पसंद करोगे!' मुझे पता चला, तो दौड़ा-दौड़ा गया। किसी तरह मना-मुना कर पानी का बंदोबस्त करवाया।'

मैं चकित, 'क्या पानी भी कांग्रेसी या कम्युनिस्ट, भाजपाई या बसपाई होता है? जैसे पहले रेलवे स्टेशनों पर हिन्दू पानी, मुसलमान पानी हुआ करता था!'

शर्मा जी को मेरे अज्ञान पर दुख हुआ। बोले, 'तुम भारतीय समाज को नहीं जानते। जब यहाँ भगवान राम को रोजा-नमाज वालों के खिलाफ खड़ा किया जा सकता है, तो पानी क्या चीज है? प्रशासन उधर ही झुकता है जिधर शासन की बगाडोर होती है। तुमने देखा नहीं, जो भी रेल मंत्री बनता है, वह अपने राज्य के लिए सबसे अधिक रेलगाड़ियाँ चलवाने लगता है!'

'सो तो ठीक है। दलितों के साथ भेदभाव अभी भी कायम है। तभी तो एक दलित की बेटी के मन में प्रधानमंत्री बनने की इच्छा पैदा हुई, तो सभी उसके खिलाफ हो गए। चुनाव का रंग ही बदल गया। कांग्रेस की सरकार बनवा

दी गई।' मैंने रुआँसा होते हुए कहा।

'दलित की बेटी? मैं दलितों की बात कर रहा था।' शर्मा जी की त्यौरियाँ चढ़ने लगीं।

'तो आप मायावती को दलित नहीं मानते?' मेरे अचरज की सीमा नहीं रही। शर्मा जी को यह क्या हो गया?

'नहीं, मैं उन्हें दलित नहीं मानता। दलित की बेटी वे जरूर हैं, पर उ.प्र. का मुख्यमंत्री बनने के बाद भी, करोड़ों की पूँजी जमा करने के बाद भी जो अपने को दलित बतलाता है, उसे दलित मानने के लिए कम से कम मैं तैयार नहीं हूँ।' शर्मा जी ने तैश के साथ कहा।

'फिर भी वे दलितों की नेता तो हैं ही।' मैं मैदान छोड़ने के लिए तैयार

नहीं था।

शर्मा जी के पाँवों में अंगद की-सी ताकत आ गई, 'दलितों का नेता क्या हीरा-मोती पहनता है? क्या वह राज्य भर में अपनी मूर्ति खड़ा करवाता रहता है? क्या उसकी संपत्ति की थाह लेने के लिए सीबीआई उसके पीछे पड़ी रहती है? क्या वह हर सरकारी दफ्तर से नियमित वसूली करता है?'

मैंने तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया, 'तो क्या आप चाहते हैं कि दलित लोग आज भी फटा कुरता पहनें और नंगे पाँव घूमते रहें? क्या उन्हें दूसरों की तरह अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने का अधिकार नहीं है?'

शर्मा जी तनिक भी विचलित नहीं हुए, 'अधिकार है, पूरा अधिकार है। बल्कि मैं तो कहता हूँ कि सबसे पहला अधिकार उन्हीं का है। हमने इतने लंबे समय तक उनके साथ जो गंदा सलूक किया है, उसका प्रायश्चित्त यही है कि अब उन्हें सबसे पहली पाँत में बैठाया जाए। अफसोस इस बात का है कि मायावती ने इस तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया। वे सभी दलितों का हिस्सा अकेले डकारना चाहती हैं। यह सामाजिक न्याय नहीं, सामाजिक अन्याय है। दलितों को पहले ऊँची जात वालों ने चूसा, अब वे अपने नेताओं द्वारा ही चूसे जा रहे हैं।'

मैं निरुत्तर होने को तैयार नहीं था, 'दलित आपस में क्या करते हैं, इससे आपको क्या मतलब? आप उन्हें उनका हक दीजिए और घर जाइए।'

शर्मा जी ने अपने परिचित लहजे में कहा, 'तुम मूर्ख हो और मूर्ख ही रहोगे। अरे, जो दलित मुख्यमंत्री खुद दलितों के साथ न्याय नहीं कर सकता, वह गैर-दलितों के साथ खाक न्याय करेगा? सरकार दलितों की या ऊँची जात वालों की नहीं होती। वह सबके लिए होती है। मायावती यह मान कर चल रही हैं कि सरकार सिर्फ उनके लिए है। इसलिए वे सबसे पहले और सबसे अधिक न्याय अपने साथ कर रही हैं।'

'क्या इसीलिए उन्हें इस बार जन समर्थन नहीं मिला?' मेरे मुँह का स्वाद बिगड़ने लगा।

'और क्या? जो राज्य सरकार के इम्तहान में फेल हो गया, उसे केंद्र सरकार के इम्तहान में कौन बैठने देगा?'

मैंने कहा, 'कोई नहीं।' और चलता बना।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

देशप्रेमियों का जुलूस

राजकिशोर

वे जा रहे हैं। वे संसद की ओर जा रहे हैं। वे एक-दूसरे के खिलाफ वोट देने जा रहे हैं। वे सभी के सभी देशप्रेमी हैं। वे एक-दूसरे को देश का दुश्मन मानते हैं। एक को गिराना है। एक को बचाना है। नहीं गिरी तो देश अमेरिका के हाथ में बंधक हो जाएगा। नहीं बची तो देश कमजोर हो जाएगा। देश को बचाने का जज्बा इतना मजबूत है कि पुरानी दोस्तियाँ-दुश्मनियाँ भुला दी जा रही हैं। पुरानी टोलियाँ टूट चुकी हैं। नई टोलियाँ बन रही हैं। दोनों के पीछे देशप्रेम का दीवानापन है। हाय मेरा देश!

दिल्ली में ही रहता हूँ। बताया जाता है कि देशप्रेमियों का शहर है। होगा। पर इतने देशप्रेमियों को मैंने एक साथ कभी नहीं देखा। सभी के सभी देशप्रेमी जत्थों में बँटे हुए हैं। कुछ जत्थे छोटे भी हैं - तीन-तीन, चार-चार के। जिसके पास जितने लोग हैं, उन्हीं को ले कर वह देश बचाने निकल पड़ा है। इस महासंग्राम में हर एक की कीमत है। कोई-कोई अकेले भी चल रहा है। अकेला है तो उसकी कीमत और ज्यादा है।

सबसे आगे कम्युनिस्टों का जत्था है। वह अपने को सबसे बड़ा देशप्रेमी मानता है। वह बहुत पुराना देशप्रेमी है - सन बयालीस से ही। उसका नारा है - करार से इनकार है...बाकी सब स्वीकार है। आखिर चार साल से वह सब कुछ स्वीकार करते हुए ही चल रहा था। महँगाई बढ़ने लगी, तो उसने वक्तव्य जारी कर दिया। गरीबी कम नहीं हुई, तो उसने प्रधानमंत्री को पत्र लिख दिया। पेट्रोल की कीमत बढ़ाई गई, तो उसने एक छोटा-सा जुलूस निकाल दिया। लेकिन सरकार को चोट नहीं पहुँचाई। दरअसल, देशप्रेम में वह इस कदर डूबा हुआ था कि चार साल में उसे पता ही नहीं चल पाया कि वह जिस सरकार का समर्थन कर रहा था, वह देशप्रेमी नहीं है। जब परमाणु करार का मामला आया, तब जा कर यह भेद खुला। ये तुरंत सरकार से अलग हो गए। अब सरकार को गिराने जा रहे हैं। उत्तेजना का स्तर देखते हुए लग रहा है कि ये दिल्ली की नहीं, वाशिंग्टन की सरकार को गिराने जा रहे हैं।

कांग्रेस का जत्था सबसे बड़ा है। वह बड़े आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ रहा है। उसके नेता मनमोहन सिंह गंभीर मुद्रा बनाए हुए धीरे-धीरे चल रहे हैं। बीच-बीच में कोई युवा सांसद नारा लगा देता है - परमाणु करार होके रहेगा...नहीं हुआ तो खून बहेगा। यूरेनियम यूरेनियम...मिलेनियम मिलेनियम। एक युवा पत्रकार मुसकरा कर पूछती है - यह यूरेनियम क्या होता है? सांसद गंभीरता से जवाब देता है - कुछ भी होता हो। पर वह है देश हित में। उसके बिना हम प्रगति नहीं कर सकते। एक और युवा पत्रकार राहुल गांधी से पूछता है - अगर आपकी सरकार गिर गई तो? राहुल जवाब देते हैं - देश हित में हम ऐसी सैकड़ों सरकारों को गिरने दे सकते हैं। हमारे लिए देश पहले है, सरकार बाद में।

मायावती आज अलग ही धज में हैं। वे सांसद नहीं हैं, पर अपने सांसदों का मनोबल बढ़ाने के लिए और इस पर नजर रखने के लिए कि कोई छिटक न जाए, खुद अपने जत्थे का नेतृत्व कर रही हैं। उनका मानना है कि परमाणु करार देश के हित में नहीं है, क्योंकि वामपंथी उसके विरोध में हैं। वामपंथी इस समय सबसे बड़े देशप्रेमी हैं, क्योंकि वे बहुजन समाज पार्टी का साथ दे रहे हैं। बहुजन समाज पार्टी देश हित में है, क्योंकि मायावती उसकी नेता हैं। एक पत्रकार जानना चाहती है - आपके प्रधानमंत्री बनने में कितनी देर है? मायावती के होंठों पर मुसकराहट आ जाती है - हो सकता है, इस सरकार के गिरने के बाद ही...राजनीति संभावनाओं का खेल है। यहाँ कब नहीं पूछते, कौन और कैसे पूछते हैं।

मुलायम सिंह और अमर सिंह कंधे से कंधा मिला कर चल रहे हैं। मुलायम बीच-बीच में अपने मुसलमान सांसदों पर एक नजर डाल लेते हैं कि कहीं कोई भाग तो नहीं गया। दोनों के चेहरे पर दुविधा की धुंध है। कभी मुलायम अमर सिंह से पूछ लेते हैं - हमारे सभी काम हो जाएँगे न? कभी अमर सिंह

मुलायम सिंह को याद दिलाते हैं - एक भी बात भूलिएगा नहीं, मेरी इज्जत का सवाल है।

भाजपा का जत्था सर्वाधिक संगठित और अनुशासित है। लालकृष्ण आडवाणी की बाँछें खिली हुई हैं। उनकी बेसब्री देखते ही बनती है। कब मनमोहन हटें, कब हम बैठें। वे एक पत्रकार को बयान लिखवा रहे हैं - हम परमाणु शक्ति के पक्ष में हैं। पर करार का यह प्रारूप हमें मंजूर नहीं। दरअसल, यह परमाणु करार देश हित में नहीं, हमारे हित में है। उसकी राख पर हमारा पुनर्जन्म होगा। सत्ता में आने के बाद हम इस करार को अपने ढंग से लागू करेंगे। तभी इस जत्थे का एक कार्यकर्ता नारा लगाता है - 'पिछली बार राम था...अबकी बार वाम है।'

जेल से छूट कर आए सांसदों की चाल में अलग की अकड़ है। वे मानो यह घोषणा करते हुए चल रहे हैं कि हम जेल में हैं तो क्या, देश हित के मामले में किसी से पीछे नहीं हैं।

मेरे भीतर भी देशप्रेम की भावना हिलोर लेती है। पर समझ में नहीं आता, किस जत्थे में शामिल हो जाऊँ। सभी की आँखों में नशा है। सभी के हाथों में खून है। अपने आपसे कहता हूँ - बेटा, यह इक्कीसवीं शताब्दी है। अब देशप्रेमी होना पहले की तरह आसान नहीं रह गया। असके लिए सबसे पहले देश पर कब्जा करना पड़ता है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

दो अंधों की बातचीत

राजकिशोर

दोनों अंधे काफी समय के बाद मिले थे। पहले ने दूसरे को गले से लगा लिया। दूसरे को बहुत राहत मिली। पहला भी खुश हुआ। आँखवालों के बीच से निकल कर यह अपनी दुनिया में आ जाना था। वहाँ जितना अँधेरा था, उससे ज्यादा रोशनी थी। या, कम से कम ऐसा लगता था।

पहला अंधा : 'कैसे हो भाई? कहीं बाहर तो नहीं चले गए थे? तुम्हारा बहुत इन्तजार रहा।'

दूसरा अंधा : 'बाहर कौन ले जाता है? लोग समझते हैं, इसकी अतिरिक्त देखभाल करनी होगी। सो अपने में सिमटा रहता हूँ। तुम कैसे हो?'

पहला अंधा : 'मेरा हालचाल भी तुम्हारी तरह ही अच्छा है। न उठने की खुशी, न सोने का गम। लोग कहते हैं, दुनिया बदल रही है। तेजी से बदल रही है। मुझे तो कोई बदलाव दिखाई नहीं देता।'

पहला अंधा : बिलकुल भोलराम हो। आँख न होने पर भी देखने की उम्मीद करते हो। मैंने तो यह उम्मीद बहुत पहले ही छोड़ दी थी। आँख बन्द किए चुपचाप पड़ा रहता हूँ।

दूसरा अंधा : 'मानो आँख खोल देने से सब कुछ दिखाई पड़ने लगेगा।'

पहला अंधा : 'आँखवालों की तरह बात की खाल मत निकालो। भाषा तो उन्हीं की है। मुहावरे भी उन्हीं के। उनका मतलब हमें अपनी स्थिति के अनुसार निकालना चाहिए। इतने दिनों से अंधे हो। अभी तक तुम्हारी समझ में नहीं आया कि हमेशा शब्दों पर नहीं, अर्थ पर जाना चाहिए। शब्द दूसरों के होते हैं, अर्थ हमारा।'

दूसरा अंधा : 'ठीक कहते हो। मेरी जिन्दगी तो अर्थ का पीछा करते हुए ही बीत रही है। शायद तुम्हारी भी। नहीं तो दिल को छू लेनेवाली बात नहीं कहते।'

पहला अंधा : 'कोई कह रहा था कि तुम्हारे घरवाले तुम्हारा इलाज कराने के लिए चेन्नई ले जा रहे हैं।'

दूसरा अंधा : 'हाँ, चर्चा तो चली थी। उन्होंने कहीं अखबार में पढ़ा था कि अब उनका इलाज सम्भव है जो जन्म से अंधे नहीं हैं। लेकिन इसमें खर्च बहुत आता है। फिर इस बात की पूरी गारंटी भी नहीं है कि रोशनी वापस लौट ही आएगी। इसलिए मैंने ही मना कर दिया।'

पहला अंधा : 'कोशिश करके देखने में क्या हर्ज था। क्या पता, तुम्हें दुनिया सचमुच दिखाई देने लगती।'

दूसरा अंधा : 'जितनी जरूरत है, उतनी तो अभी ही दिखाई देती है। मेरे घर में कमाने वाला बस मेरा छोटा भाई है। खाने वाले आठ हैं। उसकी इनकम भी इतनी नहीं है कि वह दो-तीन लाख रुपए का जुआ खेल सके। मान लो, रुपए खर्च हो गए और मैं अन्धा का अन्धा रह गया। तब? वह तो कह रहा था कि कर्ज ले लेंगे। मैंने ही मना कर दिया।'

पहला अंधा : 'अच्छा, यह नहीं हो सकता कि सरकार यह लोन सीधे तुम्हें दे देती और रोशनी वापस आने पर तुम दिन-रात काम करके उसका कर्ज उतार देते।'

दूसरा अंधा : 'और रोशनी वापस नहीं लौटती तो?'

दूसरा अंधा : 'तब क्या? तुम्हारा लोन भी उसी तरह माफ कर देती जैसे वह किसानों का कर रही है।'

दूसरा अंधा : 'हाँ, मैं भी तो किसान ही हूँ। दिखाई नहीं देता, इसलिए खेतीबाड़ी के काम में ज्यादा सहायता नहीं कर पाता। क्या सरकार को यह दिखाई नहीं देता?'

पहला अंधा : 'सरकार को सब दिखाई देता है और कुछ भी दिखाई नहीं देता। किसान कई साल से मर रहे थे। तब सरकार को दिखाई नहीं दे रहा था। अब चुनाव नजदीक आ गया है, तो दिखाई देने लगा है।'

दूसरा अंधा : 'यानी जो आँखवाले हैं, वे भी उतना ही देखते हैं जितना वे देखना चाहते हैं। उनसे तो हम अंधे ही भले, जिन्हें सब कुछ एक जैसा दिखाई देता है। एक घुप्प अँधेरा, जिसे चीरते हुए सिर्फ आवाजें हमारे पास आ सकती हैं।'

पहला अंधा : 'इसीलिए तो हमारे लिए आवाजों का इतना महत्व है। हमें हर साँस सुनाई पड़ती है, उनके लिए शोर का भी कोई मूल्य नहीं है।'

दूसरा अंधा : 'सुना, तुम्हारे यहाँ टीवी आ गया है। दिन-रात टीवी सुनते होंगे।'

पहला अंधा : 'सुनता हूँ, पर बहुत ज्यादा नहीं। सुनने से देखने की इच्छा होती है। इसलिए अपनी इच्छा को काबू में रखता हूँ। चूँकि बाकी दुनिया से मेरा सम्पर्क सुन कर ही है, इसलिए बहुत ज्यादा सुनना भी अच्छा नहीं लगता। और, सुन कर भी क्या कर लूँगा? मुझे तो बहुत दिनों से लग रहा है कि मैं दुनिया में ही नहीं हूँ।'

दूसरा अंधा : 'हम अगर अमीर परिवारों के अंधे होते, तो शायद हमारी यह दशा न होती। मैं सुबह-शाम रेडियो जरूर सुनता हूँ। बताते हैं कि अमेरिका, यूरोप में अन्धों के लिए नए-नए यन्त्र बन रहे हैं जिससे उनका जीवन आरामदेह बन सके। हमारे बारे में यहाँ कोई कुछ सोचता ही नहीं है।'

पहला अंधा : 'जब आँखवाले गरीबों के लिए ही कोई कुछ नहीं सोचता, तो अंधे गरीबों की ओर कौन ध्यान देगा? एक तो पहले से ही दुनिया बँटी हुई थी - आँखवाले और बिना आँखवाले। उस पर अमीर-गरीब का फर्क। उसमें भी गाँव और शहर का अन्तर। शहरी अन्धों के लिए तो फिर भी कुछ हो जाता है। हम ठहरे देहाती अंधे। हमारी औकात ही क्या है!'

दूसरा अंधा : 'कुछ दिन पहले हमारे गाँव में अंधता निवारण कार्यक्रम के तहत कुछ लोग आए थे। उन्होंने चौपाल पर मीटिंग भी की। पर मुझे नहीं बुलाया।'

पहला अंधा : 'तुम्हें तब बुलाएँगे जब दृष्टिहीन कल्याण जैसी कोई योजना बनेगी। इन्तजार करो। जब सभी वर्गों की ओर ध्यान दिया जा रहा है, तो एक दिन हमारा भी नम्बर आएगा।'

दूसरा अंधा : 'देखते हैं।'

पहला अंधा : 'हाँ, देखने के अलावा हम और कर ही क्या सकते हैं!'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

नक्सलवादियों से बातचीत

राजकिशोर

माननीय प्रधानमंत्री काफी दिनों से नक्सलवादियों से बातचीत करना चाहते थे। पर कोई जुगाड़ नहीं बैठ रहा था। इसके लिए एक स्पेशल टास्क फोर्स बनाया गया। टास्क फोर्स ने नक्सलवादियों के एक समूह को प्रधानमंत्री से बातचीत करने के लिए तैयार कर लिया।

वे पाँच थे। देखने में सामान्य और सभ्य इन्सान लग रहे थे। सिर्फ पाँचवाँ कुछ अलग-सा जान पड़ता था। उसकी बाईं भुजा बार-बार फड़कने लगती थी। सिक्यूरिटीवालों ने उस पर आपत्ति की थी, पर राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ने जाँच के बाद उसे क्लियर कर दिया था। रा.सु. सलाहकार का कहना था कि यह एक नॉर्मल मेडिकल कंडीशन है, इसका विचारधारा से कोई संबंध नहीं है।

प्रधानमंत्री ने अपनी मशहूर मुस्कान के साथ शिष्टमंडल के सदस्यों का स्वागत किया। नक्लसवादियों ने उन्हें तहे-दिल से धन्यवाद दिया। इसके बाद बातचीत शुरू हुई।

प्रधानमंत्री - मुझे पता है कि आपके और हमारे विचारों के बीच काफी दूरी है। लेकिन मैं दूरियों को बढ़ाने में नहीं, उन्हें पाटने में यकीन करता हूँ।

नक्सलवादी - हम भी इसी इरादे से आए हैं। अगर बातचीत से काम हो जाए, तो हमें जंगलों में पड़े रहने का कोई शौक नहीं है।

प्रधानमंत्री - मुझे एक भेद खोलने की अनुमति दीजिए। एक जमाने में मुझे नक्सलवादियों से सहानुभूति थी। अगर रिजर्व बैंक, विश्व बैंक, फाइनांस मिनिस्ट्री वगैरह की जिम्मेदारी मुझ पर न आ गई होती, तो शायद मैं भी नक्सलवादी हो जाता।

पाँचवें की बाईं भुजा बहुत जोर से फड़की। चौथे ने उसकी पीठ पर हाथ रख उसे सँभालने की कोशिश की।

नक्सलवादी - फिर आपने अमेरिका द्वारा लादी गई बाजार-केंद्रित अर्थनीति को मंजूर कैसे कर लिया?

प्रधानमंत्री - माफ कीजिए, यह मेरा नहीं, देश का फैसला था।

नक्सलवादी - यह असत्य है। क्या इस मामले में आपने कभी देश की राय ली?

प्रधानमंत्री - संसद हमारे साथ है और संसद देश का प्रतिनिधित्व करती

है।...वैसे मैं भी आप लोगों से पूछ सकता हूँ कि नक्सलवाद की राह पर चलने के पहले आप लोगों ने क्या देश से समर्थन हासिल कर लिया था?

नक्सलवादी - देश की जनता हमारे साथ है। हम जिनके बीच काम करते हैं, वे हमसे पूरी तरह सहमत हैं।

प्रधानमंत्री - संसद जनता से बाहर नहीं है। तभी तो मैं आप लोगों से अपील करना चाहता हूँ कि चूँकि हम दोनों ही देश हित में काम कर रहे हैं, इसलिए हमें मिल-जुल कर काम करना चाहिए।...अच्छा, यह बताइए कि आप लोग चाहते क्या हैं?

नक्सलवादी - हम समाजवाद चाहते हैं।

प्रधानमंत्री - इस पर हमारा आपसे कोई मतभेद नहीं है। हमारे संविधान में समाजवाद को मान्यता दी गई है। कांग्रेस पार्टी भी समाजवाद के प्रति प्रतिबद्ध है।

नक्सलवादी - हम अमूर्त समाजवाद नहीं, ठोस समाजवाद चाहते हैं। हम निजी पूँजी को समाप्त करना चाहते हैं।

प्रधानमंत्री - निजी पूँजी रही कहाँ अब? अब तो कॉरपोरेट पूँजी है, जो वास्तव में शेयरहोल्डरों का पैसा है। इसमें बैंकों का भी धन लगा है।

नक्सलवादी - हम इस कॉर्पोरेट कल्चर का विरोध करते हैं। हम मल्टीनेशनल्स का विरोध करते हैं। हम सामंतवाद के खिलाफ हैं। हम चाहते हैं कि दलितों और आदिवासियों को इज्जत और बराबरी के साथ जीने का हक मिले। सभी तरह का शोषण खत्म हो। आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा हो।...

प्रधानमंत्री - हम आपकी सभी बुनियादी माँगों से सहमत हैं। बल्कि उसी दिशा में काम भी कर रहे हैं। यह सब तभी संभव है जब तेजी से विकास हो। आपसे मेरी गुजारिश है कि विकास में बाधा न पैदा करें। विकास न होने पर कोई भी बड़ा राष्ट्रीय लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता।

पाँचवें की भुजा फिर फड़की। इस बार किसी ने हस्तक्षेप नहीं किया।

नक्सलवादी - विकास तो हम भी चाहते हैं, पर ऐसा विकास किस काम का, जो अमीरों को और अमीर तथा गरीबों को और गरीब बनाए!

प्रधानमंत्री - इस बात से हम भी चिंतित हैं। मैं दर्जनों बार कह चुका हूँ कि विकास का लाभ सभी को मिलना चाहिए।

नक्सलवादी - सवाल कहने का नहीं, करने का है। व्यवहार में तो सब कुछ उलटा हो रहा है। हम मानते हैं कि बूर्ज्वा सरकारें समाजवादी अजेंडा को पूरा करने में सबसे बड़ी बाधा है।

प्रधानमंत्री - तो फिर आपको रोका किसने हैं? आप चुनाव लड़ कर आइए और देश को अपने मुताबिक चलाइए।

नक्सलवादी - इस चुनाव प्रणाली में जनता के सच्चे प्रतिनिधि चुन कर नहीं आ सकते। आप लोगों ने इसे पैसेवालों और अपराधियों की कुश्ती बना रखा है।

प्रधानमंत्री - आपकी आपत्ति सही है। हमें चुनाव प्रणाली को सुधारने के बारे में गंभीरता से विचार करना होगा।

नक्सलवादी - करना चाहिए, करना होगा, कर रहे हैं...यह सब सुनते-सुनते जनता ऊब चुकी है। उसका धीरज खत्म हो गया है। हम ठोस नतीजे चाहते हैं।

प्रधानमंत्री - देखिए, मेरे पास कोई जादू की छड़ी तो है नहीं कि रातों-रात सब ठीक हो जाए...

नक्सलवादी - जब तक ठोस नतीजे नहीं निकलते, लोग लड़ने के लिए मजबूर हैं।

प्रधानमंत्री - लोकतंत्र में किसी को संघर्ष करने से मना नहीं किया जा सकता। बस हिंसा नहीं होनी चाहिए।

नक्सलवादी - हिंसा हम नहीं, पुलिस करती है। जमींदार करते हैं, शोषक जमातों के गुर्गे करते हैं। हम तो सिर्फ प्रतिरोध करते हैं।

इस तरह बातचीत घंटे भर तक जारी रही। कोई नतीजा नहीं निकला। अंत में तय हुआ कि अगली बातचीत तीन महीने बाद होगी।

अगले दिन दिल्ली के अखबारों ने दो खबरें ब्रेक कीं। पहली खबर यह थी कि बातचीत के लिए राजी करने के लिए नक्सलवादियों को काफी मात्रा में हथियार दिए गए थे। दूसरी खबर के अनुसार, जो बातचीत के लिए आए थे, वे असली नक्सलवादी नहीं थे। टास्क फोर्स ने फर्जी आदमियों को नक्सलवादी बता कर प्रधानमंत्री से मिलवा दिया था।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

नैनो के इशारे

राजकिशोर

नैनो कार स्वामी संघ का प्रतिनिधि मण्डल जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से मिलने उनके दफ्तर पहुँचा, तो वहाँ एक आश्चर्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। एक और प्रतिनिधि मण्डल प्रधानमंत्री से मिलने के लिए पहुँचा हुआ था। यह प्रतिनिधि मण्डल गैर-नैनो कार स्वामियों का था। पहले प्रधानमंत्री कार्यालय ने सोचा था कि दोनों पक्षों की आपस में बातचीत करा दी जाए, जिससे मामला आपस में ही सुलझ जाए। लेकिन बाद में तय किया गया कि दोनों पक्षों को अलग-अलग सुना जाए - दोनों को आमने-सामने बैठाने पर मारपीट हो जाने का खतरा था।

प्रधानमंत्री ने पहले नैनो कार स्वामी संघ के प्रतिनिधियों को बुलाया। जब वे यथास्थान बैठ गए, तो उनके प्रतिनिधि ने बात शुरू की - 'मिस्टर प्राइम मिनिस्टर, आपको हमारे एसोसिएशन के नाम पर ताज्जुब हो रहा होगा। आप सोच रहे होंगे, जब नैनो कार बाजार में आई ही नहीं, तो नैनो कार स्वामी संघ कहाँ से बन गया? दरअसल, नैनो कार उसी समय अस्तित्व में आ गई थी, जब रतन टाटा ने उसकी कल्पना की थी। इसी तरह, नैनो कार स्वामी संघ उसी दिन बन गया, जिस दिन रतन टाटा ने प्रगति मैदान में उसे चला कर दिखा दिया। कल तक सारी दुनिया रतन टाटा पर हँस रही थी, आज पूरा भारत हमारे संघ का सदस्य बनने की प्रतीक्षा कर रहा है।'

प्रधानमंत्री के चेहरे पर दुअन्नी भर मुस्कराहट प्रगट हुई।

प्रतिनिधि ने बात आगे बढ़ाई - 'तो हमारी पहली माँग यह है कि नैनो कार खरीदनेवालों की वेटिंग लिस्ट हमारे संघ के माध्यम से ही बनाई जाए। हमारी सिफारिश के बिना किसी को भी यह कार खरीदने का परमिट न दिया जाए।'

प्रधानमंत्री की भौंहें थोड़ी-सी उठीं, मानो पूछ रहे हों, यह कैसे संभव है?

प्रतिनिधि ने जवाब दिया - 'यह बिल्कुल संभव है। इसके लिए आपकी सरकार को नैनो को बीपीएल कार घोषित करना होगा। यह हमारी दूसरी माँग है।'

प्रधानमंत्री ने लम्बी साँस ली - हूँ...

प्रतिनिधि - 'प्रायः सभी गाँवों में राशन कार्ड के लिए नई बीपीएल सूची बन रही है। इसे लेकर हर जगह विवाद है। लाखों लोग शिकायत कर रहे हैं कि उनका नाम इस सूची में आने से रह गया है। कहीं-कहीं तो दंगा भी हो गया। यह देखकर हमने सोचा कि नैनो की बीपीएल सूची सरकारी माध्यम से न बनाई जाए। सरकार सूची बनाएगी, तो

भ्रष्टाचार होगा। यह सूची हम बनाएँगे। हम इसका भी ध्यान रखेंगे कि एक परिवार में एक से ज्यादा सदस्य को नैनो का कोटा नहीं मिले। महिलाओं के लिए तैंतीस प्रतिशत आरक्षण का इंतजाम किया जाएगा। सरकार चाहे तो जिला स्तर पर नैनो कार वितरण निगरानी समितियाँ बना सकती है।'

प्रधानमंत्री के चेहरे पर हलका-सा तनाव आया।

प्रतिनिधि - 'हम इसके लिए प्रति कार पाँच हजार रुपए तक देने को तैयार हैं।'

प्रधानमंत्री की मुद्रा कह रही थी - ठीक है, आगे बढ़िए।

प्रतिनिधि - 'हमारी अगली माँग यह कि नैनो कारों पर कोई सरकारी टैक्स न लगाया जाए। यह कार एक लाख रुपए की है और एक लाख रुपए की ही रहनी चाहिए। टाटा का कहना है कि हम तो इसे एक लाख पर ही बेचना चाहते हैं, पर सरकार के बीच में आ जाने पर यह एक लाख तीस हजार की हो जाएगी। भारत एक विकासशील देश है। हम एक लाख का इंतजाम तो कर सकते हैं, पर यह तीस हजार कहाँ से लाएँ? अतः निवेदन है कि नैनो कार और जनता के बीच सरकार न आए।'

प्रधानमंत्री चुपचाप सुनते रहे।

प्रतिनिधि - 'सरकार की भूमिका पर भी हमने विचार किया है। उसकी भूमिका तब शुरू होनी चाहिए, जब हम पेट्रोल पम्प पर पहुँचेंगे। नैनो कार के लिए पेट्रोल रियायती दर पर मिलनी चाहिए, जैसे बीपीएल कार्डधारियों को सस्ती दर पर राशन दिया जाता है। नहीं तो भारत की कार क्रांति अधूरी रह जाएगी। जैसे शिक्षा क्रांति अधूरी रह गई है। स्कूल है तो छात्र नहीं। छात्र हैं तो शिक्षक नहीं। शिक्षक और छात्र, दोनों हैं तो ब्लैकबोर्ड नहीं। ब्लैकबोर्ड भी है, तो चाक नहीं। लघु कार क्षेत्र में हम यह नहीं होने देंगे। हम नहीं चाहते कि देश के हर दरवाजे पर एक नैनो खड़ी हो। कार की सही जगह सड़क है और नैनो को सड़क पर लाने के लिए पेट्रोल चाहिए। पेट्रोल की मौजूदा कीमतों पर हमारे संघ के सदस्य अपनी-अपनी कार को सड़क पर नहीं ला सकेंगे।'

प्रधानमंत्री अपने सामने रखे पैड पर पेंसिल से कुछ हिसाब लगाने लगे।

प्रतिनिधि - 'हमारी अंतिम माँग यह है कि प्रधानमंत्री स्वयं नैनो कार का इस्तेमाल करें। इससे इस कार की एक राष्ट्रीय हैसियत बन जाएगी। लोग हम पर हँसेंगे नहीं। हम प्रधानमंत्री को अपने संघ का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाना चाहते हैं। कृपया इसके लिए अपनी अनुमति प्रदान करें।'

प्रधानमंत्री के चेहरे पर दुअन्नी लौट आई। वे उठने को हुए।

प्रतिनिधि मण्डल भी उठ पड़ा।

अब दूसरे प्रतिनिधि मण्डल की बारी थी। प्रधानमंत्री ने उसका भी स्वागत अपनी दुअन्नी मुसकान से किया।

प्रतिनिधि मण्डल के नेता ने कहा - 'हम नैनो कार स्वामी संघ की माँगों के बारे में कुछ अर्ज करने आए हैं।'

प्रधानमंत्री ने अपना सिर थोड़ा-सा उठा दिया।

प्रतिनिधि - 'हम देश के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके पास नैनो को छोड़कर दूसरे मॉडलों की कारें हैं। नैनों के बाजार में आने के बाद हमारी समस्याएँ बढ़ जाएँगी। सबसे बड़ी चुनौती यह होगी कि हम अपनी गाड़ियाँ कहाँ चलाएँ?'

प्रधानमंत्री मण्डल के नेता ने अपनी टाई ठीक करते हुए कहा - 'हमारी सिर्फ एक ही माँग है।'

प्रधानमंत्री की भौंहें चढ़ीं।

प्रतिनिधि मण्डल का नेता - 'हम चाहते हैं कि नैनो कारों के लिए सड़क के बाईं ओर एक अलग से लेन बना दी जाए। जैसे साइकिल चालकों के लिए बनाई जा रही है। बेहतर हो कि एक ही लेन दोनों के लिए निश्चित कर दी जाए।'

प्रधानमंत्री मुसकराए या थोड़ा और गंभीर हो गए, यह सूचना अभी तक नहीं मिल सकी है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

नैनो की विदाई पर

राजकिशोर

मैं पश्चिम बंगाल का हूँ, इसलिए अपनी प्यारी बिटिया नैनो की विदाई पर मेरी आँखें भर आई हैं। बहुत दिनों के बाद बिटिया घर आई थी। वरना तो जब से मुझे होश आया है, मैंने लोगों को यहाँ से जाते ही देखा है। जो एक बार यहाँ से जाता है, दुबारा नहीं लौटता। नैनो बिटिया के साथ तो और भी बुरा हुआ। वह बेचारी आई, कुछ ही दिन रही और अब उसे वापस जाना पड़ रहा है। आँसू रुक नहीं रहे हैं। पश्चिम बंगाल वालों को पता नहीं कब तक रोना पड़ेगा।

नैनो बिटिया ने किसी का क्या बिगाड़ा था? वह खुद से तो यहाँ आई नहीं थी। इतना बड़ा देश है। कहीं भी जा सकती थी। सभी बुला रहे थे। उसने पश्चिम बंगाल का चुनाव इस उम्मीद से किया कि यहाँ उसे प्यार-दुलार मिलेगा। ज्योति बसु बेहद गंभीर रहते थे। न ऊधो से लेना, न माधो को देना। वे जानते थे कि हमारा किला तो गाँवों में है, उसमें कौन सेंध लगा सकता है? बुद्धदेव बाबू शुरू से ही महत्वाकांक्षी रहे हैं। लेखक हैं। विद्वान भी हैं। जानते हैं कि जब तक सर्वहारा पैदा नहीं होगा, तब तक सर्वहारा की तानाशाही कैसे कायम हो सकती है? सर्वहारा चाहिए तो कारखाने लगाने होंगे। कारखाने लगाने हैं, तो उद्योगपति चाहिए। मार्क्स ने यह थोड़े ही लिखा है कि कम्युनिस्ट देश के एक हिस्से में अपनी सत्ता जमा लें, तो उन्हें इस इलाके का उद्योगीकरण जन सहयोग से करना चाहिए? इसलिए मार्क्सवादी मुख्यमंत्री ने टाटा को बुलाया और अपना सारा प्यार उन पर उँड़ेल दिया।

प्यार की मुश्किल यह होती है कि हमारे पास उसकी मात्रा तो कम होती है, पर हम उसे बाँटना ज्यादा लोगों के बीच चाहते हैं। इसी में हमारे बुद्धदेव बाबू मारे गए। उद्योगपति की अगवानी में उन्होंने किसानों को भुला दिया। जैसे कभी-कभी बारातियों के स्वागत में घरातियों की उपेक्षा कर दी जाती है। हो सकता है, बुद्धदेव ने सोचा हो कि किसान तो हमारी जेब में पड़े रहते हैं, कहाँ जाएँगे। नैनो की चमक उनकी आँखों में छा जाएगी। वे खुशी-खुशी अपनी जमीन दे देंगे। ले जाओ जी, जितनी चाहिए ले जाओ। इस जमीन पर साग-सब्जी उगे, इससे अच्छा है मोटरगाड़ी उगे। जमीन हमें बाँधे हुए हैं। मोटरगाड़ी से हम पता नहीं कहाँ-कहाँ उड़ेंगे।

हमारे वामपंथी मित्र ठीक ही कहते हैं, पश्चिम बंगाल की जमीन किसी और मिट्टी से बनी है। यह जमीन दूसरे राज्यों से अलग न होती, तो एक ही राजनीतिक समूह का शासन इतने लम्बे समय तक टिक पाता? मैं भी मानता हूँ कि प. बंगाल में कुछ खूबियाँ हैं। एक बड़ी खूबी यह है कि यहाँ के लोग अन्याय सहन करना नहीं जानते। अन्याय देखते ही वे भड़क जाते हैं। उनके हाथ खुजलाने लगते हैं। दिल्ली जैसी बसें वहाँ नहीं चलतीं कि किसी यात्री के साथ अन्याय हो रहा हो और बाकी लोग धूर्त चुप्पी बनाए रखें। सड़क पर कोई किसी को पीट रहा हो और

भीड़ की भीड़ चुपचाप गुजरती रहे। रेस्त्राँ में किसी लड़की को छेड़ा जा रहा हो और बाकी लोग मजा लेते रहें। बंगाल में कोई न कोई उठ खड़ा होगा। मारपीट न कर सके, तो जबान तो चला कर रहेगा। हिकमते चीन और हुज्जते बंगाल एक जैसे मशहूर ठहरे।

सो सिंगुर में अन्याय के खिलाफ तमाम मर्दों के बरक्स एक औरत खड़ी हो गई। उसका नाम ममता है। ममता दीदी को खुद खाना बनाना नहीं आता। पर खाना ठीक न बना हो, तो वे बड़े जोर से चीखती हैं और कभी-कभी लगी हुई थाली भी पटक देती हैं। सिंगुर में उन्होंने कमसिन नैनो के साथ यही किया। लोग ममता के साथ थे। स्थानीय पंचायतें ममता के साथ थीं। न्याय भी ममता के साथ था। फिर एक मुख्यमंत्री, एक उद्योगपति, एक राष्ट्रीय दल - सब मिल कर क्या कर लेते? पांडव पाँच ही थे, पर वे सौ कौरवों पर भारी पड़े। ये लड़ाई थी दीए की और तूफान की। तूफान आ कर चला गया। दीया जल रहा है।

फिर मेरी आँखें गीली क्यों हैं? नैनो का शोक मुझे क्यों सता रहा है? मैं चाहता था कि नैनो भी रहे और न्याय भी हो। नैनो गुजरात गई है। वहाँ वह सुख से रहेगी। कारण, वहाँ के किसान एक तरह के उद्योगपति ही हैं। उनकी गोद में नैनो बिटिया खूब फूले-फलेगी। मेरा दुख यह है कि बंगाल की न्यायप्रिय जमीन पर क्यों नहीं रुक पाई। उसके लिए यहाँ जगह निकलनी चाहिए थी। असली उद्योगीकरण नहीं हो पा रहा है, तो नकली और दिखावटी ही सही। कुछ तो हो, जिससे समाज की जड़ता टूटे। वैसे, इन आँसुओं में सुख के भी कुछ कण हैं। सत्तारूढ़ वामपंथियों की समझ में शायद अब यह आ ही जाए कि आप दाएँ और बाएँ, दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। इसकी कोशिश करेंगे, तो आपका गिरना तय है। नंदीग्राम और सिंगुर में गिर पड़े हैं, तो कोई बात नहीं। कॉमरेड, फिर से उठिए और अगली बार मत गिरिएगा। नैनो बिटिया तो गई। किसी और को यह दिन न देखना पड़े।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

निठारी चलो

राजकिशोर

निठारी का संदेश आ गया है। यह संदेश देश भर के अमीरों और उनके आज्ञापालक नौकरों के लिए है। निठारी चलो। शहरीकृत नोएडा में बसा और उससे भी ज्यादा शहरीकृत दिल्ली के बिल्कुल करीब यह एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ घरेलू नौकर-नौकरानियाँ, दिहाड़ी मजदूर, कम आमदनी की छोटी-छोटी नौकरियाँ करने वाले, ड्राइवर, कुली आदि तरह-तरह के गरीब और बेबस लोग रहते हैं। उनके बीच एक बड़ी-सी कोठी है, जिसके भीतर क्या-क्या होता है, इसका बाहर से अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। लेकिन सिर्फ इसी वजह से इस कोठी का रहस्य दो साल तक समाज से छिपा रहा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस कोठी में एक पैसे वाला रईस रहता था, जो अपने पासपोर्ट का उपयोग साल में कई बार किया करता था - यह जानने के लिए कि विश्व के अन्य विकसित देशों में ऐयाशी के समकालीन प्रतिमान क्या हैं और अपने भूमण्डलीकृत ऐयाश दोस्तों को यह दिखाने के लिए भी कि वह भारत के एक ऐसे सुरक्षित कोने में रहता है, जहाँ अपने मौज-मजे के लिए बच्चे-बच्चियों के जिन्दा और मृत मांस के साथ कैसा भी सलूक किया जा सकता है और फिर उनके कंकालों को सड़ कर मिट्टी में मिल जाने के लिए घर के पिछवाड़े गाड़ दिया जा सकता है। नोएडा नामक इस तीव्र वृद्धि दर वाले इलाके में पुलिस तो है, पर गरीब-असहाय लोगों पर लाठी भाँजने के लिए और किसी अमीर के खिलाफ खौफनाक शिकायतें मिलने पर दो-ढाई लाख रुपए लेकर उसे अपनी जघन्य दैनंदिनी में लग जाने देने के लिए। उदारीकरण का ऐसा उदार परिदृश्य और कहाँ मिलेगा? चलो, निठारी चलो, जहाँ कई राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहे हैं। उत्तर प्रदेश एक बार फिर देश का मार्गदर्शन करने के लिए उठ खड़ा हुआ है।

इस तरह के सर्वेक्षण आते ही रहते हैं कि भारत में बालक-बालिकाओं की स्थिति बहुत ही खराब है। कोई उनके कुपोषण पर रोता है, कोई उनके स्कूल न जाने पर। किसी की चिन्ता यह है कि बच्चों के खेलने के खुले मैदान कम होते जा रहे हैं। बँधुआ मजदूरी के मोर्चे पर काम करने वाले लोग अलग से परेशान रहते हैं। निठारी ने इन सभी समस्याओं का एकमुश्त समाधान पेश कर दिया है। यह वही समाधान है जो एक समय में प्रसिद्ध आयरिश लेखक और व्यंग्यकार जोनाथन स्विफ्ट ने आयरलैंड के बच्चों की दुर्दशा और इंग्लैण्ड की गरीबी दूर करने के लिए सुझाया था। यह समाधान विश्व बैंक की नीतियों के बहुत अनुकूल है। विकासमान देशों के लिए तो इसे वरदान ही मानना चाहिए। समाधान यह है कि गरीब बच्चों की किस्मत पर राष्ट्रीय विलाप करने की बजाय अर्थव्यवस्था के विकास में उनका सकारात्मक उपयोग किया जाना चाहिए। इसके लिए कोई बड़ा इंफ्रास्ट्रक्चर भी नहीं चाहिए कि हमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का आह्वान करना पड़े, जिसमें चीन हमसे बाजी मार ले जा रहा है। धंधा बहुत ही सरल और हमारे राष्ट्रीय संसाधनों के दायरे में है : चौदह वर्ष तक के बच्चे-बच्चियों को बूचड़खानों में हलाल कर उनका मांस खुले बाजार में बेचा जाए।

इस कारोबार से जो आय होगी, उसका एक हिस्सा बच्चों की माताओं को दिया जाएगा, तो उनका अपना जीवन स्तर भी ऊपर उठेगा और वे प्रचुर संख्या में बच्चे पैदा कर सकेंगी। बच्चों के पालन-पोषण के लिए राज्य या व्यापारियों से मिलने वाले भत्ते का उपयोग कर माताएँ इन बच्चों को स्वस्थ, पुष्ट और तरो-ताजा भी रख सकेंगी, ताकि इनका मांस और लजीज तथा विटामिनों, लवणों और खनिजों से भरपूर हो सके। इस तरह एक ही तीर से कई शिकार किए जा सकेंगे। नोएडा, दिल्ली और देश के अन्य इलाकों की सड़कों पर नंग-धड़ंग और कुपोषित बच्चे नहीं दिखेंगे। उनके माता-पिताओं को घर बैठे रोजगार मिलेगा और देश की अर्थव्यवस्था का तीव्रतर विकास संभव हो सकेगा। हम भारत से पशु-पक्षियों के मांस का निर्यात तो करते ही हैं। इसमें गोमांस भी शामिल है। निठारी ने दिखा दिया है कि मांस के हमारे निर्यात में एक और लजीज आइटम जोड़ा जा सकता है और वह है बच्चे-बच्चियों का कोमल मांस।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा करने पर निर्यात से होने वाली हमारी आय कई गुना बढ़ जाएगी। इस मामले में पश्चिम के देश हमसे प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सकेंगे। उनके यहाँ एक बच्चे को जन्म देने और बारह-चौदह वर्ष तक उसका पालन-पोषण करने का औसत खर्च हमसे कई गुना ज्यादा है। फिर हमारे यहाँ गरीबों की संख्या भी कम नहीं है। वे बहुत मामूली लागत पर बाल मांस के व्यापार और निर्यात के लिए कच्चा माल तैयार करने के लिए सहमत हो जाएँगे। तमाम सरकारी प्रयत्नों के बावजूद हमारी आबादी बढ़ती जा रही है। निठारी का रास्ता अपनाने पर यह समस्या भी अपने आप सुलझ जाएगी।

भारत के लोग अपने को विश्व गुरु मानते हैं। निठारी के पुरुषार्थ को देखकर मुझे इसमें कोई संदेह नहीं रह गया है। निठारी का नायक जोनाथन स्विफ्ट के प्रिस्क्रिप्शन से भी आगे बढ़ गया है। उसने दिखा दिया है कि बाल मांस का व्यापार करना तो इस उद्योग का मात्र एक पहलू है। दूसरा पहलू इससे भी ज्यादा रोमांचक और कमाऊ हो सकता है। बच्चे-बच्चियों की जान लेने के पहले उनका भरपूर यौन उपभोग क्यों न कर लिया जाए! व्यावसायिक यौन शोषण की दुनिया में इन दिनों बच्चे-बच्चियों की अच्छी-खासी माँग है। गोवा में पर्यटकों का यह एक पसंदीदा शगल है। निठारी का रास्ता राष्ट्रीय स्तर पर अपना लिया जाए तो बाल वेश्यावृत्ति के क्षेत्र में हम विश्व कीर्तिमान बना सकते हैं।

इसका एक सकारात्मक परिणाम यह होगा कि वयस्क स्त्री-पुरुषों के यौन शोषण में कमी आ जाएगी। बाल भवन के इर्द-गिर्द भीड़ बढ़ेगी, तो जीबी रोड की आबादी अपने आप कम हो जाएगी। लेकिन इसके लिए जरूरी होगा कि बच्चे-बच्चियों के यौन उपभोग की कीमत कम रखी जाए। उदारीकरण के समर्थक अर्थशास्त्रियों की दलील है कि भारत में टैक्स की दरें बहुत ऊँची हैं। अतः केन्द्र सरकार, दिल्ली सरकार और दिल्ली नगर निगम को लालच में न पड़ कर बालक-बालिकाओं के उपभोग पर टैक्स की दर कम ही रखनी चाहिए। बेहतर हो कि कम से कम पाँच वर्षों तक इस उद्योग को कर-मुक्त घोषित कर दिया जाए।

नादान हैं वे जो मोनिंदर सिंह और उसके सहयोगियों को कड़ी से कड़ी सजा देने की माँग कर रहे हैं। उनका दिमाग परंपरावादी है। नए जमाने की माँग यह है कि मोनिंदर को योजना आयोग का अध्यक्ष और उसके नौकर सुरेन्द्र को राष्ट्रीय मांस उत्पादन परिषद का अध्यक्ष या पर्यटन, खेलकूद और संस्कृति मंत्रालय का सचिव बना दिया जाए।

निठारी चलो। वहाँ भारत का भविष्य हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

निठारी वाले अंकल

राजकिशोर

बच्चे का नाम सुदीप था। उम्र यही कोई चौदह साल। गोल-मटोल चेहरा, भोली-भाली आँखें। घंटी की आवाज आने पर दरवाजा उसी ने खोला था और इस नए अंकल को देखा था - भरा-पूरा शरीर, रोबदार चेहरा, बड़ी-बड़ी नुकीली मूँछें, आँखों पर सुनहरी कमानियों का महँगा चश्मा, चुस्त-दुरुस्त पोशाक और पैरों में चमचमाते स्टाइलिश जूते। इसके पहले कि नए अंकल झुक कर उससे हैंडशेक करते, सुदीप ड्राइंग रूम से भाग कर अंदर गया और अपने पापा से बोला - 'पापा-पापा, वह वाले अंकल आए हैं।' उसके मासूम चेहरे पर डर की परछाइयाँ तैर रही थीं। 'कौन वाले अंकल?' पूछे जाने पर सुदीप ने कहा - 'वही, निठारी वाले अंकल।'

सुदीप के पापा मनोहर लाल टेलीफोन विभाग में नौकरी करते थे। यारबाश थे, इसलिए शाम अक्सर दोस्तों से मिलने-जुलने में ही खर्च हो जाती थी। वे जितने लोगों को जानते थे, उससे अधिक लोग उन्हें जानते थे। 'निठारी वाले अंकल' सुन कर उनकी समझ में कुछ नहीं आया। निठारी नाम की जगह से उनका दूर-दूर तक कोई ताल्लुक नहीं था। जिज्ञासा भरी मुस्कान लिए मनोहर लाल ड्राइंग रूम में पहुँचे तो उनकी मुस्कान ठहाके में बदल गई। वहाँ टेलीफोन विभाग के चीफ इंजीनियार इस पसोपेश में खड़े थे कि अपने-आप सोफे पर बैठ जाऊँ या नहीं। मनोहर ने इंजीनियर साहब को प्रेम भरा नमस्ते कहा और आदर के साथ बैठाया। प्रारंभिक शिष्टाचार के बाद इंजीनियर साहब ने बहुत ही संक्षेप में अपने आने का प्रयोजन बताया और मनोहर लाल ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह काम अगले दिन ही हो जाएगा। इंजीनियर साहब ने धन्यवाद दिया और चलने को हुए कि मनोहर लाल ने कहा - आप मेरे घर पहली बार आए हैं। कम से कम एक प्याला चाय तो पीकर ही जाइए।

चीफ इंजीनियर बहुत ही भला आदमी था और दफ्तर के सभी लोग उसका सम्मान करते थे। चाय-पान के बाद किंचित संकोच के साथ इंजीनियर ने पूछा - अच्छा, यह तो बताइए कि आपने मुझे देखते ही ठहाका क्यों मारा? मैं जोकर जैसा तो नहीं दिख रहा हूँ? इस पर मनोहर लाल थोड़ा झेंप गए। उन्होंने कहा - नहीं, सर, उसका आपसे कोई ताल्लुक नहीं था। दरअसल, बेटे ने...। इंजीनियर साहब की उत्सुकता और बढ़ गई - बेटे ने क्या बताया अंदर जाकर?

मनोहर लाल तय नहीं कर पा रहे थे कि सुदीप की बात बताई जाए या नहीं। उन्होंने विनम्रता से पूछा - सर, अगर आप अदरवाइज न लें, तो...

चीफ इंजीनियर के लिए रहस्य और गहरा गया था। उसने कहा - बच्चे की बात है। अदरवाइज लेने का सवाल ही नहीं उठता। आप मुझे अच्छी तरह जानते हैं। बताने जैसी बात नहीं है, तो छोड़िए इसे। मैं तो यों ही पूछ रहा था।

अब मनोहर लाल के पास कोई चारा नहीं बचा था। उन्होंने मुसकराते हुए कहा - सर, आप निठारी कांड को तो जानते ही हैं। वहाँ दर्जनों बच्चों के कंकाल मिले हैं। पता नहीं कैसे बेटे को यह भ्रम हो गया कि आप ही मोनिंदर सिंह पंढेर हैं। उसने मुझसे कहा, पापा, निठारी वाले अंकल आए हैं।

यह सुनते ही इंजीनियर साहब ने जबरदस्त ठहाका लगाया। इसका मनोहर लाल पर संक्रामक असर पड़ा। उन्होंने भी उतना ही जबरदस्त ठहाका लगाया। दोनों समझदार आदमी थे। इसलिए आपस में कोई मलिनता नहीं आई। हँसी रुकने के बाद इंजीनियर ने अपने आप पर एक भरपूर नजर डाली और कहा - तब तो मुझे जूनियर लाल से मिलना ही होगा।

जूनियर मनोहर लाल उर्फ सुदीप दोनों तरफ के पर्दों के बीच अपना चेहरा छिपाए हुए चीफ इंजीनियर को घूर रहा था। पापा ने उसे अंदर बुलाया, तो वह आने को बिलकुल तैयार नहीं था। दूसरी-तीसरी बार कहने पर वह पर्दों को आपस में ठीक से जोड़ कर पीछे भाग गया। अब मेजबान की मजबूरी हो गई कि वह जाकर बच्चे को ले आए और मेहमान के सामने पेश करे। मनोहर ने यही किया। सुदीप उनकी पकड़ में, उनके साथ ड्राइंग रूम में आ तो गया, पर चीफ इंजीनियर पर एक तीन-चौथाई नजर डाल कर अपनी आँखें मूँद लीं।

इंजीनियर ने बड़े प्यार से कहा - बेटे, मुझसे मिलोगे ही नहीं, तो समझोगे कैसे कि हम कौन वाले अंकल हैं! सुदीप चुप तो चुप। पापा ने उसे सहज बनाना चाहा और मेहमान ने दो-तीन बार विनती की, तो वह बोला - मैं आपको जानता हूँ। आप निठारी वाले अंकल हैं।

अब माहौल में तनाव के तत्त्व घुलने लगे थे। इंजीनियर साहब ने पूछा - बेटे, तुम्हारे घर पर तो पहली बार आया हूँ। फिर तुमने मुझे कैसे पहचान लिया?

सुदीप - मैं आपको पहले से जानता हूँ। टीवी पर कई बार आपको देखा है। पुलिस आपको पकड़ कर जेल ले जा रही थी।

मनोहर लाल - चुप। यह क्या बदतमीजी है।

इंजीनियर - न, न, इसे डाँटिए मत। (सुदीप से) बेटे, इस हिसाब से तो मुझे जेल में होना चाहिए। फिर मैं यहाँ कैसे बैठा हुआ हूँ?

सुदीप - आप जेल से भाग कर आए हैं।

इंजीनियर - अरे, मेरा बेटा तो बहुत होशियार है। वह सब कुछ जानता है। अच्छा, लड़ाई छोड़ो। यह देखो, तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ। चीफ इंजीनियर ने अपने कोट की जेब से एक बड़ी-सी चॉकलेट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाई।

सुदीप - मैं यह चॉकलेट नहीं खाऊँगा। इसे खाते ही मैं बेहोश हो जाऊँगा और आप मुझे पकड़ कर अपनी कोठी में ले जाएँगे। फिर मेरे साथ बुरा काम करने के बाद मुझे मार डालेंगे और मेरी हड्डियाँ नाले में बहा देंगे। इस पर उसके पापा ने उसे कस कर एक तमाचा लगाया। ड्राइंग रूम का वातावरण अचानक बहुत भारी हो आया था।

बाहर तक छोड़ने गए मनोहर लाल ने अपने वरिष्ठ सहकर्मी का दाहिना हाथ अपनी हथेलियों में थाम कर कहा - 'आइ'म एक्स्ट्रीमली सॉरी। माफ कीजिएगा। मुझे इसकी कतई उम्मीद नहीं थी। बट आई होप, यू कैन अंडरस्टैंड। इंजीनियर साहब की आँखें पसीज रही थीं। उन्होंने कहा - सुदीप को कुछ कहिएगा नहीं। बच्चे का कोई कसूर नहीं है। कसूरवार तो हम बड़े लोग हैं, जिन्होंने पता नहीं कितने बच्चों को डरा दिया है। एक अंकल ने सभी अंकलों को संदिग्ध बना दिया है।'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

पढ़े फारसी बेचे तेल

राजकिशोर

देश का प्रधानमंत्री अपने आदमकद से बड़े कमरे में एक किनारे से दूसरे किनारे तक तेजी से टहल रहा था। बाहर भयानक गर्मी थी, लेकिन भीतर सुकूनदेह ठंडक, फिर भी उसके चेहरे पर पसीने की बूँदें छलछला रही थीं। वह कभी कोई किताब पलटता, कभी कोई। किसी किताब के पन्ने पढ़कर हँसता, किसी के पन्ने पढ़कर रोता। लेकिन उसका सम-बिन्दु (इक्विलिबिरियम प्वाइंट) नहीं आ रहा था। उसकी परेशानी का सबब था तेल की कीमतें। उसके सहयोगी दल इन कीमतों को बढ़ाने का विरोध कर रहे थे। उनसे कई बार तर्क-वितर्क हो चुका था। लेकिन वे मानने को तैयार नहीं थे और कह रहे थे कि तेल की कीमत मत बढ़ाइए, नहीं तो हमें सार्वजनिक रूप से सरकार का विरोध करना पड़ेगा। प्रधानमंत्री राजनीतिक विरोध से डरता नहीं था, क्योंकि उसे राजनीति समझ में नहीं आती थी। वह तो अर्थशास्त्र का विद्वान माना जाता था, और, अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से उसे अपने दृष्टिकोण में कहीं कोई खोट नजर नहीं आ रही थी।

हालाँकि प्रधानमंत्री के सामने कोई श्रोता मौजूद नहीं था, पर वह अपनी स्वाभाविक मृदुभाषिता को ताक पर रख कर जोर से चीखा, 'मैं कई बार बोल चुका हूँ कि फ्री लंच नाम की कोई चीज नहीं होती। वह जमाना चला गया जब खलील मियाँ मुफ्त में फाख्ते उड़ाया करते थे। आज उन्हें फाख्ते उड़ाने हैं, तो आकाश-कर देना होगा। बेशक आकाश हम सभी को मुफ्त में मिला है, पर उसकी सुरक्षा मुफ्त में नहीं हो सकती। हम अपनी सेना पर इतना खर्च कर रहे हैं, हमारी सेना के जवान लगातार शहादत देते रहते हैं, तब जाकर हमारा आकाश सुरक्षित रहता है। फिर इस आकाश का इस्तेमाल कोई मुफ्त में कैसे कर सकता है - चाहे यह इस्तेमाल फाख्ते उड़ाने के लिए हो या निजी हवाई सेना चलाने के लिए। हर चीज की कीमत होती है। क्या मैं प्रधानमंत्री बने रहने की कीमत नहीं चुका रहा हूँ? क्या मैंने अपनी अंतरात्मा को 'चलो फूटो, बाद में दिखाई देना' कह कर झारखंड में...एक अल्पमत वाले व्यक्ति को मुख्यमंत्री की शपथ नहीं दिलवाई थी। क्या मैंने अपने नैतिक बोध को चकमा देकर राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के अध्यक्ष पद को लाभ के पदों की सूची से बाहर रखने का कानून नहीं बनवा दिया है? फिर भारत की जनता तेल की वाजिब कीमत क्यों नहीं देना चाहती? ऐसा लगता है कि वह मुझसे भी ज्यादा भोली है।'

इन थोड़े-से वाक्यों में ही वह थक गया। सोचा कि घंटी बजा कर चपरासी से पानी माँग कर पानी पी लूँ, फिर उसे लगा कि उसका यह द्वंद्व सरकारी नहीं है (क्योंकि सरकार तो कीमत बढ़ाने का फैसला कर ही चुकी थी, इस पर उसे सिर्फ अपना अँगूठा लगाना था), बल्कि निजी है, अर्थशास्त्र के उसके गहन अध्ययन की वजह से है, इसलिए उसने अपने घर से लाए थर्मस से ठंडा पानी निकाला और पानी के दो गिलास खाली कर दिए। वह तीसरा गिलास भरने के लिए थर्मस को झुकाने ही वाला था कि उसे विज्ञान भवन में अपना कल का भाषण याद आया, जिसमें

उसने भीगी हुई आवाज में कहा था कि जब तक हमारे देश की करोड़ों जनता पीने के साफ पानी से वंचित है, पानी का दुरुपयोग करना देशद्रोह से कम नहीं है। सो, उसने तीन के बजाय दो ही गिलास से काम चलाने का निर्णय किया।

तरोताजा यानी तर और ताजा होने के बाद प्रधानमंत्री कोई नई और अर्थगर्भित बात कहने ही वाला था कि उसे लगा, दरवाजे के बाहर से कोई बोल रहा है। उसने आँखें मूँद लीं और गौर से सुनने लगा...'लेकिन सर, क्या आप तेल के व्यापारी हैं? व्यापार के धंधे में ही यह होता है कि तीन में खरीदा जाए और तेरह में बेचा जाए। आप तो जनता के द्वारा चुनी हुई उसकी पसंदीदा सरकार हैं। आप सस्ते में तेल खरीद कर उसे महँगे में क्यों बेच रहे हैं?'

प्रधानमंत्री को याद आया कि केन्द्र सरकार पेट्रोल पर पचपन प्रतिशत कर लगाती है। यानी पेट्रोल पंप पर एक लीटर पेट्रोल के लिए जो कीमत अदा की जाती है, उसका आधे से कुछ ज्यादा केन्द्र सरकार की तिजोरी में जाता है। पन्द्रह-सोलह प्रतिशत कर राज्य सरकारें भी लगाती हैं। सो, वे भी तेल की बिक्री से कमाई करती हैं। यानी सरकारें उपभोक्ता के कन्धों से अपना बोझ थोड़ा कम करे लें, तो तेल की कीमत बढ़ाने के बजाय घटाई जा सकती है।

प्रधानमंत्री पढ़ा-लिखा था, सो उसके पास तर्क की कमी नहीं थी। उसने कहा, 'अजनबी दोस्त, हम तेल पर कर न लगाएँ, तो जनता के कल्याण के लिए चलाई जाने वाली योजनाओं के लिए हमें धन कहाँ से हासिल होगा? तेल की सरकारी कंपनियाँ सरकार को अरबों रुपयों का लाभांश नहीं देंगी, तो सरकार कैसे चलेगी?'

इस तर्क का जवाब तुरन्त आया, 'योर एक्सीलेंसी, फिर आप जनता को यह कह कर बरगला क्यों रहे हैं कि पुरानी यानी अनार्थिक दर पर तेल बेचने से हमें घाटा हो रहा है? साफ-साफ यह क्यों नहीं कहते कि हमारा हिमालयी आकार का मुनाफा कम हो रहा है? हम जितना मुनाफा वसूल कर रहे हैं, उससे कम मुनाफे पर हमारी क्या, कोई भी भारतीय सरकार नहीं चल सकती।'

प्रधानमंत्री ने मानो मजाक में पूछा, 'तब हमें क्या करना चाहिए?'

दरवाजे के बाहर से जवाब आया, 'अपनी सरकार का खर्च कम कीजिए। तेल पर टैक्स कम कीजिए। अपनी तेल कंपनियों से कहिए कि वे उत्पादकता बढ़ाएँ और उचित कीमत पर तेल बेच कर उचित मुनाफा कमाएँ। आपके प्रिय अर्थशास्त्री एडम स्मिथ क्या मुनाफाखोरी की तरफदारी करते थे? क्या आप भी मुनाफाखोरी के पक्ष में हैं?'

प्रधानमंत्री का हाथ फिर थर्मस की ओर बढ़ा। उन्होंने झट चपरासी को बुला कर उससे कहा, 'जरा देखना, बाहर कोई वामपंथी तो नहीं खड़ा है?'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

प्रधानमंत्रियों की परीक्षा

राजकिशोर

लछमी अब पंद्रह साल की है। उसे मैं तब से जानता हूँ, जब वह तीन-चार वर्ष की थी और कमर में एक छोटी-सी कपड़ी पहन कर सड़क पर घूमा करती थी। रंग काला, शरीर दुबला-पतला और बाल उलझे हुए। उसे देख तक भारत माता की उन करोड़ों संतानों की याद आ जाती थी, जिनके जन्म की वैधता को अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है। जब तक देश यह तय नहीं करता कि ये राष्ट्रीय समृद्धि की राह में बड़ी बाधा बन गए हैं, इसलिए राष्ट्रीय हित में इनका उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए, तब तक ये जीते रहने के लिए अभिशप्त हैं।

लछमी के घर मैं कभी-कभी जाया करता हूँ। घर क्या है, एक छोटा-सा कमरा है, जिसमें उसके पिता (रिक्शा चालक), माँ (कामवाली) और दो भाई-बहन रहते हैं। भाई पास ही के एक अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में जाता है, जहाँ यह धोखा दिया जाता है कि यहाँ पढ़ाई होती है। छोटी बहन को सरकारी स्कूल में दाखिल करा दिया गया है, जहाँ रोज जाने की पाबंदी नहीं है। लछमी भी कुछ दिन तक इस स्कूल में पढ़ चुकी है। जब वह बड़ी हुई, तो माँ ने उसे कई घरों में लगा दिया। इसके कुछ दिनों बाद घर में एक सेकंड-हैंड टीवी आ गया, जो पूरे परिवार के लिए मनोरंजन का एकमात्र साधन है। इसी से लछमी को पता चला कि देश भर में चुनाव चल रहा है और कई-कई लोग प्रधानमंत्री की कुरसी पर नजर गड़ाए हुए हैं।

उस दिन लछमी के घर पहुँचा, तो एक अजीब दृश्य दिखाई पड़ा। घर में वह अकेली थी। उसके सामने मिट्टी की पाँच मूर्तियाँ रखी हुई थीं। हर मूर्ति के नीचे नाम लिखा हुआ था - मनमोहन सिंह, लालकृष्ण आडवाणी, शरद पवार, मायावती और लालू प्रसाद। मैं लछमी के पीछे कोई आवाज किए बिना खड़ा हो गया।

लछमी ने मनमोहन सिंह की मूर्ति को कान से लगाया, जैसे वह उनकी बात सुन रही हो। फिर वह भुनभुनाई - 'कहता है, मेरे हाथ में जादू की छड़ी नहीं है कि रात भर में सब कुछ ठीक कर दूँ। इंतजार करो, तुम्हारा भी नंबर आएगा।' 'बहुत इंतजार कर लिया,' कहकर उसने मूर्ति को जमीन पर दे मारा।

अब लछमी ने आडवाणी की मूर्ति उठाई। उससे कहने लगी, 'सर जी, आप ठीक कहते हैं, यह सरकार कमजोर है। आपकी सरकार बहुत मजबूत होगी। एक बात बताइए। अगर आप प्रधानमंत्री बन गए, तो उस गुंडे को जेल में भिजवा देंगे जो हमारी गली में रहता है? वह बहुत बदमाश है। मुझे भी कई बार छेड़ चुका है। किसी के रिक्शे पर चढ़ता है तो किराया नहीं देता।' इसके बाद वह आडवाणी की मूर्ति को कान के पास ले गई और कुछ देर तक उसकी बात सुनती रही। फिर उसे धड़ाम से जमीन पर दे मारा और बोली, 'कहता है, पहले हम आतंकवाद से लड़ेंगे। अरे, हमारे लिए तो यह गुंडा ही सबसे बड़ा आतंकवादी है।'

अगली बारी शरद पवार की थी। पवार से उसने यह निवेदन किया, 'सर, आप तो खेती-बाड़ी के मंत्री हैं। टीवी पर मैंने बहुत बार सुना है कि किसान जहर खाकर मर रहे हैं। इधर आटा-चावल रोज महँगा होता जा रहा है। आप प्रधानमंत्री बनेंगे, तो क्या सस्ती का जमाना लौट आएगा? राशन की दुकान पर सातों दिन सामान मिला करेगा?' शरद पवार की बात सुन कर लछमी हो-हो कर हँसने लगी। बोली, 'अजीब आदमी है। बोल रहा है, ये सारे मुद्दे बेकार हैं। असली मुद्दा यह है कि इस बार प्रधानमंत्री पद किसी मराठी को मिलना चाहिए।' फिर बोली, 'मुझे तो यह भी पता नहीं कि महाराष्ट्र है किधर। यह प्रधानमंत्री हो गया तो मेरी फिक्र क्यों करेगा?' पवार भी वीर गति को प्राप्त हुए।

मायावती की मूर्ति जरा लोचदार थी। लछमी ने मायावती से क्या कहा, यह मैं सुन नहीं सका, क्योंकि वह बहुत धीरे-धीरे बोल रही थी। पर मायावती की मूर्ति को उसने कुछ ज्यादा ही ताकत से जमीन पर पटका। बोली, 'रानी जी के पास हर बात का एक ही जवाब है - पहले मुझे प्रधानमंत्री बनने दो। सब ठीक हो जाएगा। खाक ठीक हो जाएगा। नोएडा यूपी में ही है। वहाँ क्या ठीक हो गया? रोज मर्डर होता है। मेरी मौसी वहीं काम करती है। कहती है, घर से निकलते वक्त बहुत डर लगता है। रास्ते में पता नहीं क्या हो जाए?'

तब तक उसे शक हो गया कि पीछे कोई है। उसने पलट कर देखा। वह लजा गई। फटाफट सारी मिट्टी साफ की और मुझे चौकी पर बैठाया। मैं तीन चॉकलेट लाया था। उसके हाथ में थमाते हुए बोला, 'कर लो, कर लो, लालू प्रसाद जी से भी बात कर लो।'

लछमी ने कहा, 'यह क्या चारों से अलग है? कहीं किसी घोटाले में इसे जेल हो गई, तो राबड़ी देवी को प्रधानमंत्री बना देगा।' और वह मेरे लिए चाय बनाने लगी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

प्रधानमंत्री और किसान

राजकिशोर

कई दिनों के बाद आज फिर प्रधानमंत्री के सचिव के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह बार-बार प्रधानमंत्री के कमरे के दरवाजे तक जाता और फिर लौट आता था। अंत में उसने हिम्मत जुटाई और कमरे के भीतर चला गया।

'क्या है?' - प्रधानमंत्री ने फाइल से सिर उठा कर पूछा। उनके कमरे में फाइलें ही फाइलें थीं। वे सुबह से करीब बीस फाइलें निपटा चुके थे, पर कई दर्जन फाइलें अभी भी उनकी उँगलियों से खुलने का इंतजार कर रही थीं।

'सर, एक खबर है।' - सचिव ने गंभीर स्वर में कहा। यह तय करना मुश्किल था कि उसका चेहरा ज्यादा गंभीर था या प्रधानमंत्री का। 'खबरों से मैं परेशान हो गया हूँ। रोज कोई न कोई खबर पैदा हो जाती है। अगर मैंने खबरों पर ध्यान देना शुरू कर दिया, तो देश चलाने के लिए समय कब निकाल पाऊँगा?' - प्रधानमंत्री के गंभीर चेहरे पर दुअन्नी के आकार की मुस्कान आई।

सचिव के लिए राजनीतिक दृष्टि से सही यह था कि वह भी अपने आका की तर्ज पर अपने चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान पैदा करता। पर इससे उस खबर की गंभीरता कम हो जाती जो उसके छोटे-से सीने में उछल-कूद कर रही थी। उसने भूमिका बाँधते हुए कहा - 'सर, खबर गंभीर है।'

प्रधानमंत्री ने दुअन्नी के आकार की अपनी मुस्कान वापस ले ली। वे फिर पूर्ववत गंभीर हो गए। धीमे से पूछा - 'क्या नटवर सिंह ने फिर कोई...'

सचिव ने तत्परता के साथ कहा - 'नो सर, मामला राजनीतिक नहीं है।'

प्रधानमंत्री - 'राजनीतिक नहीं है, तो क्या सोशियो-इकॉनॉमिक (सामाजिकार्थिक) है? यह तो मेरी रुचि का मामला है।'

सचिव - 'सर, मामला शुद्ध रूप से इकॉनॉमिक है। वैसे, बहुत-से विद्वान इसे सोशियो-इकॉनॉमिक भी कहते हैं।'

प्रधानमंत्री - 'विद्वानों को भूल जाओ। मुझे भी विद्वान माना जाता है। सो मैं विद्वानों की हकीकत जानता हूँ। अब बताओ, खबर क्या है?'

सचिव ने हिचकिचाते हुए कहा - 'सर, विदर्भ में एक किसान ने आत्महत्या कर ली!'

प्रधानमंत्री ने अविश्वास से सिर हिलाया - 'विदर्भ में? लेकिन मैं तो वहाँ हो आया हूँ। वहाँ के किसानों के लिए एक उदार पैकेज भी दे आया हूँ।'

सचिव - 'लेकिन सर, खबर सही है। मैंने तसदीक करा ली है। किसान ने आत्महत्या ही की है। वह किसी और कारण से नहीं मरा है।'

प्रधानमंत्री का आश्चर्य समाप्त नहीं हुआ था। उन्होंने दाढ़ी खुजलाते हुए सवाल किया - 'आंध्रा या कर्नाटक के किसान ने आत्महत्या की होती, तो बात समझ में भी आती। वहाँ मैं नहीं जा पाया हूँ। लेकिन विदर्भ में तो मैंने घोषणा कर दी थी कि किसानों का सारा कर्ज माफ। बल्कि जिन्होंने बाजार से कर्ज ले रखा है, उन्हें यह कर्ज वापस करने के लिए सरकारी ऋण मिलेगा।'

सचिव - 'आपके इस पैकेज की चारों ओर वाह-वाह हो रही है। लेकिन

सर...दरअसल...वह किसान नया कर्ज लेने के लिए अपने जिले के बैंक में गया था। वहाँ उसे बताया गया कि इस पैकेज के बारे में हमने भी अखबारों में पढ़ा है, पर दिल्ली से अभी ऑर्डर नहीं आया है। अगले महीने आओ।'

प्रधानमंत्री थोड़ी मुश्किल में पड़े। होंठ काँपे। भौंहें तनीं। बोले - 'ये किसान इतनी उतावली में क्यों रहते हैं? इतनी जल्दी क्या है? आत्महत्या तो एक महीने बाद भी की जा सकती थी। क्या उस किसान ने आत्महत्या करने का कोई मुहूर्त निकाल रखा था? अजीब दकियानूस देश है यह!'

सचिव ने खँखारते हुए और उसके लिए माफी माँगते हुए बताया - 'सर, आपके द्वारा पैकेज की घोषणा करने के बाद गाँव का महाजन जल्दी मचाने लगा था। उधर बैंक ने कर्ज देने से मना कर दिया। बेचारा किसान न इधर का रहा, न उधर का।'

प्रधानमंत्री - 'क्यों, वह लोकल पुलिस को रिपोर्ट कर सकता था?'

सचिव - 'सर, वह पुलिस के पास गया था। डीएम का कहना है कि पुलिस ने उसे भगा दिया। कहा कि आत्महत्या के इतने मामले हमारे पास हैं कि हम कोई नया केस नहीं ले सकते। फिर तुमने तो अभी तक आत्महत्या भी नहीं की है।'

प्रधानमंत्री - 'पुलिस वाले भी क्या करें! उन पर पहले से ही काफी प्रेशर है। फिर ये आत्महत्याएँ...अच्छा, तुमने यह पता लगाया कि वह किसान किसी विपक्षी दल का तो नहीं था? आजकल विपक्ष मेरे पीछे पड़ा हुआ है। इसलिए शक होता है।'

सचिव का सिर 'नहीं' में हिला - 'नो सर, वह एक सीधा-सरल किसान था। आप तो जानते ही हैं, देश में किसानों की कोई पार्टी नहीं है!'

प्रधानमंत्री थोड़ा और गंभीर हो गए। बोले - 'विपक्षी दल का भी नहीं था। सीधा-सरल किसान था। विदर्भ पैकेज के बारे में भी उसने सुन रखा था। फिर उसने आत्महत्या क्यों की? कोई मानसिक बीमारी वगैरह? आजकल डिप्रेशन

से काफी लोग आत्महत्या कर रहे हैं। हाँ, अपनी डायरी में नोट कर लो - मेंटल हेल्थ (मानसिक स्वास्थ्य) पर एक राष्ट्रीय सेमिनार कराना है।'

सचिव - 'यस सर, डब्ल्यूएचओ (विश्व स्वास्थ्य संगठन) वाले आए थे, वे भी चाहते हैं कि मेंटल हेल्थ पर अखिल भारतीय स्तर का सेमिनार हो। मैंने उन्हें आपका अप्वाइंटमेंट नहीं दिया था। कहा था, पीएम अभी किसानों की समस्याओं से जूझ रहे हैं।'

प्रधानमंत्री - 'सो तो ठीक है। लेकिन मैं किसानों की समस्याओं से कब तक जूझता रहूँगा? इधर प्राइसेज बढ़ रही हैं। सेंसेक्स गिरने लगा है। ये किसान बहुत ही इनसेंटिव (संवेदनहीन) हो गए हैं। न इन्हें देश की फिक्र है, न देश की इमेज की। साल में छह महीने खाली बैठे रहते हैं। वो कहावत है न, खाली दिमाग शैतान का घर। बस झोंक चढ़ी और आत्महत्या कर ली!'

सचिव-'यू आर राइट, सर।'

प्रधानमंत्री - 'देखो, ऐसा करो। भविष्य में इस तरह के छिटपुट केस मेरे सामने मत लाया करो। मेरा ध्यान बँटता है। किसानों की आत्महत्या की एक फाइल बना लो। उसमें एक-एक मामला दर्ज करते चलो। महीने में जिस दिन मेरे पास कोई फाइल न हो, उस दिन यह फाइल मुझे दिखा दिया करना।'

'राइट, सर।' सचिव अपना-सा मुँह लेकर अपनी मेज पर वापस आ गया। वह न रो पा रहा था, न हँस पा रहा था।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

प्रेम के पाँच नियम

राजकिशोर

कहते हैं, प्रेम की दुनिया में नियम का क्या काम! यह वह मुकाम है, जहाँ आकर सारे नियम फेल कर जाते हैं। हाल तक मैं भी यही मानता था। लेकिन तब तक एक आदतन प्रेमी से मुलाकात नहीं हुई थी। वह उस नस्ल का आदमी है, जिसके बारे में किसी शायर ने कहा है, मिजाज बचपन से आशिकाना है। फ्रांस के मशहूर दार्शनिक रूसो ने भी बचपन से ही प्रेम करना शुरू कर दिया था। वे जब बच्चे थे, अपनी नर्स को दिल दे बैठे थे। हमारे इस आशिक ने अपने जीवन के इस पहलू पर प्रकाश नहीं डाला। लेकिन उसने जो कुछ बताया, उसके आधार पर प्रेम की एक छोटी-सी नियमावली बनाई जा सकती है।

नियम संख्या एक : प्रेम तुम्हारे लिए है, तुम प्रेम के लिए नहीं हो। यह एक बुनियादी नियम है। जो प्रेम करता है, वह अक्सर प्रेम में खो जाता है। उसे किसी और बात की सुध-बुध नहीं रह जाती। इससे ज्यादा आत्म-संहारक घटना नहीं हो सकती। सवाल यह है कि प्रेम तुम अपने को समृद्ध करने के लिए कर रहे हो या अपने को लुटा देने के लिए? लुटाने के बाद तो फकीरी ही हासिल हो सकती है। यह आत्महत्या है, प्रेम नहीं। सच्चा प्रेमी कभी भी अपने को, अपने हितों को नहीं भूलता। वह किसी पहुँचे हुए सिद्ध की तरह हमेशा जागरूक रहता है। यों भी कह सकते हैं कि जैसे द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन की नजर मछली की आँख की पुतली पर टिकी हुई थी, वैसे ही प्रेमी भी उस सब पर नजर गड़ाए रहता है जो उसे प्रेम से मिल सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रेम साध्य नहीं, साधन है। जो इस भेद को भूल जाता है, वही प्रेम में विफलता हाथ लगने पर टेसुए बहाता है। सच्चा प्रेमी नए शिकार की तलाश में निकल जाता है।

नियम संख्या दो : हर प्रेम पहला प्रेम है। बहुत-से लोग अपने पहले प्रेम की कहानियाँ सुनाते हैं। बताते हैं, यह वह प्रेम है जिसकी स्मृति आखिरी साँस तक बनी रहती है। यह प्रेम में भावुकता का दखल है, जिससे हर समझदार प्रेमी को बचना चाहिए। उसे इस तरह अभिनय करना चाहिए जैसे हर प्रेम उसके लिए पहला प्रेम हो। इससे उसके प्रस्तुतीकरण में गहराई आएगी। अगर सचमुच में उसका कोई पहला प्रेम था, तो उसे अपना बचपना मान कर भूल जाना चाहिए। नहीं तो भविष्य में प्रेम करने में मुश्किल पेश आ सकती है। अगर प्रेमिका को संदेह हो जाए कि तुमने पहले भी किसी से प्रेम किया था, तो उसे यह आश्वस्त करना तुम्हारा फर्ज है कि वह आसक्ति थी, प्रेम नहीं। इसके बाद तुम्हें अपनी आसक्ति को प्रेम साबित करने की मशक्कत करनी होगी। यह मशक्कत तभी कामयाब हो सकती है, जब तुम अपने को इस तरह पेश कर सको जैसे तुम्हारी जिंदगी में प्रेम की किरण यह पहली बार उतरी है और तुम महसूस कर रहे हो कि तुम्हारे जैसा भाग्यशाली कोई नहीं है।

नियम संख्या तीन : हर प्रेम आखिरी है। प्रेमी को प्रेमी जैसा दिखने के लिए यह जरूरी है कि वह हर प्रेम को आखिरी मान कर चले, जिसके बाद करने को कुछ बचा नहीं रहेगा। इससे उसके भीतर संघर्ष करने की शक्ति आएगी। वह अपने वर्तमान प्रेम को सफल बनाने के लिए अपने सभी संसाधन झोंक देगा। अगर वह वर्तमान प्रेम को आखिरी नहीं समझेगा, तो उसके प्रेम-व्यापार में शिथिलता आ सकती है। प्रेमिका उसकी गंभीरता में शक कर सकती है। वह सोच सकती है कि उसके प्रेमी ने बहुत कुछ अपने पास बचा रखा है। ऐसे मतलबी आदमी को कोई क्यों अपना सर्वस्व दे? जो युद्ध अधूरे मन से लड़ा जाता है, उसमें सफलता नहीं मिलती। जो प्रेम अधूरे मन से किया जाता है, उसमें फूल भले लग जाएँ, पर फल कभी नहीं लगते।

नियम संख्या चार : एक से दो बेहतर। वे बेवकूफ हैं जो एक समय में एक ही चिड़िया का शिकार करते हैं। इन्हें चिड़ीमार ही मानना चाहिए। सच्चा प्रेमी वह है जो अपने सारे अण्डे एक ही टोकरी में नहीं रखता। कभी टोकरी गिर गई, तो सारे अण्डे चूर-चूर हो जाएँगे। आजकल सभी निवेशकों को सलाह दी जाती है कि वे अपना सारा पैसा किसी एक कंपनी में या निवेश के किसी एक प्रकार में न लगाएँ। उन्हें अपने निवेश को डाइवर्सीफाइ करना चाहिए, ताकि एक जगह पैसा डूबे तो दूसरी जगह बढ़ जाए। इसलिए भावनात्मक सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि एक समय में कम से कम दो स्थानों पर हाथ आजमाया जाए। इससे अधिक की कोशिश करना लालच है, जिसके लिए प्रेम के शास्त्र में कोई स्थान नहीं है। वैसे, एक ही समय में दो-दो से प्रेम करना मामूली साधना नहीं है। बड़े-बड़ों को पसीना आ जाता है। अतः शुरू-शुरू में एक समय में एक से ही काम चलाना चाहिए।

नियम संख्या पाँच : विफलता से मत डरो। जीवन के सभी क्षेत्रों में लोगों को विफलता से डर लगता है। इसलिए बहुत-से जरूरी काम शुरू ही नहीं हो पाते। प्रेम भी एक ऐसा ही क्षेत्र है। यहाँ विफलता आदमी को अपनी ही नजर में हास्यास्पद बना देती है - एक आदमी, जिसने जिंदगी में पहली बार भीख माँगी और वह भी न मिली। ऐसे कातर-हृदय व्यक्तियों को प्रेम के मैदान में नहीं उतरना चाहिए। उन्हें अपने कौमार्य को, अपने स्वाभिमान की तरह, बचा कर रखना चाहिए। सच्चे प्रेमी विफलता से कभी नहीं डरते। वे जानते हैं कि हर बंसी में मछली नहीं फँसती, न ही हर सीपी में मोती होता है। न ही मृग सिंह के मुख में स्वयं प्रवेश करते हैं। अतः तुरन्त ही फल मिल जाए, इसकी चिंता किए बगैर अपना प्रयत्न जारी रखना चाहिए। प्रयत्न सफल न हो, तो कोई बात नहीं। उसके दुख में डूब कर हताशा का शिकार हो जाना पौरुषहीनता है। इतनी बड़ी दुनिया है। इतना इफरात समय है। कहीं न कहीं तो सफलता हाथ लगेगी, यह सोच कर सच्चा प्रेमी अपने ध्येय से च्युत नहीं होता।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

प्रेम में और उसके बाद

राजकिशोर

प्रेम में :

प्रिय समर, वह दिन कितना उजला, कितना पवित्र और कितना सार्थक था जब तुमसे मेरी पहली मुलाकात हुई थी। मुझे इसका एहसास तक नहीं था कि मेरे आँगन में दूधिया चाँद उतरने वाला है। मैं तो किताब बदलने पुस्तकालय गई हुई थी। पुस्तकालय के कैंपस में चाय की दुकान पर अपने दोस्तों से घिरे तुम बड़ी सुरीली आवाज में गा रहे थे - बीती विभावरी जाग री। मेरे अस्तित्व का कण-कण भावों के इस रिमझिम में भीग उठा। मुझे क्या पता था कि यह आह्वान मेरे ही लिए है। हाँ, तुमसे मिलने के पहले मैं सोई हुई थी, मूर्च्छित थी, मुझे कुछ पता नहीं था कि जीवन क्या है, प्यार क्या है, खुशी क्या है, दर्द क्या है, कोई रात-रात भर जागते हुए कैसे सपने देखता है, उन सपनों को साकार करने के लिए कैसे अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है। समर, मैं अपने को दुनिया की सबसे सौभाग्यशाली लड़की मानती हूँ कि मुझे तुम्हारे जैसा जीवन साथी मिला।

तुम सुंदर हो, आकर्षक हो, भीड़ में सबसे अलग दिखाई देते हो। ऐसे व्यक्तित्व पर सभी लड़कियाँ जान देने को तैयार रहती हैं। पर मैं उनमें नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारे मानवीय गुणों पर, तुम्हारे नैतिक सरोकारों पर जान देती हूँ। ओह! तुम हर तरह से असामान्य हो। दूसरों के लिए कष्ट उठाने में हमेशा आगे रहते हो। अपना-पराया, सभी की मदद करते हो। किसी के साथ तुम अन्याय नहीं कर सकते। गीत-संगीत में तुम्हारा मन बहुत रमता है, पर तुम्हारा अध्ययन कितना विशाल है! उस दिन जब तुम कबीर की प्रासंगिकता पर बोल रहे थे, मैं तुम्हारी विचारशीलता पर मुग्ध हो उठी थी। उसी क्षण मैंने तय कर लिया था कि एमफिल पूरा करने के बाद कबीर पर ही पीएच.डी. करूँगी। सुनो, मैं अभी से कहे देती हूँ, पीएच.डी. का विषय तुम्हें ही सेलेक्ट करना होगा और रिसर्च में भी पूरी सहायता करनी होगी। मेरे सनम, तुम्हारी मदद के बगैर मैं अब एक कदम भी नहीं चल सकती।

प्रिय समर, अब तुम्हीं मेरे गुरु हो। जहाँ बैठने को कहोगे, वहाँ बैठूँगी। जिधर चलने को कहोगे, उधर चलूँगी। तुम्हारी आँखों से देखूँगी, तुम्हारे कानों से सुनूँगी। तुम्हारे प्रेम के अलावा दुनिया में मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। ईश्वर ने हम दोनों को एक-दूसरे के लिए बनाया है। किसी वजह से कभी तुम मुझसे विरक्त हो गए या तुम्हें मुझसे दूर चले जाना पड़ा, तब भी, विश्वास रखो, ये आँखें तुम्हारा इंतजार करती रहेंगी, तब तक इंतजार करती रहेंगी, जब तब वे सदा के लिए मुँद नहीं जातीं। हमेशा-हमेशा के लिए तुम्हारी, सूर्या।

प्रेम के बाद :

समीर, मैंने 'प्रिय समीर' लिखने की कोशिश की, पर कलम ने साथ नहीं दिया। मेरी तरह, अब वह भी झूठ में जीना नहीं चाहती। ओह! तुम्हारे प्रेम में पड़ कर मैंने कितना बड़ा धोखा खाया। अब तो सारी मानवता से मेरा विश्वास उठ चुका है। मैंने तो तुम्हें अपना पूरा जीवन दे दिया था, कितनी आस्था के साथ तुम्हारे पास आई थी। पर तुमने क्या किया? मेरी आस्था को, मेरी भावनाओं को फूल की तरह मसल डाला। मुझे क्या पता था कि तुम्हारे नैतिक मुखौटे के पीछे कितना क्रूर पिशाच छिपा हुआ है। तुमने मुझे बरबाद कर दिया।

जिस दिन मुझे पता चला कि तुम दरअसल मुझसे नहीं, रोहिणी से प्रेम करते हो, मुझे यकीन ही नहीं हुआ। लेकिन यकीन कैसे न करती, जब मैंने देखा कि रोहिणी की नोटबुक में तुमने अपने हाथ से करेक्शन किए थे। उसी विषय पर मैंने भी निबंध प्रतियोगिता के लिए लेख लिखा था। तुमने उसे बड़े मन से सँवारा भी था। पर पुरस्कार मिला रोहिणी को। अब तो मुझे पूरा विश्वास है कि तुमने उसके लेख में करेक्शन ही नहीं किए थे, बल्कि उसे दुबारा लिख ही दिया था। रोहिणी इससे इनकार करती है। उसने अपनी वह नोटबुक भी दिखाई, जिसमें तुमने संपादन किया था। पर मैंने उसे पढ़ा तक नहीं। जब सर्वनाश हो ही चुका है, तो उसकी जन्मपत्री क्या देखना!

तुमने कहा कि रोहिणी तुम्हारी मित्र है, और कुछ नहीं। तुमने मित्रतावश ही उसका लेख देख दिया था। तुम झूठे हो, कमीने हो। पिछले एक महीने से मैंने जब भी तुम्हें फोन किया, दस में आठ बार तुम्हारा फोन बिजी मिला। जरूर तुम उस कुतिया से बात कर रहे होगे। तुम्हारा कहना है कि तुम जो नाटक डायरेक्ट कर रहे हो, उसी के सिलसिले में तुम्हें बहुत-से लोगों से बातचीत करनी पड़ रही है। हाँ, हाँ, जिंदगी तुम्हारे लिए नाटक ही है। इस नाटक में मेरे लिए कोई रोल नहीं है। मैंने कितनी बार कहा कि इस नाटक की हीरोइन का रोल मुझे दे दो, पर तुम नहीं माने। तुमने कहा कि सूर्या, तुममें अभिनय की प्रतिभा नहीं है, तुम्हें इस बखेड़े में नहीं पड़ना चाहिए। जरूर! मुझमें अब तुम्हें क्यों कुछ दिखाई देगा? सारी प्रतिभा तो रुखसाना में है, जिसे तुमने मेन रोल दे दिया है। जाओ, रोहिणी, रुखसाना वगैरह-वगैरह के पीछे दुम हिलाते रहो।

और कबीर? कबीर से तो मुझे नफरत ही हो गई है। वह भी तुम्हारे जैसा ही लफंगा होगा। बनता था संत और बीवी-बच्चों से चिपटा रहता था। जरूर उसकी कई माशूकाएँ होंगी। सभी प्रगतिशील ऐसे ही होते हैं। तुम भी ऐसे ही प्रगतिशील हो। अच्छा हुआ कि मैंने तुम्हें नजदीक आने नहीं दिया। नहीं तो मेरा शरीर भी कलुषित हो जाता। पर यह मत समझो कि तुम किसी और के साथ सुखी रहोगे। जो एक का नहीं, वह किसी का भी नहीं। जिन लपटों में मैं जल रही हूँ, उन्हीं लपटों में तुम भी जलोगे। आज से तुम्हारी कोई नहीं, सू.

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

परिवार में पुलिस

राजकिशोर

कथाकार के शब्दों में, रात शहर के मुँडेर पर उतर चुकी थी। तभी एक सौ नंबर पर आज की तीन सौ पाँचवीं घंटी बजी। उनींदे हवलदार ने एक मिनट तक घंटी को बजने दिया, ताकि लोग यह न समझें कि सौ नंबर वाले काम के अभाव में खाली बैठे रहते हैं। फिर टेलीफोन का चोंगा उठाया और कहा - दिल्ली पुलिस आपका स्वागत करती है। कृपया बताएँ कि हम आपकी क्या सहायता कर सकते हैं। एक सुमधुर, पर तुर्श महिला आवाज में जवाब दिया - जल्दी आइए, मेरे पति मुझे पीट रहे हैं। पृष्ठभूमि से एक पुरुष बोल रहा था - साली, बुला ले अपने खसम को। देखें, वे मेरा क्या कर लेते हैं। पुलिस वाले को लगा, मामला काफी गंभीर है। उसने पूछा - मैडम, अभी भी मार रहे हैं या मार चुके हैं? महिला - आधे घंटे से मारपीट चल रही है। पुलिस वाले ने पूछा - मारपीट अभी भी चल रही है, तो आप फोन कैसे कर पा रही हैं? यह आपका मोबाइल नंबर नहीं हैं, लैंडलाइन का नंबर है। महिला का भन्नाया हुआ स्वर - आप मुझसे जिरह करना चाहते हैं या मेरी सहायता करना? आना हो, तो जल्दी आइए, नहीं तो मुझे घर छोड़ कर बाहर निकल जाना होगा।

पुलिस वाले ने समझाना चाहा - मैडम, जरा-जरा सी बात पर गुस्सा करना ठीक नहीं है। जहाँ चार बरतन होते हैं, टकराते ही रहते हैं। और घर तो आपको बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहिए। आप तो जानती ही हैं, औरत ही घर की शोभा है। और फिर हमारी संस्कृति में औरतें इस तरह घर से बाहर नहीं निकला करतीं। महिला इंटेलिजेंट थी। इस स्थिति में भी उसे हँसी आ गई। उसने कहा - हमारी संस्कृति में क्या महिलाएँ उफ तक किए बिना मार खाती रहती हैं? खैर, भारतीय संस्कृति को बाद में बचाते रहिएगा, अभी तो मेरी मदद कीजिए। अब पुलिसमैन को थोड़ा ताव आ गया। उसने कहा - आप चाहती हैं, तो मैं तुरन्त आदमी भेज दूँगा। लेकिन उसके पहले मैं यह जानना चाहूँगा कि आपके साथ घरेलू हिंसा हुई है, इसका कोई गवाह है न? बिना गवाही के हम मामला दर्ज नहीं कर पाएँगे। महिला - इस फ्लैट में मैं और मेरे पति, दो जने ही रहते हैं। फिर गवाह कहाँ से आएगा? पुलिस - क्या आपके घर में कोई बच्चा नहीं है? महिला की तुर्शी लौट आई - बच्चे के सवाल पर ही तो झगड़ा हो रहा है। हमारी शादी को सिर्फ एक साल हुआ है। वे तुरंत बच्चा चाहते हैं। मेरा कहना है कि हमें कम से कम दो साल और इंतजार करना चाहिए। पुलिस - आपके पति ठीक ही कह रहे हैं। बच्चे जितनी जल्दी हो जाएँ, अच्छा रहता है। आदमी बाकी जिंदगी के लिए फारिग हो जाता है। आप उनकी बात मान लीजिए, समस्या हल हो जाएगी।

महिला की आवाज में तुर्शी बढ़ी - आपको पंचायती करने के लिए नियुक्त किया गया है या कानून का पालन कराने के लिए? क्या आपको अभी तक बताया नहीं गया है कि नए कानून के अनुसार घरेलू हिंसा अपराध है? अब पुलिस वाला अपनी पर उतर आया - हमारी ड्यूटी क्या है, यह बताने के लिए शुक्रिया। अब जरा यह भी बता

दीजिए कि क्या आपको चोट लगने के कुछ सबूत भी हैं? महिला - मैं कह रही हूँ, क्या यही काफी नहीं है? मेरे पति ने मुझे छुरा थोड़े ही मारा है, जो कटे के निशान होंगे? पुलिस - माफ कीजिए, मेडिकल में कुछ नहीं निकला, तो हम बुरे फँसेंगे। हम कहीं भागे नहीं जा रहे हैं। आप थोड़ा और इंतजार कीजिए। कोई गंभीर बात हो, तो तुरंत फोन करें। हम दौड़े आएँगे। फिर एक टेप की हुई जनाना आवाज - दिल्ली पुलिस को सेवा का अवसर देने के लिए धन्यवाद। भविष्य में जब भी आपको कोई कठिनाई हो, हमें फोन जरूर करें। हम आपकी सहायता करने के लिए तत्पर रहेंगे।

अगले दिन तक दंपति में सुलह हो चुकी थी। सुबह साढ़े आठ बजे एक फोन आया। फोन पत्नी ने उठाया, फिर कहा - डार्लिंग, तुम्हारा फोन है। पुरुष ने फोन उठाया और सुना - क्या मिस्टर गोयल बोल रहे हैं? पुरुष - कहिए, क्या बात है? जवाब मिला - संतनगर थाने में तुरन्त आ जाइए। आपके खिलाफ शिकायत है। पुरुष - किस बात की शिकायत है? जवाब मिला - यह हम फोन पर नहीं बता सकते। दस बजे तक आ जाइए। आप खुद नहीं आएँगे, तो हमें मजबूर होकर पुलिस भेजना होगा।

थाना पहुँचने पर मिस्टर गोयल को बताया गया कि उन पर अपनी पत्नी के साथ घरेलू हिंसा करने का आरोप है। गोयल - लेकिन मैंने तो कोई हिंसा नहीं की। हम दोनों के बीच बहुत अच्छे रिश्ते हैं। किसी ने गलत शिकायत कर दी होगी। थानाध्यक्ष - हमारे पास आपकी पत्नी का टेप है। क्या आप उसे सुनना चाहते हैं? पुरुष - वह तो मामूली तकरार थी। ऐसा हर घर में होता है। फिर अब तो हमारे बीच सुलह भी हो चुकी है। थानाध्यक्ष - तो आप ऐसे नहीं मानेंगे? शक्ती सिंह, इन्हें जरा हवालात में ले जाना। ये कहते हैं, शरीफ आदमी हैं।

बहुत मोल-भाव के बाद मामला पाँच सौ रुपए में तय हुआ।

दफ्तर से लौट कर पति ने पत्नी को एक जबरदस्त थप्पड़ मारा। पत्नी गिर पड़ी। उसे उठाते और दूसरे थप्पड़ की तैयारी करते हुए पति बोला - साली, मैं मना कर रहा था। पर तुमने एक नहीं सुनी। सबेरे-सबेरे पाँच सौ की चपत पड़ गई।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

पार्क में आंबेडकर

राजकिशोर

कहीं यह डॉक्टर आंबेडकर तो नहीं? देखने में तो वैसे ही लग रहे हैं। वही गोल-मटोल चेहरा, वही भारी चश्मा, वही चश्मे के पीछे से अपलक देखती आँखें, चेहरे पर वही अनजान-सी उदासी।

मैं दिल्ली के एक पार्क में टहल रहा था। तभी एक बेंच पर लेटे हुए एक स्थूल-से, लंबे, वृद्ध आदमी पर निगाह पड़ी। वह पत्थर के बेंच पर अखबार बिछाए पीठ के बल लेटा हुआ था। उत्सुकतावश एक नजर डाली, तो मैं चकित रह गया। वे आंबेडकर हों या न हों, लग उन्हीं जैसे रह रहे थे। मैंने अपनी जिज्ञासा पूरी करने के लिए नजदीक जा कर प्रणाम किया और पूछा, 'आप यहाँ कैसे?'

'मैं? क्या मुझे यहाँ नहीं होना चाहिए? क्या इस पार्क में दलितों का प्रवेश निषिद्ध है?'

मुझे बहुत शर्म आई। अपनी मूर्खता पर गुस्सा भी। मैंने कहा, 'आप तो...आपकी तो तसवीर भी संसद में लग चुकी है...'

'मुझे पता है। उस दिन मैं बेहद बेचैन रहा। हफ्ते भर तक संसद भवन के इर्द-गिर्द मँडराता रहा। यह कोई बात है? देवता को खीर और पुजारियों को जूठन! फिर देखा, मिस्टर गांधी भी वहीं थे। मिस्टर नेहरू भी। हँसते-खिलखिलाते हुए मैं लौट आया। लेकिन मुझे चैन नहीं है। जब तक दलितों को आदमी की हैसियत नहीं मिलेगी, मैं मँडराता ही रहूँगा। शायद मेरी किस्मत में यही है। बार-बार दुहराता हूँ, बुद्धं शरणं गच्छामि। पर शान्ति नहीं मिलती।'

मैंने सूचना दी, 'लेकिन अब तो पहले जैसी बात नहीं है। एक दलित लड़की उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य की मुख्यमंत्री है। कल ही तो उनका बर्थ डे धूमधाम से मनाया गया।'

'तुमने क्या मुझे जगजीवन राम समझा है? दलित लड़की! हुँह!'

मुझे आश्चर्य हुआ, 'लेकिन सभी तो उन्हें दलित जागरण का बहुत बड़ा प्रतीक मानते हैं।'

'दलित जागरण? ऐसा कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आ रही है? दलित लड़की जाग्रत होती है, तो क्या वह हीरे पहनने लगती है? कांशीराम इससे लाख गुना बेहतर था। सादगी से रहता था। पैसे नहीं जमा करता था। कुछ पढ़ता-लिखता था। यह तो निरक्षर है। सिर्फ मेरा नाम जानती है। मैंने लिखा क्या है, इसे कुछ भी मालूम नहीं।'

मैंने तर्क करने का साहस किया, 'लेकिन कोई दलित नेता दौलत जमा करे, शान से रहे, इसमें हर्ज क्या है? वे यह साबित करना चाहती हैं कि दलित सवर्णों से किसी बात में कम नहीं हैं। इससे दलितों को अपनी नेता पर नाज होता है। वे कहते हैं, चलो हममें से कोई तो निकला जो बाभन-ठाकुरों की छाती पर मूँग दल रहा है।'

'क्या मैंने दलितों को यही सीख दी है कि वे उच्च जातियों की छाती पर मूँग दलें? फिर उनमें और हममें फर्क क्या रहा? मुझे उच्च जातियों से तो नहीं, पर दलितों से यह आशा थी कि वे बेहतर मनुष्य बन कर दिखाएँगे। इससे तो बेहतर था कि यह लड़की किसी गाँव में रहती और गाँव के लोगों में आधुनिक चेतना का संचार करती।'

यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मैंने कहा, 'तो क्या दलितों का सत्ता में आना बुरा है? सत्ता में गए बिना दलित अपनी हालत कैसे सुधार सकते हैं?'

'माफ कीजिए, आप मेरी बातों का उलटा अर्थ लगा रहे हैं। कहीं आप सवर्ण तो नहीं हैं? मैंने कब सत्ता का विरोध किया? मैं तो चाहता हूँ कि दलित बड़ी संख्या में सत्ता में आएँ। इसके बिना उनकी हालत सुधर नहीं सकती। यही सोच कर पूना पैक्ट को मैंने स्वीकार कर लिया था। लेकिन दलित भी सत्ता का उपयोग उन्हीं उद्देश्यों के लिए करेंगे, जिनके लिए सवर्ण जातियाँ सत्ता का उपयोग करती हैं, तब तो साधारण दलितों की हैसियत बदलने से रही। भेड़ों की पीठ पर चढ़ कर एक भेड़ ने आसमान छू लिया, तो इससे नीचे की भेड़ों को क्या मिला? उन पर तो नेता का बोझ ही बढ़ा। यह बोझ वे कब तक उठाते रहेंगे?'

मैंने प्रतिवाद करना जरूरी समझा, 'आपकी बात सही नहीं लगती। आप पूरे हिंदुस्तान में घूम आइए, सभी दलित मायावती पर गर्व करते हैं। उनके मुख्यमंत्री बनने से दलितों में स्वाभिमान आया है। यह कोई मामूली बात नहीं है। ऐसा पहली बार हुआ है। यह ऐसा चमत्कार है जो आप भी नहीं कर पाए थे।'

'मैं अपने बारे में कोई दावा नहीं करता। मुझसे जो हुआ, मैंने किया। पर यह कहना ठीक नहीं है कि दलितों में स्वाभिमान आया है। अभिमान आया होगा। स्वाभिमान तब कहा जाएगा, जब हर दलित को अपने पर गर्व हो। इस लड़की ने तो यही साबित किया है कि मुख्यमंत्री बनने की क्षमता इसी में है, कल प्रधानमंत्री भी यही बनेगी। यह क्षमता किसी और दलित में नहीं है। वह तो चाहती भी नहीं कि कोई और दलित इस लायक बने। इसीलिए यह किसी अन्य दलित को उठने नहीं देती। कांशीराम ने मायावती को पैदा किया, मायावती किसे पैदा कर रही है? माफ कीजिए, आज मैं पहले से ज्यादा निराश आदमी हूँ। मुझे अकेले छोड़ दीजिए।'

मुझे शक हुआ कि कहीं ये कोई और तो नहीं हैं। जब गाँवों में नकली गांधी हो सकते हैं, शहरों में नकली नेहरू हो सकते हैं, तो पार्क में नकली आंबेडकर क्यों नहीं हो सकते? पर जैसे-जैसे उनकी बातों पर मनन करते हुए घर लौटा, मेरी आँखें भर आईं। अगर वे नकली हैं, तो मैं उनसे ज्यादा नकली हूँ।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

बदरंग वीसा

राजकिशोर

तसलीमा नसरीन को एक दिन अचानक विदेश मंत्रालय से बुलावा आया। कर्मचारी ने बड़े रहस्यमय स्वर में कहा, 'ज्वाइंट सेक्रेटरी आपसे कल ठीक दस बजे मिलना चाहते हैं। आप तैयार रहिएगा। हम आपको लेने साढ़े नौ बजे आएँगे।'

तसलीमा हैरान। वह समझ नहीं पा रही थी कि खुश हों या दुखी। पलड़ा दोनों ओर झुक सकता था। क्या आज मुझे रिहा कर दिया जाएगा? क्या अब मैं कोलकाता जा सकूँगी? वहाँ के दोस्त-मित्र कितनी बेताबी से मेरा इंतजार कर रहे हैं। सड़क की खुली धूप में पैदल चले कितना तो अरसा बीत चुका है मुझे। आह आजादी, तू कब तक लुकाछिपी खेलती रहेगी मुझसे? फिर खयाल आया, कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझसे कहा जाएगा कि खुदा के लिए आप भारत छोड़ दें - आप जिस देश में भी जाना चाहें, सरकार इंतजाम कर देगी। हम आपको और नहीं रख सकते। हमारी बहुत बदनामी हो रही है। मैं कहाँ जाऊँगी? दुनिया के सारे देश तो घूम लिए मैंने। कितनी इच्छा होती है कि अपने बाँग्लादेश की जमीन पर एक बार फिर पाँव रख कर देखूँ। उस मिट्टी का स्पर्श पाए पता नहीं कितनी शताब्दियाँ बीत गई हैं। कब तक, और कब तक!

तसलीमा सारी रात ऊहापोह से घिरी रही।

अगले दिन ठीक साढ़े नौ बजे भारत सरकार का वह अदना प्रतिनिधि आ गया। तसलीमा को एक ऐसी कार में बैठाया गया, जिसका सभी खिड़कियाँ परदे से ढँकी हुई थीं। ये कहाँ ले जा रहे हैं मुझे? उसने कर्मचारी से जानना चाहा। लेकिन आवाज नहीं निकली। कोई फायदा नहीं! वह सड़क की ओर मुँह किए घूरती रही मानो उस पार के दृश्यों का अनुमान कर रही हो। लेकिन यह ढाका नहीं था, जिसके चप्पे-चप्पे को वह पहचानती थी। दिल्ली थी, जिसे वह अब तक न जान सकी न पहचान सकी।

अफसर ने तपाक से उसका स्वागत किया। चाय पिलाई। फिर कहा, 'आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।'

'जी।'

'सरकार ने आपका वीसा बढ़ाने का फैसला किया है।' अफसर ने अपने स्वर को भरसक मुलायम रखते हुए कहा।

'जहे नसीब। मुझे भारत सरकार से इसी उदारता की उम्मीद थी।' तसलीमा ने आदाब बजाया, 'कितने समय के लिए?'

'यह हम आपको बाद में बताएँगे।' अफसर की आवाज थोड़ी गंभीर हो उठी।

'तो मैं आज से आजाद हूँ? जहाँ चाहूँ, वहाँ जा सकती हूँ?' तसलीमा ने उदग्रता से पूछा।

'मैडम, आजाद तो आप शुरू से ही हैं। हमने आपको कैद करके नहीं रखा है।'

'तो फिर यह सारी सिक्यूरिटी...मेरे चारों ओर पहरा...बाहर निकलने पर

रोक?...'

'आप तो जानती ही हैं, आप कितने खतरे में हैं। भारतीय राज्य का यह फर्ज बनता है कि वह आपको हिफाजत से रखे।' अफसर ने मुसकराते हुए कहा, मानो किसी अदृश्य घाव पर मरहम लगा रहा हो।

'लेकिन खतरा तो आडवाणी जी को भी है। मैंने अखबार में पढ़ा कि इसीलिए उन्होंने अपनी दूसरी भारत यात्रा रोक दी। फिर भी उनके कहीं भी आने-जाने पर कोई रोक नहीं है।' तसलीमा के स्वर में तुर्शी आ रही थी; उसने कोशिश करके उसे रोका।

'उनकी बात और है। वे नेता हैं, आप लेखिका हैं। फिर आप हमारी मेहमान भी हैं।' अफसर अब जंग में उतरने की तैयारी कर रहा था।

'क्या आपके यहाँ मेहमानों को परदे में रखते हैं? या, लेखिकाओं को परदे में रखते हैं?' तसलीमा ने मासूमियत के साथ जानना चाहा।

'माफ कीजिए, आपको परदे में नहीं रखा गया है।' फिर वह मजाक के मूड में आ गया, 'देखिए, भारत एक खुला देश है। यहाँ कुछ भी परदे में नहीं है। इसीलिए तो हम आपका वीसा रोक नहीं रहे हैं।'

'इसके लिए मैं आपकी अत्यंत आभारी हूँ। लेकिन मैं कोलकाता कब जा सकूँगी?'

'उसके लिए आपको थोड़ा इंतजार करना होगा। लेकिन आप कोलकाता जाने की जिद क्यों कर रही हैं? आपको पता है कि वहाँ की सरकार आपको कोलकाता में रखना नहीं चाहती।'

'लेकिन कोलकाता भारत से बाहर कब से हो गया? आप मुझे यहाँ सुरक्षा दे सकते हैं, तो वहाँ भी सुरक्षा दे सकते हैं।'

'हम इसी की तो तैयारी कर रहे हैं। वीसा बढ़ाने के साथ-साथ हम आपसे आग्रह करते हैं कि भविष्य में ऐसा कुछ न लिखें जिससे किसी वर्ग की भावनाएँ आहत हों।' अफसर ने छत की ओर देखते हुए कहा, जैसे वहाँ कुछ लिखा हुआ हो जिसे वह पढ़ रहा हो।

'पर मैं तो देखती हूँ कि यहाँ सभी की भावनाएँ आहत हैं। हिन्दू नेता कह रहे हैं, उनकी भावनाएँ आहत हैं। सिख कहते हैं, उनकी भावनाएँ आहत हैं। किसानों की भावनाएँ आहत हैं। तभी तो वे आत्महत्या कर रहे हैं। आदिवासियों की भी भावनाएँ आहत हैं।' तसलीमा ने बात आगे बढ़ाई।

'यह सब आप हम पर छोड़ दीजिए। भारत के लोगों की भावनाओं को आहत करने का अधिकार भारतवालों को है। आप हमारी मेहमान हैं। हम आपको यह अधिकार नहीं दे सकते।' अफसर विदेश सेवा में था। उसने प्रतितर्क किया।

'लेकिन यह देखना भी तो आपका फर्ज है कि आपके किसी निर्णय से आपकी मेहमान की भावनाएँ आहत न हों!'

'तभी तो हम आपको भारत छोड़ने के लिए नहीं कह रहे हैं।...क्या आप एक और कप चाय पीना चाहेंगी?' लगता था, अफसर सोचने के लिए समय चाह रहा है। फिर उसने धीरे से कहा, 'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अगले लोक सभा चुनाव तक आप किसी और देश में रह लें? हम आपसे वादा करते हैं कि उसके बाद हम आपको भारत बुला लेंगे और आप भारत में जहाँ चाहें रह सकेंगी।'

तो यह बात है! खतरा मुझे नहीं, भारत सरकार को है। तसलीमा नसरीन के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था।

अब यह इंतजार कर रही थी कि यह मुलाकात कब खत्म हो और कब वह अपने बंद रोशन कमरे में लौटकर अपने भविष्य के बारे में फिर से सोचना शुरू कर दे।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ

राजकिशोर

चुनाव परिणाम से मन बहुत प्रसन्न था। ऐसा लग रहा था जैसे देश भर पर एक झीना-झीना कुहासा छाया हुआ था, वह दूर हो गया। कांग्रेस का सूरज निकल आया था और अँधेरी रात में टिमटिमाते तारे अपनी-अपनी माँद में लौट गए थे। आज के सारे अखबार मेज पर पड़े हुए थे। उनके मुखपृष्ठ चुगली कर रहे थे कि हमारे पत्रकार मतदाता की नब्ज बिलकुल नहीं पहचानते। सभी अटकल लगा रहे थे कि कौन किधर जाएगा। चुनाव परिणाम ने बताया कि किसी को कहीं आने-जाने की जरूरत नहीं है। लालकृष्ण आडवाणी की किस्मत पर जरूर दुख हो रहा था। बेचारे! कितनी बड़ी हसरत पाल कर राज्य-दर-राज्य घूम रहे थे और मतदाताओं ने उन्हें अर्श से फर्श पर गिरा डाला।

ऐसे में शर्मा जी की बेसाख्ता याद आई। वे बहुत परेशान थे कि भाजपा कहीं फिर न लौट आए। जब भी इंटरनेट खोलते, हर कहीं पढ़ने को मिलता- 'आडवाणी फॉर पीएम'। दूसरी ओर, प्रकाश करात के प्रधानमंत्री बनने की सम्भावना दूर-दूर तक दिखाई नहीं पड़ रही थी। चुनाव नतीजों से वे बहुत खुश होंगे, यह सोच कर उन्हें बधाई देने मैं घर से निकल पड़ा। रास्ते में मिठाई की दुकान दिख गई, तो एक किलो लड्डू भी बँधवा लिए।

शर्मा जी मिले, पर क्या वे वही शर्मा जी थे, जिन्हें मैं जानता था? दाढ़ी बढ़ी हुई, निस्तेज आँखें और चेहरे पर घोर उदासी। दोपहर के दो बज रहे थे, अभी तक नहाए भी नहीं थे। भाभी जी ने मुझे देखते ही कहा, 'सुबह से ही टीवी पर नजर गड़ाए हुए हैं। नाश्ता भी नहीं किया। खाली चाय पर चाय पी रहे हैं और सिगरेट पर सिगरेट फूँक रहे हैं। अच्छा हुआ, आप आ गए। जरा देखिए न, इन्हें क्या हो गया है।'

मैंने शर्मा जी का हाथ पकड़ कर उनसे पूछा, 'क्या हुआ, सर? देश भर में खुशी की लहर है और आप हैं कि मुहर्रमी सूरत बनाए बैठे हैं।'

शर्मा जी बहुत देर तक गहरी निगाह से मुझे घूरते रहे। मानो मौन की भाषा में कह रहे हों कि तुम मूर्ख हो और मूर्ख ही रहोगे। फिर सिर झुका कर बुदबुदाए, 'बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ।'

मुझ पर बिजली गिरी। मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्या हो गया, जिससे वे संतप्त हैं। पूछना जरूरी हो गया, 'क्या बुरा हो गया? क्या आपके दोस्त उम्मीदवार हार गए? पर वामपंथियों से तो आप कभी खुश नहीं थे?'

शर्मा जी ने तड़पती आवाज में कहा, 'मैं कांग्रेस की जीत से परेशान हूँ।'

'लेकिन क्यों? यह तो अच्छा ही हुआ कि केन्द्र में अब अस्थिरता नहीं रहेगी। सरकार निश्ंिचत होकर अपना काम कर सकेगी।'

'इसी की तो चिन्ता है। गठजोड़ होता, तो सरकार की आर्थिक नीतियों पर कुछ तो अंकुश रहता। अब मनमोहन सिंह बेखौफ होकर अपनी बाजारवादी नीति चलाएँगे। अमीरों की चाँदी होगी। सट्टा बाजार फिर पनपेगा। गरीब बेमौत मरेगा। छँटनी होगी। बेकारी बढ़ेगी। तुमने हिसाब लगाया है कि पिछले साल भर में नौकरी जाने या माली हालत खराब होने से कितने लोगों ने आत्महत्या की है? कितने घर बरबाद हो गए? अपराध कितना बढ़ा है?'

मैंने सिर हिलाते हुए कहा, 'शर्मा जी, यह सब तो चलता रहता है। आप देख लीजिए, जिन गरीब देशों में विकास हुआ है, वे सभी बुरे हालात से गुजर रहे हैं। विश्व बैंक की पॉलिसी हर जगह फेल हुई है। यहाँ तक कि जिस देश में विश्व बैंक का मुख्यालय है, वह अमेरिका भी कराह रहा है। भ्रष्टाचार की तरह यह भी विश्वव्यापी परिघटना है।'

'तुम तो मेरी ही बात का समर्थन कर रहे हो।' शर्मा जी ने अपने बिखरे बालों को सहेजा।

'माफ कीजिएगा, मैं आपकी बात का समर्थन नहीं कर रहा हूँ। जहाँ तक हमारे देश का सवाल है, राजनीति का साधारण जन से सम्बन्ध ही क्या बचा है? इसलिए राजनीतिक चर्चा में इन गंभीर सवालों को मत उठाइए। तेल देखिए और तेल की धार देखिए।'

'यही तो शुरू जवानी से देख रहा हूँ। सरकारें बदल जाती हैं, पर उनकी पॉलिसी वही रहती है। राजनीति जितनी नई होती है, वह उतनी ही पुरानी होती जाती है। वामपंथी समझते थे कि वे जनता के मित्र हैं। जनता ने उन्हें धो दिया। देश के बड़े-बड़े बुद्धिजीवी मनमोहन सिंह की आलोचना कर रहे थे, उन्हें अमेरिका का एजेंट बता रहे थे, उनकी पार्टी की शानदार जीत हुई। इसलिए किसी की हार-जीत से मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता।'

'तब काहे परेशान हैं? देश को अपनी राह पर चलने दीजिए।'

'देश अपनी राह पर चले, तब तो कोई बात है। वह तो पराई राह पर चल रहा है। दिल्ली को ही देखो। कॉमनवेल्थ गेम्स के लिए उसे दुल्हन की तरह सजाया जा रहा है। इसकी किसी को फिक्र नहीं है कि कितनी बड़ी आबादी झुग्गी-झोंपड़ियों में रह रही है, कि दिल्ली में गुजारा करना गरीब लोगों के लिए कितना मुश्किल हो गया है? आम जनता भेड़-बकरियों की तरह साधारण बसों में ठुँसी रहती है और सरकार एसी बसें चला रही है। अब यह सब और ज्यादा होगा।'

मुझे लगा कि शर्मा जी हाइपर हो रहे हैं। इस समय इनसे बात करना ठीक नहीं है। मैंने मिठाई का पैकेट भाभी को थमाते हुए कहा, 'बाद में फिर आऊँगा। अभी इनका मूड ठीक नहीं है। इन्हें देश की चिन्ता सता रही है। इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। हो सके, तो इन्हें लेकर पहाड़ों पर निकल जाइए।'

मैं दरवाजे से बाहर आ गया। मुझे लग रहा था कि शर्मा जी की निगाहें मेरी पीठ पर टिकी हुई हैं और कह रही हैं कि तुम मूर्ख हो और मूर्ख ही रहोगे।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

बुश के समर्थन में

राजकिशोर

अगर दुनिया के दस सबसे बदनाम व्यक्तियों की सूची बनाई जाए, तो उस सूची में चचा जॉर्ज बुश का होना लाजिमी है। नहीं तो उस सूची को निष्पक्ष नहीं माना जाएगा। सूची की निष्पक्षता पर सवाल उठानेवालों में सबसे बड़ी संख्या अमेरिकी लोगों की होगी। कारण स्पष्ट है। चचा जान को हमने देर से जाना है। उनके जहीन बयानों में से कुछ ही हम तक पहुँच पाते हैं, लेकिन अमेरिकी लोगों को तो लगभग रोज ही बुश की सूक्तियों का सामना करना पड़ता है। अन्तरजाल पर ऐसे दर्जनों वेबसाइटें हैं, जहाँ इन सुभाषितों को जमा किया जाता है। मेरा अनुमान है, इससे अनेक लोगों का मनोरंजन होता होगा। लेकिन जब मनोरंजन करनेवाला व्यक्ति ह्वाइट हाउस में रहता हो, तो हँसी से ज्यादा झुँझलाहट होती है। लेकिन इस मामले में मैं अमेरिकी जनता के साथ सहानुभूति नहीं दिखा सकता। सब कुछ जानते हुए भी जब उसने चचा को दूसरी बार भी चुन लिया, तो उसके आँसू बीननेवाले हम कौन होते हैं? 'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय' जैसी कहावत क्या यूएस इंग्लिश में नहीं होती होगी? ऐसी जरूरी कहावतों के बिना क्या किसी समाज का काम चल सकता है? अमेरिका को तो इस तरह की कहावतों की सख्त जरूरत है, क्योंकि बबूल बोते रहना वहाँ की सरकारों का सबसे प्रिय शगल हैं। अगर वे बेवकूफी में नहीं, जान-बूझ कर ऐसा कर रहे हैं, तो खुदा उन्हें कभी माफ न करे। लेकिन इस मामले में हम खुदा को क्या सलाह दे सकते हैं? अमेरिकी सरकारों की कारगुजारियों के बारे में वह हमसे बहुत ज्यादा जानता होगा।

कुछ समय से प्रबुद्ध भारतीय चचा जान से नाराज हैं। शिष्टाचार का तकाजा है कि दूसरे की थाली पर नजर न फेरी जाए। कहते हैं कि दूसरे की थाली में घी हमेशा ज्यादा नजर आता है। हमारे चचा जान की नजर भी कुछ ऐसी ही है। लेकिन ऐसा हो कैसे सकता है? सब कुछ के बावजूद हम अभी भी विकासशील देश हैं। तमाम तरह की अविकसित क्रियाएँ करते रहने के बावजूद अमेरिका विकसित देश है। सो वहाँ की क्वार्टर थाली भी हमारी फुल थाली से ज्यादा बड़ी होगी। फिर भी चचा बुश का कहना है कि भारत के तीस करोड़ लोगों की जेबों में काफी पैसा आ गया है और वे अपनी थाली का आकार लगातार बढ़ाते जा रहे हैं। इसी से दुनिया भर में खाद्य पदार्थों की कीमत बढ़ रही है। दो-तीन दिन बाद उन्होंने फरमाया कि इंडिया के लोग पेट्रोल भी ज्यादा पी रहे हैं, इसलिए तेल की अन्तरराष्ट्रीय कीमतों में इजाफा रहा हैं। इससे खाते-पीते भारतीयों के बदन में आग लग गई। वे चचा जान को कोसने लगे। कौन नहीं जानता कि अमेरिकी दुनिया के सबसे पेटू लोगों में हैं। पुराने पेटुओं को क्या अधिकार है कि वे नए और विकासशील पेटुओं की आलोचना करें? इक्कीसवीं सदी का नारा होना

चाहिए : दुनिया के पेटुओ, एक हो।

इस विवाद को पढ़कर मैं अपने देश के बारे में सोचने लगा। अन्तरराष्ट्रीय कीमतों की मेरी जानकारी बहुत सीमित है। असल में आजकल मैं अन्तरराष्ट्रीय से ज्यादा राष्ट्रीय होना चाहता हूँ। बात यह है कि ग्लोबलाइजेशन के बाद अन्तरराष्ट्रीय लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। सो मैंने सोचा कि कुछ लोगों को तो राष्ट्रीय रहना चाहिए। सो मैं इस टोली में आ धँसा। राष्ट्रीय का मतलब है कि मुट्ठी भर लोगों के हितों के बारे में न सोचा जाए। देश के सभी लोगों के हितों के बारे में सोचा जाए। जब मैं इस मोड में विचार करने लगा, तो मुझे जान पड़ा कि चचा बुश के उपर्युक्त बयानों से हम कुछ सीख ले सकते हैं। चचा आखिर चचा हैं। परिवार के आदमी हैं। कुछ कहा है तो सोच कर ही कहा होगा। सोच कर नहीं कहा है, तब भी उनकी बात में कहीं दम दिखाई दे रहा है, तो उसे ग्रहण करना बेजा कैसे है?

वैसे मुझे चचा बुश के गणित पर शक है। वे भारत के मध्य वर्ग की साइज तीस करोड़ मानते हैं। मैं बीस करोड़ से ज्यादा पर राजी नहीं हूँ। जिसे मध्य वर्ग मान लिया जाता है, उसकी अंदरूनी हालत मुझे खूब पता है।

बहरहाल मैं सोचने यह लगा कि अगर भारत का एक औसत मध्यवर्गीय आदमी औसतन रोज एक अंडा, पचास ग्राम गोश्त (मुर्गा, बकरी, मछली, प्रॉन आदि को मिला कर), दो किलो अनाज और दो फल खाता है, आधा किलो दूध, दो प्याला चाय और दो सौ बूँद शराब पीता है, आधी सिगरेट फूँकता है, एक बटा दस कार में चलता है, साल में एक बार रेल यात्रा करता है, एक तोला सोना खरीदता है, महीने में एक बार दो सौ रुपए स्कूल फी भरता है, आधा बार सिनेमा जाता है, उसके घर में एक अदद टीवी है, एक अदद सोफा सेट है, दो बेड हैं, आधा फ्रिज है, एक अलमारी है, एक बिजला का पंखा है, तीन ट्यूबलाइटें हैं, बीस बरतन हैं, दो दर्जन कपड़े हैं, पानी का एक नल है, सौ ग्राम सोने के जेवर हैं, एक बटा पाँच मोबाइल फोन है आदि-आदि, तो देश के कुल सवा अरब लोगों को ये बुनियादी सुविधाएँ जुटाने में कितने प्रकाश-वर्ष लग जाएँगे?

मेरा गणित वह भी पूछता है कि क्या भारत के पास इतने संसाधन हैं भी कि देश के सभी लोगों को वर्तमान मध्यवर्गीय रहन-सहन के स्तर पर लाया जा सके? इतना दूध कहाँ से आएगा? इतने सोफा सेट बनाने के लिए लकड़ी कहाँ से आएगी? इतनी बिजली कौन पैदा कर सकता है?

तो क्या हमें अभी से उपयोग में संयम बरतना शुरू कर देना चाहिए? चचा की सलाह तो यही है। आप कहेंगे, वे अमेरिकियों को यह सलाह क्यों नहीं देते कि वे भी अपना पेटूपन जरा कम करें? बेशक सलाह की शुरुआत अपने घर से ही करनी चाहिए, लेकिन फेफड़े के कैंसर से पीड़ित कोई व्यक्ति धुआँधार सिगरेट पीते हुए हमें सलाह दे कि सिगरेट नहीं पीनी चाहिए, तो उसकी बात क्या कुछ कम विचारणीय हो पाती है?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड

मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

भविष्य का भारत

राजकिशोर

अनुक्रम

पीछे

आगे

शीर्ष पर जाएँ

व्यंग्य

भविष्य का भारत

राजकिशोर

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

भारत सरकार के तीन वक्तव्य

राजकिशोर

भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध : भारत-पाकिस्तान वार्ता का यह चरण बहुत ही सफल रहा। सौहार्दपूर्ण वातावरण में हमने अनेक विषयों पर महत्वपूर्ण बातचीत की। दोनों ही देशों ने खुल कर अपना पक्ष रखा। यह वार्ता के इस चरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह जरूर है कि हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। लेकिन हम कोई बड़ी आशा लेकर गए भी नहीं थे। दूसरा पक्ष भी विशेष आशान्वित नहीं था। इसलिए हम निराश नहीं हैं। हमें सर्वाधिक प्रसन्नता इस बात की है कि हमारी बातचीत बहुत ही अच्छे माहौल में हुई। हमने एक-दूसरे के पक्ष को सहानुभूति से समझने की कोशिश की। यह बात भी गौर करने लायक है कि दोनों ही देश गहराई से यह महसूस कर रहे हैं कि बातचीत से ही सभी विवादों का समाधान निकाला जा सकता है। इसलिए कोई विशेष प्रगति न होते हुए भी हमारी वार्ता जारी रहेगी। हम नहीं चाहते कि वार्ता करना ही अपने आप में उद्देश्य हो जाए। यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है। लेकिन राजनय में सब कुछ आदर्श नहीं होता। हमें यथार्थ पर भी नजर रखनी पड़ती है। इसलिए हम एक-दूसरे से बातचीत करना जारी रखेंगे। हम जानते हैं कि किसी भी बातचीत से अभी तक कोई ठोस प्रगति नहीं हुई है। मूल समस्याएँ जस की तस कायम हैं। फिर भी हम एक बार फिर यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध को मजबूत बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। पाकिस्तान भी यही चाहता है। इसीलिए बातचीत को जारी रखना कठिन नहीं होगा। प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी हम मिलेंगे और बातचीत करते रहेंगे। दुनिया की कोई भी शक्ति हमें बातचीत करने से रोक नहीं सकती।

महँगाई : महँगाई एक बार फिर एक विकट समस्या के रूप में देश के सामने उपस्थित है। हम गहराई से महसूस करते हैं कि साधारण जनता को, खासकर वंचित वर्गों को, बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। लेकिन यह कोई नई घटना नहीं है। पहले भी समय-समय पर महँगाई बढ़ती रही है। और जब भी हम सत्ता में रहे हैं, हमने उसका डट कर सामना किया है। भारत की जनता को पता है कि समस्या कोई भी हो, हम डट कर उसका सामना करते हैं। इस बार भी हम महँगाई का डट कर सामना कर रहे हैं। यह सही है कि अभी तक हमें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी है। लेकिन हमारे प्रयत्नों के परिणाम सामने आने लगे हैं। कुछ चीजों की कीमतें कम हुई हैं, कुछ की स्थिर हैं। आशा है, निकट भविष्य में और भी राहत मिलेगी। हम यह साफ कर देना चाहते हैं कि महँगाई कम करने के लिए हमारे पास कोई जादू की छड़ी नहीं है। इसलिए महँगाई एक दिन में खत्म नहीं की जा सकती। लोगों को धीरज रखना चाहिए। आज महँगाई एक अंतरराष्ट्रीय समस्या है। बड़े-बड़े देश इससे जूझ रहे हैं। हमारा देश एक आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है, इसलिए हमें भी इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। हो सकता है, आनेवाले दिनों में कीमतें और बढ़ें। इसलिए हमें सतर्क रहना होगा। हम परिस्थिति पर निगाह रखे हुए हैं। जरूरी होने पर तुरन्त आवश्यक कदम उठाए जाएँगे। लेकिन रातोंरात कुछ नहीं

हो सकता। यह हमारा वादा है कि हम जनता को महँगाई की चक्की में पिसने नहीं देंगे। पर बाजार की शक्तियों पर अंकुश लगाना राष्ट्रीय हित में नहीं है। इससे विकास की गति प्रभावित हो सकती है। पर कीमतों को सहनीय स्तर पर बनाए रखना सरकार का कर्तव्य है। वह इसके लिए कुछ भी कर सकती है और करेगी।

आतंकवाद : एक बार फिर आतंकवाद ने अपना सिर उठाया है। बहुत-से निर्दोष लोगों की जान गई है। इस कायराना हरकत से सारा देश स्तब्ध है। हम भी स्तब्ध हैं। लेकिन हम हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठे हुए हैं। हमें एहसास है कि आतंकवाद इस समय देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। आतंकवाद के कारण हमने कई महत्वपूर्ण नेता खोए हैं। अब इस सिलसिले को चलने नहीं दिया जा सकता। हम आतंकवाद के खिलाफ कठोर से कठोर कार्रवाई करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमने बहुत-से जरूरी कदम उठाए हैं। कुछ सफलता भी मिली है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक अंतरराष्ट्रीय समस्या है। इसलिए इस मोर्चे पर पूर्ण सफलता मिलने की उम्मीद नहीं की जा सकती। कुछ राजनीतिक पर्यवेक्षकों का कहना है कि हमें आतंकवाद के साथ जीना होगा। यह बात निराधार नहीं है, लेकिन हमने तय किया है कि हम आतंकवाद को कुचल कर रहेंगे। इसके लिए हम कोई भी कदम उठा सकते हैं। सरकार विचार कर रही है कि और कौन-से कदम उठाए जाने चाहिए। इससे हमें रोका नहीं जा सकता। फिर भी हम अनुरोध करते हैं कि लोग संयम न खोएँ। हम कुरबानी देते आए हैं। आगे भी कुरबानी देनी पड़ सकती है। आतंकवाद के जबड़े अभी भी खुले हुए हैं। पर देश उसके सामने आत्मसमर्पण नहीं कर सकता। हम उससे संघर्ष करते रहेंगे। जब तक आतंकवाद है, हम चैन की नींद नहीं सो सकते। लेकिन लोगों को यह भी समझना होगा कि रास्ता लम्बा है। रातोंरात कुछ नहीं किया जा सकता। हम धीरज रखे हुए हैं। लोगों को चाहिए कि वे भी धीरज रखें। आतंकवाद के खिलाफ हमारी जंग जारी थी, जारी है और जारी रहेगी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

भारतीय अपराध अकादमी

राजकिशोर

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आला अफसर बहुत परेशान थे। उनके पास स्वीकृति के लिए एक विचित्र आवेदन आया हुआ था। आवेदक देश की राजधानी दिल्ली के पास ग्रेटर नोएडा में एक निजी विश्वविद्यालय खोलना चाहता था, जिसका नाम था - भारतीय अपराध अकादमी। अकादमी के परिचय में कहा गया था कि यहाँ गुंडा, बदमाश, माफिया, राजनेता, दलाल, गनमैन, तस्कर, एनजीओ आदि का प्रशिक्षण दिया जाएगा। इन पाठ्यक्रमों की विशेषता होगी प्रैक्टिकल का उचित प्रबंध। सभी छात्र-छात्राओं को कम से कम दो वर्षों तक विश्वविद्यालय परिसर में रहना होगा। फीस की रकम भारी-भरकम थी - किसी भी अन्य विश्वविद्यालय से ज्यादा, लेकिन प्रबंधकों को आशा थी कि पहले ही वर्ष में प्रवेशार्थी इतने ज्यादा हो जाएँगे कि सीटें प्रीमियम पर बिकने लगेंगी और कैंपस हरा-भरा नजर आएगा। उन्होंने यह भी बताया था कि पढ़ाई के दौरान परिसर में शांति भंग न हो, इसलिए कनाडा की एक सुरक्षा कंपनी से अनुबंध किया गया है। उसके आदमी आधुनिकतम यंत्रों की मदद से प्रत्येक विद्यार्थी की गतिविधियों पर नजर रखेंगे। फैकल्टी के लिए अमेरिका, रूस, सऊदी अरब, इजराइल, श्रीलंका, पाकिस्तान, म्यामांर आदि के विशेषज्ञों से बातचीत की जा रही है।

चूँकि निजी विश्वविद्यालयों की स्थापना का प्रस्ताव सरकार द्वारा सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकार कर लिया गया था, इसलिए भारतीय अपराध अकादमी को मान्यता देने में कोई तकनीकी बाधा नहीं थी। पर पाठ्यक्रम का चरित्र कुछ संशय पैदा कर रहा था। माना कि समाज में, खासतौर से महानगरों के इर्द-गिर्द और कुछ जंगली पहाड़ी इलाकों में ऐसे लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही थी, जो लगता था कि ऐसी ही किसी अकादमी से प्रशिक्षण पाकर निकले हैं, फिर भी सरकार अभी इतनी बेशर्म नहीं हुई थी - यह उदारीकरण का सिर्फ सोलहवाँ साल था - कि इस प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण के लिए सीधे विश्वविद्यालय को मान्यता दे दे। सचिव को लगा कि माननीय मानव संसाधन मंत्री के समक्ष फाइल पुटअप करने के पहले निजी स्तर पर आवश्यक पूछताछ कर लेनी चाहिए। उसने प्रस्ताव देने वाले को अपने दफ्तर में बुलवाया और सुरक्षा विभाग को यह गोपनीय आदेश जारी कर दिया कि मुलाकात के दिन सचिव की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए।

जैसा कि अखबारों में लिखने की प्रथा है, मानव संसाधन मंत्रालय के सचिव और भारतीय अपराध अकादमी के पहले कुलपति के बीच बातचीत के कुछ अंश :

सचिव - क्या इस विश्वविद्यालय के लक्ष्य कुछ अजीब-से नहीं लगते?

कुलपति - इसमें अजीब क्या है? मुझे लगता है कि इस तरह के पाठ्यक्रम गुप्त रूप से कहीं न कहीं जरूर चल रहे हैं। नहीं तो कुछ ही वर्षों में गुंडों, बदमाशों, दलालों, यौन अपराधियों की इतनी बड़ी फौज कहाँ से तैयार हो गई है?

ये अमेचर भी नहीं लगते। आप जरा अपनी जवानी के जमाने की दिल्ली को याद कीजिए। तब यहाँ कितनी शांति थी, कितना सुकून था।

सचिव - माफ कीजिएगा, यह गृह मंत्रालय का मामला है। अपराध की चिंताजनक होती जा रही स्थिति से हमारे मंत्रालय का कुछ लेना-देना नहीं है।

कुलपति - गलत। समाज में शिक्षा की स्थिति जैसी होती है, समाज वैसा ही बनता है। अगर शिक्षा का प्रसार ठीक ढंग से नहीं हो रहा है, तो आप अच्छे समाज की उम्मीद नहीं कर सकते।

सचिव - लेकिन आप तो अपराध का प्रशिक्षण देने जा रहे हैं। इससे समाज कैसे सुधरेगा?

कुलपति - दो मुख्य बातें हैं। पहली बात यह है कि परंपरागत कॅरियर खत्म हो रहे हैं और नए कॅरियर उचित संख्या में पैदा नहीं हो रहे हैं। मैं जब हजारों नवयुवकों को जेब में एमबीए की डिग्री लिए सड़क नापते देखता हूँ, तो मुझे बहुत तकलीफ होती है। मेरे मन में यह बात आती है कि देश में जो दर्जनों नए अनौपचारिक करियर सामने आए हैं, उनके लिए इन्हें तैयार करूँ। सभी के पास इतना सोर्स नहीं है कि वे इन कॅरियर का प्रशिक्षण पाने के लिए सही जगह फिट हो सकें। हर क्षेत्र में भारी कंपटीशन है। हमारा संस्थान सिर्फ एक वर्ष में जितनी शिक्षा देगा, उतनी शिक्षा अनौपचारिक तरीकों से पाने में लोगों को दस-दस वर्ष लग जाते हैं। इस तरह हम राष्ट्रीय अपव्यय को रोकेंगे और नई पीढ़ी को रोजगार मुहैया कराएँगे।

सचिव - और दूसरी बात?

कुलपति - दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ से प्रशिक्षित गुंडे, बदमाश, दलाल, यौन अपराधी क्रूड और अराजक नहीं होंगे। उनके कुछ मूल्य होंगे। हमारे प्रत्येक कोर्स में एक पर्चा मैनेजमेंट टेकनीक का है। इसलिए हमारे डिग्रीधारी हर काम व्यवस्थित तरीके से करेंगे। वैज्ञानिक तरीके अपनाने पर अपराध के शिकार लोगों की क्वालिटी ऑफ लाइफ में सुधार होगा। मरने वाले कम से कम तकलीफ से गुजरेंगे। औरतों के साथ बलात्कार करने के बाद उन्हें तुरंत डॉक्टरी सहायता पहुँचाई जाएगी। जो शोर नहीं मचाएँगी, उन्हें उनकी उम्र और हैसियत के अनुसार हरजाना दिया जाएगा। हत्या के बाद पुलिस को एसएमएस से सूचित किया जाएगा कि लाश कहाँ मिलेगी। इससे पुलिस के बजट में भी कमी होगी। फर्जी तफतीशें बंद हो जाएँगी। चूँकि सभी मुख्य अपराधों का मानकीकरण हो जाएगा, इसलिए सरकार अगले वर्षों के आँकड़े पहले से ही तैयार कर संसद में पेश कर सकती है। वह किसी इलाके को अपराध-मुक्त बनाना चाहे, तो एकमुश्त रकम देकर इसका इंतजाम भी कर सकेगी। ये उपलब्धियाँ क्या आपको मामूली लगती हैं?

सचिव - मुझे शक है कि हमारी मिनिस्ट्री आपके विश्वविद्यालय को मान्यता दे सकती है।

कुलपति - तो आप अपने शक की दवा कराइए। मेरा समय क्यों बरबाद कर रहे हैं?

सचिव - आपको शायद मालूम नहीं कि हमारी यह बातचीत टेप हो रही है।

कुलपति - तो मैं भी आपको बता ही दूँ कि मैं भारतीय अपराध अकादमी का कुलपति नहीं हूँ। मेरा नाम एम्स के मनोरोग विभाग में डिप्रेशन के रोगी के रूप में दर्ज है। और, असली कुलपति थाईलैंड के एक आलीशान होटल में

बैठे हमारी यह बातचीत सुन रहे हैं।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मैं आ रही हूँ

राजकिशोर

बहन माया आज बहुत खुश थीं। खुश थीं या खुश दिखाई पड़ रही थीं, यह बता पाना मुश्किल है। जो राजनीति में है उसके करीबी भी इसका अंदाजा नहीं लगा सकते। इस मामले में मनमोहन सिंह सबसे अधिक विश्वसनीय हैं। ठीक भारत सरकार की तरह, जिसका चेहरा नितांत अपारदर्शी है। सोनिया गांधी ने भी इस दिशा में अच्छी प्रगति की है। पर उनमें एक कमी है। उन्हें मुस्कराते हुए शायद ही किसी ने देखा हो, पर जब वे वीर या रौद्र रस में होती हैं, तो अपने को अप्रकट नहीं रख पातीं। मुझे विश्वास है कि राहुल गांधी इस कमी को दूर करने में पूरी तरह सफल होंगे।

बहरहाल, बात माया मेमसाहब की हो रही थी। पिछले दिनों वे काफी परेशान नजर आ रही थीं। उन्हें लगता था कि केन्द्र की सरकार जेल और उनके बीच की दूरी को कम करने की कोशिश में लगी हुई है। यह कोशिश करते-करते जब वाजपेयी प्रधानमंत्री के रूप में भूतपूर्व हो गए, तब मनमोहन सिंह की सरकार ने इस मिशन को अपना लिया। लेकिन अभी तक तो माया बहन ताज कॉरिडोर से दूर रह पाने में सफल रही हैं। अब आगे कोई खतरा दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि लखनऊ उन्हें चीख-चीख कर अपने पास बुला रहा है।

जो लखनऊ को प्यारा हो गया, आगरा और फैजाबाद जैसे शहर उसके सामने पानी भरने लगते हैं। गद्दी पर आने का सबसे बड़ा फायदा यही है। जैसे गंगा में डुबकी लगाने से सारे पाप कट जाते हैं, वैसे ही सत्ता में जाने के बाद आदमी कानून की सभी धाराओं से ऊपर उठ जाता है। कानून शासितों के लिए होता है, शासकों के लिए नहीं। इसीलिए मायावती को अपने तीसरे मुख्यमंत्रित्व की आहट से बहुत प्रसन्नता हो रही थी। खुशी का भार इतना ज्यादा था कि पैर जमीन पर एक जगह टिक नहीं रहे थे। इसी मूड में वे संवाददाता सम्मेलन में पधारीं।

मायावती न केवल अच्छे मूड में थीं, बल्कि अच्छा दिखने के लिए उन्होंने कोई पत्थर उठाए बिना नहीं छोड़ा था (अंग्रेजी के एक पुराने, घिसे-पिटे मुहावरे का समकालीन घटिया अनुवाद)। वे इस विचारधारा से गहराई से प्रभावित नजर आ रही थीं कि गरीब भारत के नेता को गरीब नहीं दिखना चाहिए। माया के संक्षिप्त शब्दकोश में गरीब का अर्थ है दलित। अतः उनका स्वाभाविक आग्रह रहता है कि वे आम दलित की तरह न दिखें। उन्हें दलितों का गांधी नहीं, जवाहर बनना है। गांधी तो दलित-विरोधी थे। जवाहर ने आंबेडकर को अपने पहले मंत्रिमंडल में स्थान दिया था। लेकिन आंबेडकर ज्यादा दिन सत्ता में नहीं रह सके, क्योंकि उन्हें सत्ता की बजाय अपने सिद्धान्त प्यारे थे।

यह घटना जितने ऐतिहासिक महत्त्व की थी, इससे माया बहन ने उतनी ही ऐतिहासिक सीख ली थी। चूँकि सत्ता में आए बगैर दलितों के लिए कुछ नहीं किया जा सकता, इसलिए उन्होंने विचारधारा को लम्बी छुट्टी दे दी थी। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने विचारधारा को छुट्टी पर नहीं भेजा है, बल्कि सदा के लिए रिटायर कर दिया है। सचाई जो भी हो, विचारधारा न भी रह जाए, विचार तो बना ही रहता है। एक समय कहा जाता था कि खादी वस्त्र नहीं, विचार है। इसी तरह माया बहन के कीमती कपड़ों, हीरे आदि के माध्यम से उनके विचार प्रकट हो रहे थे। इन विचारों में काफी समृद्धि थी।

एक संवाददाता ने पहला सवाल दागा : क्या आपको आभास है कि मुलायम सिंह के बाद आप ही आ रही हैं?

माया : हाँ, मैं आ रही हूँ।

दूसरा संवाददाता : सत्ता में आने के बाद आपका एजेंडा क्या होगा?

माया : तब की तब देखी जाएगी। अभी तो मैं आ रही हूँ।

तीसरा संवाददाता : मुलायम सिंह की सरकार का मूल्यांकन आप किस तरह करती हैं?

माया : कहा न, मैं आ रही हूँ।

चौथा संवाददाता : क्या बहुजन समाज पार्टी को अकेले बहुमत मिल सकेगा?

माया : यह इस बात से स्पष्ट है कि मैं आ रही हूँ।

पाँचवाँ संवाददाता : सत्ता में आने के लिए आप किन दलों का सहयोग लेना चाहेंगी?

माया : क्या इतना काफी नहीं है कि मैं आ रही हूँ?

छठा संवाददाता : कांग्रेस के प्रति आपका नजरिया क्या रहेगा?

माया : वे जानते हैं कि मैं आ रही हूँ।

सातवाँ संवाददाता : उत्तर प्रदेश के प्रशासन के लिए आपका संदेश क्या है?

माया : वे यह न भूलें कि मैं आ रही हूँ।

आठवाँ संवाददाता : सत्ता में आने के बाद कौन-कौन-से परिवर्तन करना चाहेंगी?

माया : फिलहाल इतना परिवर्तन काफी है कि मैं आ रही हूँ।

नौवाँ संवाददाता : दलित वर्ग के लिए आपका संदेश?

माया : उन्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है, मैं आ रही हूँ।

दसवीं संवाददाता एक लड़की थी, जो अंग्रेजी स्कूल से निकल कर सीधे एक प्रसिद्ध टीवी चैनल में घुस गई थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। विजुअल तो उसे मिल गए थे, पर ऑडियो जरा भी नहीं जम रहा था। अब तक उसका पेशेंस जवाब दे चुका था। उसने अपने साथियों से कहा, मैं जा रही हूँ।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मैं चुप रहूँगा

राजकिशोर

लोग मुझे पत्थर का सनम कहने लगे हैं। उनका मानना है कि नंदीग्राम में हुई सरकारी हिंसा पर बयान नहीं देकर मैंने मार्क्सवाद के साथ थोड़ी-सी बेवफाई की है। बेफवाई थोड़ी-सी हो या ज्यादा, है तो बेवफाई ही। इसलिए मुझे उनकी समझ पर तरस आता है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि बंगाल के लेखकों और बुद्धिजीवियों ने प्रतिवाद जुलूस निकाल कर क्या कर लिया? बताते हैं कि बुद्धिजीवियों के आह्वान पर उस जुलूस में 60 हजार लोग शरीक हुए थे। मैं ऐसे जुलूस को जनवादी जुलूस मानने से इनकार करता हूँ। पहली बात तो यह है कि जिन बुद्धिजीवियों के आह्वान पर जुलूस में शामिल होने के लिए सौ-पचास नहीं, 60 हजार लोग उमड़ पड़ें, वे वास्तविक बुद्धिजीवी नहीं हो सकते। यह तो भीड़वाद है। मैं भीड़वादी नहीं हूँ। जनवादी हूँ। जन का अर्थ भीड़ नहीं होता। भीड़ में जब जनवादी चेतना का संक्रमण होता है, तब वह जन हो जाती है। जनवाद उसी की रक्षा के लिए है। जानम, समझा करो।

फिर, इस बात का क्या सबूत है कि कोलकाता के उस प्रतिवाद जुलूस में साठ हजार लोग ही थे? भारतीयों में न केवल इतिहास चेतना नहीं है, बल्कि उनमें संख्या की चेतना भी नहीं है। सुनते हैं, सांख्य नाम का एक वैज्ञानिक दर्शन का विकास इसी देश में हुआ था। इसके बावजूद भारतीयों की सांख्य दृष्टि बहुत अधूरी है। वे एक-दो-तीन से ज्यादा नहीं जानते। इसीलिए उनकी बुद्धि नौ दो ग्यारह हो चुकी है। अखबारों में लिख दिया, साठ हजार और सभी ने कहना शुरू कर दिया, साठ हजार। अरे भाई, किसी ने गिनती की थी? मैं बुद्धिजीवी हूँ। लोगों की बात पर क्यों जाऊँ? कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना। असली बात यह है कि दिल वाले दुल्हनियाँ ले जाएँगे। अगर संख्या से ही फैसला होना है, तो मेरी पार्टी कोलकाता में पाँच लाख लोगों का जुलूस निकाल सकती है। लेकिन हम संख्या नहीं, गुण देखते हैं।

इसीलिए हम जनवादी लोग बूर्ज्वा लोकतंत्र की निंदा करते हैं। अकबर इलाहाबादी ने इस लोकतंत्र की निन्दा करते हुए कहा था कि यह एक ऐसा सिस्टम है जिसमें बन्दों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते। लेकिन हमारे आलोचक गिनने में लगे हुए हैं। वे रोज गिनते रहते हैं कि नंदीग्राम में कुल कितने लोगों की हत्या की गई। इनमें से कितनी हत्याएँ कॉमरेडों ने कीं, कितनी पुलिस ने की और कितनी सीआरपीएफ ने। वे यह नहीं गिनते कि कितने जनवादियों को कितने समय से नंदीग्राम से बाहर किया हुआ था। यह कोई बात हुई? असली जनवादी तो गाँव के बाहर शरणार्थी शिविरों में और जनवादियों के दुश्मनों का नंदीग्राम पर कब्जा! यह इतिहास नहीं, इतिहास का विपर्यय है। हम ऐसे विपर्ययों को किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं करेंगे। चाहे हमें जान देनी पड़े या जान लेनी

पड़े। क्या कॉमरेड स्टालिन लाशों की गिनती करते थे? क्या कॉमरेड माओ ने यह नहीं कहा कि सत्ता बंदूक की नली में रहती है?

मैं दिल्ली में रहता हूँ। बुद्धिजीवियों के लिए आदर्श जगह। कस्बे का बुद्धिजीवी जिंदगी भर कस्बे का ही बुद्धिजीवी बना रहता है - खोसला के घोंसले में। राष्ट्रीय स्तर पर उसे न कोई जानता है न पहचानता है। हम दिल्लीवाले नील गगन की छाँव में रहते हैं। आदमी दिल्ली आया नहीं कि उसे अपने आप राष्ट्रीय स्तर का मान लिया जाता है। यही ठीक भी है। दिल्ली के हम बुद्धिजीवियों को हमेशा देश-विदेश की घटनाओं पर निगाह रखनी होती है और समय-समय पर बयान जारी करना पड़ता है। खास तौर पर हम हिन्दी के बुद्धिजीवियों को। हमारे द्वारा जारी किए गए बयानों पर पूरे देश की निगाह टँगी रहती है। देश से मेरा मतलब है, मध्य प्रदेश (भोपाल), उत्तर प्रदेश (लखनऊ और कुछ हद तक इलाहाबाद) और बिहार (पटना और कुछ हद तक गया)। लोग बताते हैं कि कानपुर, बरेली, मुजफ्फरपुर और इंदौर में भी हमारे संयुक्त बयानों को महत्व दिया जाता है। लेकिन मैं विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि बयान को किसने पढ़ा और किसने नहीं पढ़ा। महत्वपूर्ण यह है कि बयान लिखा गया और जारी किया गया। इस बात से भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि वही-वही लोग वही-वही बयान क्यों जारी करते रहते हैं। फर्क इससे पड़ता है कि ठीक समय पर और ठीक नामों के साथ बयान जारी हुआ कि नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि बयानबाजी में भी जाति प्रथा है। जब बड़ों के नाम आते हैं, तो छोटों के नाम छोड़ दिए जाते हैं। लेकिन हम इस तरह की आलोचनाओं से भ्रमित होनेवाले नहीं हैं। मार्क्सवादी हम हैं कि वे? सचाई का ठेका हमने ले रखा है कि उन्होंने? कब क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए, यह करनेवाले तय करेंगे या तमाशा देखनेवाले? राजनीति सरकस नहीं है। यह एक गंभीर कर्म है - इसे जनता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता।

इसीलिए मैंने, मेरा मतलब है कि हमने, तय किया है कि हम दुनिया भर की चीजों पर बयान देंगे, हुसैन पर बयान देंगे, नरेन्द्र मोदी पर बयान देंगे, लेकिन नंदीग्राम पर चुप रहेंगे। तसलीमा पर भी हम चुप रहेंगे। मैं कहना यह चाहता हूँ कि चुप रहना भी एक बयान है, जैसे बहुत अधिक बोलने के पीछे एक भयावह किस्म की चुप्पी रहती है। मेरी चुप्पी साधारण चुप्पी नहीं है। यह एक ऐतिहासिक चुप्पी है। यह मूर्ख चुप्पी नहीं है, समझदार चुप्पी है। इसका मर्म जो नहीं समझता, वह भारत में मार्क्सवाद के चरित्र को नहीं समझ सकता।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मैं भूत बनना चाहता हूँ

राजकिशोर

जब मैंने सुना कि अमिताभ बच्चन भूतनाथ का अभिनय करने के लिए तैयार हो गए हैं, मेरी खुशी की सीमा नहीं रही। चन्द्रकांता और चन्द्रकांता संतति मैंने बचपन में खूब चाव से पढ़ा था। उनके ऐयारों के सामने आज के जासूस पानी भरते हैं। उन ऐयारों का एक नैतिक स्तर हुआ करता था। जो ऐयार इस संहिता की परवाह नहीं करता था, उसे ऐयार समाज में नफरत की निगाह से देखा जाता था। भूतनाथ भी मैंने पढ़ा था, पर उसकी स्मृति बहुत कमजोर है। यह जानने के लिए कि क्या भूतनाथ में अदृश्य होने की क्षमता थी, मुझे आदरणीय राजेन्द्र यादव की मदद लेनी पड़ी। इसलिए नहीं कि मैं भी उन्हें ऐयार मानता हूँ। या खुदा, ऐसे नापाक खयालों से मुझे कोसों दूर रख। यह मुमकिन नहीं, तो दूसरी तरह के नापाक खयाल मेरे भेजे में डाल दे। वहाँ और भी बहुत-से नापाक खयाल पालथी मारे बैठे होंगे। अच्छी संगत रहेगी। यादव जी से मैंने इसलिए पूछा कि उनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है। इतनी अच्छी कि उन्हें यहाँ तक याद है कि हंस का प्रकाशन उन्होंने किस उद्देश्य से शुरू किया था।

यादव जी ने प्रथम श्रत्वा ही बता दिया कि भूतनाथ में अदृश्य होने की क्षमता नहीं थी। यह जान कर गहरी निराशा हुई। मैंने सोचा था कि नाम भूतनाथ है, तो वह भूतों के किसी गुट का हेड होगा। लेकिन वह तो बस नाम का ही भूतनाथ निकला। इसका मतलब यह है कि पहले भी ऐसे नाम रखे जाते थे जो यथार्थ से मेल नहीं खाते थे। तौबा, तौबा। इस मामले में हमने रत्ती भर भी प्रगति नहीं की है। खैर, मैं मानता हूँ कि प्रगति किसी पर थोपी नहीं जानी चाहिए, जैसे आज देश पर थोपी जा रही है। कोई चाहे तो प्रगति करे और न चाहे तो न करे। अब माता-पिताओं ने अपने बच्चों का नामकरण करने में प्रगति करना स्वीकार नहीं किया है, तो उन्हें दोषी कैसे ठहरा सकते हैं।

पर मैं भी जिद का पक्का हूँ। कायर नहीं हूँ कि कोई बात कहूँ और किसी ने उसे चुनौती दे दी, तो बात पलट दूँ। नेता भी नहीं हूँ कि कह दूँ कि मेरे बयान को ठीक से समझा नहीं गया। दसअसल, मैं तो भूतनाथ बनना चाहता था, पर संवाददाताओं ने नासमझी के कारण भूत लिख दिया। मुश्किल यह है कि देश की विकास दर चाहे जितनी बढ़ गई हो, आज भी भूतनाथ ही बना जा सकता है। बड़े-बड़े दार्शनिकों ने इस समस्या पर विचार किया है। उनके अनुसार, होने और बनने में फर्क है। आप हो सकते हैं, बन नहीं सकते। जैसे, प्रतिभाएँ होती हैं, बनाई नहीं जा सकतीं। इसी तरह, भूत होते हैं, बनते नहीं हैं।

दरअसल, भूत का मामला बहुत ही जटिल है। आजकल कहा जाता है कि यथार्थ बहुत ही संश्लिष्ट और बहु-स्तरीय होता है। अंग्रेजी में ऐसा कहते हैं, तो हिन्दी में भी ऐसा ही कहना होगा। वैसे, आज तक, नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी के सैकड़ों भाषण सुनने के बाद भी मेरी समझ में यह नहीं आ पाया कि इस दुनिया में कौन-सी

चीज संश्लिष्ट और बहु-स्तरीय नहीं है। मैंने तो आदर्श को भी संश्लिष्ट ही पाया है। भूत होने का मामला भी इतना जटिल है कि आज तक इसका कोई फॉर्मूला नहीं जाना जा सका है। जो लोग कहते हैं कि अतृप्त आत्माओं को प्रेत योनि मिलती हैं, वे सरासर झूठ बोलते हैं। अगर इसमें थोड़ी भी सच्चाई होती, तो इस दुनिया में जितने इनसान हैं, उससे कई-कई गुना अधिक संख्या में भूत होते। मेरे जानते, हर आदमी में मृत्यु के क्षण तक कुछ न कुछ अतृप्ति रह जाती है। गांधी जैसा स्थितिप्रज्ञ व्यक्ति भी जिस वक्त मरा, पता नहीं कितनी कामनाएँ उसके मन में उमड़ रही होंगी। विभाजन के बाद का खून-खराबा खत्म नहीं हुआ था। उनका उत्तराधिकारी नेहरू उनसे उलटी राह पर चल रहा था। गांधीवादियों ने अपने हाथों से अपनी नसबन्दी कर ली थी। ऐसी स्थिति में गांधी जैसा व्यक्ति पूर्णकाम कैसे मर सकता था? बकौल अंकल गालिब, मौत से पहले आदमी गम से निजात पाए क्यों।

तो? आप क्या सोचते हैं कि मैं भूत बनने का इरादा छोड़ने जा रहा हूँ? जी नहीं, धुन का पक्का हूँ। भूत होकर ही मानूँगा। इसके लिए कई दिशाओं में सोच रहा हूँ। एक दिशा यह है कि कोई एनजीओ बनाऊँ और किसी विदेशी संस्थान से अनुदान लेकर भूतों के बारे में रिसर्च करने का प्रोजेक्ट हासिल कर लूँ। और कहीं से नहीं तो दीनदयाल शोध संस्थान से पैसा मिल ही जाएगा। दूसरी दिशा यह है कि टीवी चैनलों के प्रोड्यूसरों से दोस्ती गाँठूँ। वे बात-बात में दो-चार भूतों से मिलवा देंगे। एक तीसरा तरीका यह है कि जहाँ-जहाँ बिजली नहीं पहुँची है, वहाँ-वहाँ के दौरे करूँ। सुना है, उन इलाकों में भूतों की अच्छी आबादी है। चौथा तरीका यह है कि मैं अपने को भूत घोषित कर दूँ, जैसे रजनीश अपने को भगवान बताने लगे थे। कृपया ध्यान दें कि चौथे तक आते-आते मेरा स्तर गिर गया। मैं फ्रॉड करने पर उतर आया। कहीं ऐसा तो नहीं कि भूत-वूत का सारा मामला ही फ्रॉड है? आप भी देखिए, मैं भी पता लगाता हूँ। उदय प्रकाश ने कहा है कि मैं इधर से कविता को बचाने में लगा हूँ, तुम भी उधर कोशिश करते रहो।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मैं राष्ट्रपति क्यों न हो सका

राजकिशोर

राष्ट्रपति बनने की चाह मेरे मन में कभी पैदा नहीं हुई। मुझे लगता है कि यह एक रिटायरमेंट के बाद वाला पद है, जिस पर गाजे-बाजे के साथ आरूढ़ होने के बाद कुछ भी करने की जरूरत नहीं पड़ती। परिस्थितियाँ उससे खुद ही सब कुछ करवा लेती हैं। उसमें कोई गुण होना चाहिए तो यह कि देश की दुर्दशा देखते रहने के बाद भी अपने अखंड मौन को साधे रखने का माद्दा हो। उसे यह सुविधा जरूर है कि वह कठिन समय पर कुछ न बोले, बाद में किसी मौके पर कोई चलता हुआ उपदेश झाड़ दे। मैं इसे अवसरवाद मानता हूँ। दूसरे, मैं मरने के पहले रिटायर नहीं होना चाहता। गले का कोई रोग होने के पहले मैं चुप रहना भी पसंद नहीं करूँगा।

लेकिन जब मैंने देखा कि देश के पास राष्ट्रपति पद के लिए कोई अच्छा उम्मीदवार नहीं है, तो मुझे दया आ गई। देश के बिगड़ते हालात पर दया तो मुझे बहुत दिन से आती रही है, तभी से जब यह निश्चित हो गया कि हालात को बदलने की क्षमता मुझमें नहीं है, पर यह तो हद है कि देश चाह रहा हो और राष्ट्रपति पद के लिए कोई बेहतर आदमी न मिले। भाजपा कहती है कि प्रतिभा पाटिल का अतीत स्वच्छ नहीं है। कांग्रेस का मानना है कि शेखावत अंग्रेजी राज में सरकार के जासूस थे। फिर वोट किसे दिया जाए? दुर्लभता की इस स्थिति में मैंने अपनी सेवाएँ देश को अर्पित करने का फैसला किया। मेरा अतीत न कांग्रेसी है, न भाजपाई। मेरे अतीत में भी दाग होंगे, पर वे प्रतिभा पाटील या शेखावत जैसे नहीं हैं। इसलिए मुझे स्वीकार करने में किसी को दुविधा नहीं होनी चाहिए।

सबसे पहले मैं कांग्रेस के दफ्तर में गया। अपना परिचय दिया, सीवी दिखाई। वहाँ मौजूद नेता और कार्यकर्ता हो - हो कर हँसने लगे। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने कहा, 'इसमें हँसने की बात क्या है? निश्चित रूप से मुझमें प्रतिभा पाटील से अधिक योग्यता है। मैंने कानून की पढ़ाई भी की है, सो संविधान की बारीकियों को समझता हूँ। प्रभाष जोशी के स्तर का तो नहीं, फिर भी ठीक-ठाक पत्रकार माना जाता हूँ।' एक नेता ने अपनी हँसी रोक कर कहा, 'सर, हमें राष्ट्रपति पद के लिए आदमी चाहिए। इसमें योग्यता का सवाल कहाँ उठता है?' मुझे लगा कि बात तो ठीक है। योग्यता का सवाल तो प्रधानमंत्री और

कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए भी कभी नहीं उठा। मैं समझ गया, यहाँ बात नहीं बनेगी।

उसके बाद मैं एक बड़े कम्युनिस्ट नेता से मिलने गया। मैंने सोचा कि ये पढ़ने-लिखने वाले लोग हैं। शायद मेरी योग्यता का सही मूल्यांकन कर सकें। कम्युनिस्ट नेता मेरी बात अंत तक ध्यान से सुनते रहे। फिर बोले, 'हमें किसी प्रगतिशील उम्मीदवार की तलाश नहीं है। वे तो हमारी पार्टी में भरे पड़े हैं। मैं खुद क्या किसी से कम प्रगतिशील हूँ? लेकिन हम अभी इस सरकार में भाग लेना नहीं चाहते। यह कांग्रेस की सरकार है। इससे हमारा

क्या नाता?' मैंने याद दिलाया, 'लेकिन राष्ट्रपति तो दलगत राजनीति से बहुत ऊपर होता है। वह सिर्फ देश और संविधान के प्रति प्रतिबद्ध होता है।' इस पर लाल नेता भड़क उठे। बोले, 'लगता है, तुम दूसरों के लेख अपने नाम से छपवाते हो। इतना भी नहीं जानते कि राष्ट्रपति आम तौर पर सत्तारूढ़ दल का प्रतिनिधि होता है। जब सरकार बदल जाती है, तो उसकी वफादारी नई सरकार के प्रति हो जाती है। तुम क्या राष्ट्रपति बनोगे? जाओ, मेरा वक्त बरबाद न करो। हम अभी प्रतिभा पाटील को जितवाने की रणनीति बनाने में व्यस्त हैं।'

मेरी निराशा दुगुनी हो गई। राजनाथ सिंह के पास जाने का मन नहीं हो रहा था। वे मुझे हमेशा हाई स्कूल के किसी कड़क टीचर की तरह लगते हैं। फिर उनके पास अपनी पार्टी का एक छिपा हुआ उम्मीदवार है ही। इसके अलावा उनके पास सांप्रदायिकता विरोधी लेखकों और पत्रकारों की सूची भी होगी। तभी मुझे मायावती में कुछ आशा दिखाई पड़ी। सुनता हूँ कि वे समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चलना चाहती हैं। पत्रकार भी तो समाज का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग है। हो सकता है, उन्हें लगे कि कुछ पढ़ने-लिखने वाले लोगों का समर्थन भी हासिल किया जाए।

आज की मायावती से मिल पाना बहुत कठिन है। वे किसी से फालतू नहीं मिलतीं। दिन-रात अगला प्रधानमंत्री बनने की रणनीति पर काम करती रहती हैं। फिर भी मैंने जुगाड़ भिड़ा लिया। भारत की यही खूबी है। कोई भी काम हो, जुगाड़ भिड़ ही जाता है। मायावती के कमरे में प्रवेश कर मैंने सबसे पहले उन्हें प्रणाम किया (कई लोगों ने बताया था कि सीधे पैरों पर गिर पड़ोगे, तो काम जल्दी सिद्ध होगा, पर मुझे हिम्मत नहीं हुई - मेरी अंतरात्मा कुछ ज्यादा ही जिद्दी है), फिर बहुत संक्षेप में अपनी बात रखी। मायावती का पहला सवाल था, 'कितना पैसा लाए हो?' मैंने किसी मूर्ख की तरह दुहराया, 'पैसा?' मायावती की पेशानी पर बल पड़े, 'खाक पत्रकारिता करते हो? तुम्हें पता नहीं है कि मैं बिना पैसा लिए किसी को टिकट नहीं देती? टिकट तो क्या, टिकट के लिए किसी का आवेदनपत्र भी हाथ में नहीं लेती। फिर यह तो बड़ा मामला है - राष्ट्रपति पद का।' मेरे चेहरे पर सुलगता हुआ सन्नाटा देख कर मायावती ने आवाज में थोड़ी और तुर्शी ला कर कहा, 'इस मामले में तो पैसे से भी बात नहीं बनेगी। तुम स्वतंत्र पत्रकार हो। राष्ट्रपति बन जाने के बाद भी स्वतंत्र रहना चाहोगे। जबकि मुझे जल्दी ही प्रधानमंत्री बनना है। उस समय ऐसा राष्ट्रपति ही मेरे काम आएगा जिसे हवा का रुख भाँप कर चलने की आदत हो। घर जाओ, मेरा वक्त बरबाद मत करो।'

उसी रात मैंने दिल्ली की ट्रेन पकड़ ली। घर आकर पहली प्रतिज्ञा यह की कि अब मैं कभी देश पर दया नहीं करूँगा। जिसे देश पर दया आती है, वह खुद दयनीय बन जाता है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मत्स्य न्याय

राजकिशोर

पन्द्रह अगस्त का दिन था। दिल्ली के एक मुहल्ले में चौराहे पर एक बीस साल का लड़का सोलह साल के एक लड़के को जमीन पर गिरा कर दबोचे हुए था। छोटा लड़का छटपटा रहा था और स्वाधीन होने की कोशिश कर रहा था। बड़ा बार-बार छोटे के दाहिने हाथ की उँगलियों को अपने मुँह में ले जाने की कोशिश कर रहा था। पर सफलता नहीं मिल पा रही थी। काटे जाने के पहले ही छोटा लड़का अपने पंजा खींच लेता था। बड़े ने धीरता से कहा, 'क्यों मुझे परेशान कर रहे हो? मैं तुम्हें खाऊँगा। शान्ति से खाने दो।' छोटा लड़का चीखा, 'क्या बकते हो? तुम भी आदमी हो, मैं भी आदमी हूँ। तुम मुझे नहीं खा सकते। यह न्याय नहीं है।' बड़ा लड़का मुसकराया, 'यह मत्स्य न्याय है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।'

'लेकिन हम मछली नहीं हैं। आदमी हैं। मछलियों के बीच जो न्याय चलता है, वह हम आदमियों में नहीं चल सकता।' छोटे लड़के ने तर्क किया।

बड़े लड़के ने बाएँ हाथ से एक तमाचा जड़ते हुए कहा, 'कम पढ़े-लिखे होने से यही होता है। अपनी हैसियत का एहसास ही नहीं होता। अखबार पढ़ा होता, तो तुम्हें पता होता कि हमारे देश में न्याय नहीं, मत्स्य न्याय चल रहा है। यह बात किसी और ने नहीं, खुद भारत-रत्न अमर्त्य सेन ने संसद के सेंट्रल हॉल में कही और उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कैबिनेट मंत्रियों, सोनिया गांधी आदि सभी पॉवरफुल लोगों ने सुनी। उनमें से एक ने भी अमर्त्य सेन की बात को नहीं काटा। किसी ने यह भी नहीं कहा कि हम संसद के सेंट्रल हाल में यह कसम खाते हैं कि अब हमारे देश में मत्स्य न्याय नहीं चलेगा। समझे बेटा, इसका मतलब यह हुआ कि देश में मत्स्य न्याय है और यही न्याय चलेगा। इस विचार पर मैं रात भर कसमसाता रहा। नींद नहीं आई। फिर मैंने तय किया कि अगर बड़े-बड़े लोगों को मत्स्य न्याय ही न्याय लगता है, तो मैं भी इसी राह पर चलूँगा। उसके बाद मैं जम कर सोया। तभी से मेरा मन भी शांत है।...अब ज्यादा शरारत मत करो। आज मैं सिर्फ शुरुआत करने जा रहा हूँ। सिर्फ तुम्हारा एक पंजा खाऊँगा।'

तब तक वहाँ बीस-पचीस आदमी जमा हो गए थे। कुछ को मजा आ रहा था। कुछ सकते में थे। कुछ चिंतित थे। दोनों लड़कों का विवाद जारी था। मामला सुलझ नहीं रहा था। न वह खा पा रहा था, न वह खाने दे रहा था। तभी वहाँ गश्त लगाता हुआ एक सिपाही आ गया। उसकी कमर में बन्दूक खुँसी हुई थी। उसने सीन को गौर से देखा और सिर हिलाया, नहीं, ये आतंकवादी नहीं हो सकते। इस पर ध्यान देना बेकार है। फिर उसे लगा, ऊपर से पूछ लेना ठीक रहेगा। उसने मोबाइल से किसी को फोन किया। आदेश मिला कि उन्हें तुरन्त पकड़ कर थाने ले आओ।

सिपाही ने बड़े लड़के के बाल खींच कर दोनों को अलग-अलग किया। जेब से रस्सी निकाल कर उनकी कमर में पहनाई और जैसे मेले से खरीद कर बैल ले जाते हैं, वैसे ही रस्सी के अगले सिरे को खींचते हुए उन्हें थाने ले जाने लगा। भीड़ छँट गई।

बड़े लड़के ने छोटे लड़के से स्नेहपूर्वक कहा, 'यह भी मत्स्य न्याय है।'

दोनों को थाने में जमा कर सिपाही आतंकवादियों की खोज में निकल गया। थाने के मुख्य अधिकारी को उनसे बात करने में बहुत मजा आया। उसने पिछले साल ही पत्राचार विश्वविद्यालय से मानव अधिकारों पर डिप्लोमा किया था। उसके बाद उसका थानाध्यक्ष के रूप में प्रमोशन हो गया था। सारी बात सुनने के बाद उसने त्यौरियाँ चढ़ाईं और छोटे लड़के को बाहर जा कर बैठने को कहा। फिर बड़े लड़के से कहा, 'हरामीपन कर रहे थे? आदमी को जिन्दा ही खा जाने का इरादा है? बता, तेरे साथ क्या करूँ? गिन कर दस जूते लगाऊँ? या, तेरा मूत तुझी से पिलवाऊँ?' लड़का कुछ नहीं बोला। थानाध्यक्ष ने तरस खाते हुए कहा, 'अपने बाप से बोल कि पाँच हजार लेकर तुरन्त यहाँ आ जाए। नहीं तो यहीं बँधा पड़ा रहेगा।'

लड़का सिद्धांत का पक्का था। उसने आजाद होने के लिए रिश्वत नहीं दी। उसे हिरासत में डाल दिया गया। छोटे को छोड़ दिया गया।

सोमवार को बड़े लड़के को अदालत में पेश किया गया। मजिस्ट्रेट के सामने इस तरह का पहला केस था। सारा प्रसंग सुनने के बाद उसने आदेश दिया, 'अदालत की निगाह में यह एक अलग किस्म का केस है। अभियुक्त दिल का बुरा नहीं है। वह सिद्धान्तवादी है। पर वह अमर्त्य सेन के भाषण की रिपोर्ट पढ़ कर गुमराह हो गया है। सम्भव है कि भारत में सभी स्तरों पर मत्स्य न्याय चल रहा हो, पर सेन साहब को यह बात इस तरह से खुलेआम नहीं कहनी चाहिए थी। बुरी बातों के प्रचार से बुराई फैलती है। लोगों पर गलत असर पड़ता है। अभियुक्त को मुक्त किया जाता है और स्थानीय पुलिस को निर्देश दिया जाता है कि कम से कम एक साल तक इस लड़के की गतिविधियों पर निगाह रखी जाए।'

थानाध्यक्ष बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने सहयोगी से कहा, 'बेटा हुआ करे सिद्धान्तवादी। पैसा इसका बाप देगा। नहीं तो हर दूसरे दिन पूछताछ के लिए इसे थाने बुलाएँगे और घण्टों बिठाए रखेंगे।'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मनमोहन सिंह से बातचीत

राजकिशोर

डॉ. मनमोहन सिंह मेरे प्रिय नेता रहे हैं। इसका मूल कारण यह है कि जहाँ दूसरे विद्वान और बुद्धिजीवी विश्वविद्यालयों और सेमिनारों में व्यस्त रहते हैं, मनमोहन सिंह ने, वह भी इस उम्र में, देश की जिम्मेदारी सँभाली है। राजनेता तो प्रायः सभी बुद्धिजीवी कहलाने के लिए लालायित रहते हैं, जिसके कारण उन्हें शक की निगाह से भी देखा जाता है। यह राष्ट्रीय राहत की बात है कि मनमोहन ने उलटे रास्ते पर चलने का फैसला किया, तो किसी की भौंहों पर बल नहीं पड़ा। मैं तो सिफारिश करूँगा कि अमर्त्य सेन को अमेरिका का राष्ट्रपति या ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बना दिया जाए, ताकि इस बुरे समय में इन देशों की अर्थव्यवस्था में भी सुधार आ सके। लेकिन इन अभागे देशों को सोनिया गांधी जैसा नेतृत्व कहाँ हासिल है। सो, डॉ. मनमोहन सिंह से इंटरव्यू का मौका मिला, तो मैं फूला न समाया। वैसे तो यह बातचीत पूरी तरह व्यक्तिगत थी, पर सूचना का अधिकार कानून के तहत इसे न छिपाए रखने के लिए मैं विवश हूँ।

मेरा पहला सवाल यह था कि मनमोहन सिंह जी, आपने प्रधानमंत्री पद क्यों स्वीकार किया? वे मुस्कराए : 'मजबूरी थी। अगर मैंने इनकार कर दिया होता, तो क्या पता मुझे कोई और पद मिलता या नहीं।'

मैंने आश्वस्त करना चाहा, वित्त मंत्री का पद तो आपके लिए सुरक्षित था ही। उससे आपको कौन रोक सकता था। उनका जवाब था, 'मेरा पूरा कॅरियर गवाह

है...मैंने जो पद त्याग दिया, बाद में उससे ऊँची जगह पर ही गया। वैसे, किसी भी नौकरशाह से पूछ लीजिए, वह यही कहेगा कि प्रमोशन मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

मनमोहन सिंह नरसिंह राव के साथ काम कर चुके हैं और अब सोनिया गांधी उनकी नेता हैं। मैंने जानना चाहा, आपको कौन नेता बड़ा लगता है - नरसिंह राव या सोनिया गांधी? वे जरा भी विचलित नहीं हुए। कहा, दोनों की अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। मेरे लिए तो एक कमल था, दूसरा गुलाब है।'

अब मैंने जानना चाहा कि सोनिया गांधी के नेतृत्व में काम करना उन्हें कैसा लग रहा है। मनमोहन सिंह स्पष्टवादी व्यक्ति हैं। बोले, 'बहुत ही अच्छा। वैसे, नरसिंह राव जी के साथ भी काम करना मुझे अच्छा ही लगा था। आपको एक राज की बात बताता हूँ। दरअसल, मुझे किसी के साथ भी काम करने में दिक्कत नहीं आती। जैसे मेरा अर्थशास्त्र फ्री मार्केट का है, वैसे ही मेरा व्यक्तित्व फ्री साइज का है - हर कहीं फिट आ जाता है।'

यह पूछने पर कि सोनिया गांधी से क्या आपके मतभेद नहीं होते, उन्होंने बताया कि 'सवाल ही नहीं उठता। जब मुझे लगता है कि किसी मामले में मेरा मत अलग है, तो मैं तुरन्त अपने को सुधार लेता हूँ। मुझमें किसी प्रकार की कट्टरता नहीं है। मैं शुरू से ही मानता हूँ कि मत मेरे लिए है, मैं मत के लिए नहीं हूँ।' मेरा अगला सवाल था, क्या सोनिया जी भी जरूरत पड़ने पर अपना मत बदल लेती हैं? मनमोहन सिंह ने उत्तर दिया, 'उन्हें ऐसा करने की जरूरत ही क्या है? वे पार्टी और देश की सर्वोच्च नेता हैं, उनका मत ही हम सभी का मत है।'

इस आरोप का खंडन करते हुए कि यह तो साफ-साफ व्यक्ति-पूजा है, मनमोहन सिंह ने स्पष्ट किया, 'सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि सोनिया जी व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। कांग्रेस में व्यक्ति-पूजा के लिए कभी स्थान नहीं रहा। हम व्यक्तियों के बजाय विचारों पर ज्यादा जोर देते हैं। श्रीमती सोनिया गांधी भी व्यक्ति नहीं, विचार हैं, जैसे एक जमाने में खादी वस्तु नहीं, विचार थी।'

यह पूछने के बजाय कि राजनीति में आकर आपको कैसा लगता है, ताकि मैं कहीं टीवी एंकर जैसा न लगूँ, मैंने जानना चाहा कि राजनीति में आना ही था, तो क्या वे बहुत देर से नहीं आए? मनमोहन सिंह ने फिर खरेपन के साथ जवाब दिया - 'आ तो मैं बहुत पहले ही जाता, पर मुझे लगता था वहाँ मुझसे भी ज्यादा काबिल लोग हैं, उनके सामने मैं कहाँ टिक पाऊँगा।' और अब? 'अब मुझे लगता है कि राजनीति में काबिलियत की एक ही पहचान है कि आप सत्ता में कितनी उँचाई तक जा सकते हैं। इस दृष्टि से मैंने अपनी काबिलियत थोड़े-से समय में ही साबित कर दी है।' लेकिन अगले चुनाव में कांग्रेस कहीं हार गई तो? मनमोहन सिंह अपनी परिचित शैली में मुसकराए, 'मेरे लिए जॉब्स की कोई कमी नहीं है। यहाँ से हटा तो विश्व बैंक में चला जाऊँगा। सुना है, वे अभी से मुझे विश्व बैंक का अध्यक्ष बनाने पर विचार कर रहे हैं।' यानी आपके विरोधियों का यह आरोप आधारहीन नहीं है कि आपकी सरकार विश्व बैंक की नीतियों पर चल रही है? 'पूरी तरह आधारहीन है। वाशिंगटन में तो अफवाह है कि विश्व बैंक हमारी नीतियों पर चल रहा है।'

अमेरिकी राष्ट्रपति की हाल की भारत यात्रा के सन्दर्भ में मैंने जानना चाहा कि इस आरोप पर आपका क्या कहना है कि आपकी सरकार अमेरिका की ओर झुक रही है। इस पर हमेशा शांत रहने वाले प्रधानमंत्री थोड़ा तमतमा गए, बोले, 'सच तो यह है कि अमेरिका ही भारत की ओर झुक रहा है, हम तो उसके लिए सिर्फ जगह बना रहे हैं, जैसे एक महाशक्ति दूसरी महाशक्ति के लिए जगह बनाती है। क्या एक समय हमने सोवियत संघ के लिए जगह नहीं बनाई थी? यह हमारी मजबूती है कि हम अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए किसी के लिए भी जगह बना सकते हैं। हमारी विदेश नीति में किसी तरह की जड़ता नहीं है। हम हवा का रुख देखते हैं और उसके अनुसार अपनी नीतियाँ बनाते हैं। यह अवसरवाद नहीं, अवसर के अनुसार आचरण है। ऐसी विचारगत स्वतंत्रता कितने लोकतांत्रिक देश दिखा सकते हैं?'

अब तक मैं मानसिक रूप से थक चुका था। इसलिए मैंने सोचा कि अंतिम प्रश्न पूछने का क्षण आ गया है। मैंने सवाल किया, क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि आपने राजनीति में आकर भूल की है? इसके पहले आप कभी इतने विवादास्पद नहीं रहे। अचानक आप एक के बाद दूसरे विवाद के केन्द्र में आते जा रहे हैं। आपके सहयोगी वामपंथी ही आपके खिलाफ होते जा रहे हैं। क्या आपको इस कीचड़ भरी राजनीति में आकर कभी अफसोस नहीं होता? मनमोहन सिंह दार्शनिक उदासीनता के साथ बोले, 'राजनीति में आकर हर ईमानदार आदमी को यही लगता है कि उससे भूल हो गई है। लेकिन मैंने अपने जीवन में हर चुनौती का डटकर सामना किया है।

अगर मैंने अधबीच में राजनीति छोड़ दी, तो मैं और भी बड़ी भूल करूँगा। मैं ईमानदार हो सकता हूँ, पर कायर नहीं हूँ।'

वापस आते समय मैं सोच रहा था कि हमारे बुद्धिजीवी भी क्या चीज हैं! वे जब राजनीति में आते हैं, तो राजनेता भी उनके सामने पानी भरने लगते हैं। क्या इसलिए राजनेता बुद्धिजीवियों से थोड़ा दूर रहना ही पसंद करते हैं?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मेरे आम

राजकिशोर

आम के बारे में लतीफे बहुत-से होंगे, मैं एक ही जानता हूँ। कहते हैं, एक सज्जन के पास एक आदमी आया और बोला, मियाँ जी, आम आए हैं। मियाँ जी ने जवाब दिया, तो मुझे क्या? आदमी ने बताया, आपके लिए आए हैं। मियाँ जी ने पहले जैसी ही तुर्शी के साथ जवाब दिया, तो तुझे क्या?

मुझे पूरा यकीन है कि यह किस्सा आम का महत्त्व समझाने के लिए नहीं गढ़ा गया होगा। इसमें आम की नहीं, नैतिकता की खुशबू (कुछ लोग कहेंगे, बदबू) है। सीख की बात यह है कि जो चीज तुम्हारी नहीं है, उससे कोई मतलब मत रखो। संस्कृत की एक उक्ति में बताया गया है कि दूसरे के धन को तृण की तरह, दूसरे की स्त्री को माँ की तरह समझो आदि-आदि। अच्छा हुआ कि मानवता ने इस सीख के कम से कम एक हिस्से को गंभीरता से नहीं लिया। आज का अर्थशास्त्री कहेगा, यदि नैतिक शिक्षाओं पर अमल किया जाता, तो सभ्यता का विकास ही नहीं होता। दूसरे के धन को तृणवत समझने की बात मान लेने पर पूँजीवाद चुल्लू भर पानी में डूब नहीं मरता? साम्यवादी विद्वान तक मानते हैं कि दास प्रथा ने सभ्यता के विकास में अद्वितीय योगदान किया है। अगर दास न होते, तो उन शुरुआती दिनों में अतिरिक्त मूल्य कहाँ से पैदा होता और अतिरिक्त मूल्य पैदा नहीं होता, तो सभ्यता और संस्कृति का विकास कैसे होता? हम पूर्व-सामंती युग में ही टापते रह जाते। इसी तरह, पूँजीवादी व्यवस्था अगर श्रमिकों के अभूतपूर्व शोषण से भारी अतिरिक्त मूल्य नहीं पैदा करती, तो इतनी संपन्नता कहाँ से आती और टेक्नोलॉजी के विकास के लिए निवेश कैसे हो पाता? भूमंडलीकरण तो पूरा का पूरा ही पराए धन को हस्तगत करने की कला पर टिका हुआ है। जहाँ तक पर-दारा का सवाल है, उसकी ओर ललचाई निगाहों से देखने में सभ्यता के विकास में कितना योगदान हुआ है, इस पर कोई अच्छी पुस्तक देखने में नहीं आई है। विद्वानों से निवेदन है कि वे इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा करें। वैसे, अनेक जानकार लोगों का कहना है कि यह अकादमिक शोध का विषय नहीं, प्रयोग और अनुभव का मामला है। जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ। बताते हैं कि आधुनिक साहित्य में यह 'गहरे पानी पैठ' का मामला नहीं रहा। यहाँ समुद्र तल के बजाय समुद्र तट पर ज्यादा मोती मिलते हैं।

आप सोच रहे होंगे, मैं पुराने विद्वानों की तरह विषय पर आने में ज्यादा समय ले रहा हूँ। ऐसी बात है भी और नहीं भी है। हर भारतीय मुलाकात के दौरान या फोन पर आधे से ज्यादा समय इधर-उधर की बातें करने में खो जाता है। दर्जनों बार 'और क्या हाल है?' पूछने के बाद ही वह विषय आता है कि कहाँ सिफारिश भिड़ानी है या कहाँ कौन-सा काम करवाना है। मैं इस टेकनीक का प्रयोग लिखने में करता हूँ, क्योंकि तुरन्त विषय पर आ जाने से बहुत जल्द खलास हो जाने का डर रहता है। भला हो उन संपादकों का जो लेखों की शब्द सीमा घटाते-घटाते आठ

सौ पर ले आए हैं। सो अब पृष्ठभूमि बनाने में मेहनत नहीं करनी पड़ती। लेकिन निवेदन है कि मैं यह बताने के लिए शुरू से ही पृष्ठभूमि बना रहा हूँ कि मेरे आम मेरे नहीं रहे, क्योंकि अब उनका निर्यात बढ़ने लगा है। अच्छे आम भले ही भारत में पैदा होते रहें, पर वे अमेरिकी रस मीमांसा का विषय बन जाएँगे और भारत सरकार खुश होती रहेगी कि चलो, आम भी हमारा विदेशी मुद्रा कोष बढ़ाने में सहयोग कर रहे हैं। मैं चीख-चीख कर कहना चाहता हूँ कि यह भारतीय आम का अपमान है, भारत की रस परम्परा का अपमान है और भारत के आम आदमी का अपमान है। लोकतंत्र खास को भी आम बनाने की कला का नाम है, यहाँ तो आम को भी खास बनाया जा रहा है।

आम भारत में पैदा होता है, तो उस पर सबसे पहला हक हम भारतीयों का होना चाहिए। अभी तक किसी ने यह दावा नहीं किया है कि भारत में आम का उत्पादन इतना अधिक हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति जी भर कर, मसलन आम फलने के मौसम में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन कम से कम एक, आम खाता रहे, तब भी हमारे पास निर्यात करने के लिए आम की कमी नहीं रहेगी। भारतीय ज्यादा हैं, आम कम। अलफांसो जैसे आम तो, जिन पर कलावादियों को कविताएँ लिखनी चाहिए और ललित निबन्धकारों को निबन्ध, और भी कम हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता का ही नहीं, मानवता का भी तकाजा है कि आधे से ज्यादा भारतीयों को आमों की उचित संख्या से वंचित कर विदेशी मुद्रा कमाने के लिए उसका निर्यात करना अपराध है। अगर अस्पृश्यता मानवता के प्रति अपराध है, अगर युद्ध मानवता के प्रति अपराध है, तो पैसे के लालच में आम का देशांतरण भी मानवता के प्रति कोई मामूली अपराध नहीं है। ईश्वर ने कितने लगन से आम जैसा रसीला और खुशबूदार फल पैदा किया होगा और उसी आम को हमारे व्यापारी पता नहीं कहाँ-कहाँ ले जाकर बेच रहे हैं। यह तो कुछ वैसी ही बात हुई कि हम अपनी सुष्मिता सेनों और ऐश्वर्या रायों को अमेरिका और यूरोप की मंडियों में नीलाम कर दें। अगर मानव व्यापार यानी दास प्रथा फिर से खोल दी जाए, तो ऐसा होने में हफ्ता भर भी नहीं लगेगा। मेरे जैसे अनेक लोगों की मान्यता है कि फलों की दुनिया में आम का स्थान वही है, जो सुन्दरियों के समारोह में सुष्मिता सेन और ऐश्वर्या राय का है।

अभी तक हम राम के लिए लड़ते आ रहे हैं। सुनते हैं कि उत्तर प्रदेश के विधान सभा चुनावों में इस बार 'मेरे राम' कोई मुद्दा नहीं बन पाए। इसके लिए थैंक्यू। लेकिन यह अगर खुश होने का मामला है, तो धिक्कार की बात यह है कि 'मेरे आम' को चुनाव का मुद्दा नहीं बनाया गया। आम के अर्थशास्त्र को भारत की जनता के सामने ठीक से रखा जाए, तो बहुत आसानी से उसे समझाया जा सकता है कि हमारे विदेश व्यापार में कहाँ-कहाँ विसंगतियाँ हैं और भूमण्डलीकरण हमारे लिए क्यों बुरा है। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि जो मुझे 'मेरे आम' से वंचित रखता है, वह मुझसे 'मेरे राम' को भी छीन रहा है। राम इतने कृपालु न होते, तो आम कहाँ से आते? बताइए मनमोहन सिंह जी, बताइए मोंटेक सिंह अहलूवालिया जी! अगर आम की राष्ट्रीय चोरी के खिलाफ मुझे थाने में एफआईआर लिखानी पड़े, तो सबसे पहले मैं आप दोनों को ही नामजद करूँगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मेरा प्रिय प्रधानमंत्री

राजकिशोर

आज मैं वह काम करने जा रहा हूँ, जिसे करने की हिम्मत बड़े-बड़े नहीं कर पाते। बड़े-बड़ों में मेरी गिनती कोई नहीं करता। इतना इंतजार करने के बाद अब तो मैंने भी अपनी गिनती बड़े-बड़ों में करना छोड़ दिया है, फिर भी मैं यह साहसिक काम करने जा रहा हूँ। दरअसल, साहसिक काम हम जैसे लोग ही कर सकते हैं, क्योंकि बड़े-बड़ों में आजकल वही आते हैं, जो कोई साहसिक काम नहीं कर सकते। दुस्साहसिक कामों की बात अलग है। यह तो कोई भी कर सकता है और मुझे यह बताते हुए हर्ष होता है कि जिसे मैं अपना प्रिय प्रधानमंत्री घोषित करने जा रहा हूँ, वह एक दुस्साहसिक व्यक्ति है। आप समझ ही गए होंगे, मेरा संकेत डॉ. मनमोहन सिंह की ओर है। उनके दुस्साहसी होने की बात आप भी स्वीकार कर लेंगे, जब मैं यह कहूँगा कि जब सोनिया गांधी ने उन्हें देश का प्रधानमंत्री बनाने का फैसला किया, तो उन्होंने इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया, जैसे कोई भी लेखक नोबेल पुरस्कार को सहज ही स्वीकार कर लेता है और यह नहीं कहता कि मेरी क्या बिसात, मैं इतना बड़ा लेखक नहीं हूँ कि मुझे यह उच्चतम पुरस्कार दिया जाए - इससे बेहतर होता कि यह अमुक जी को या तमुक जी को दिया जाता। मनमोहन जी ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि वे भारत के प्रधानमंत्री बन सकते हैं, लेकिन जब यह पका हुआ आम उनके झोले में आ गिरा, तो वे अपनी जेब से चाकू निकाल कर इसे छीलने-काटने-खाने लगे। मेरे खयाल से, कोई और विद्वान होता, तो कम से कम शिष्टाचारवश ही यह निवेदन करता कि मुझे काँटों में क्यों घसीट रही हैं, मैं इतनी बड़ी जिम्मेदारी का पद सँभालने लायक नहीं हूँ। मैं तो कोई यूनिवर्सिटी भी ठीक से नहीं चला सकता - इतना बड़ा और इतनी समस्याओं से ग्रस्त देश कैसे चला सकूँगा। लेकिन क्या पता! आजकल के विद्वानों के बारे में मैं ज्यादा जानता नहीं हूँ। हो सकता है, वे मनमोहन सिंह से ईर्ष्या ही कर रहे हों कि अगर मैडम को किसी विद्वान की ही जरूरत थी, तो मैं क्या मर गया था!

मनमोहन सिंह ही मेरे प्रिय प्रधानमंत्री हैं, इसका एक कारण यह है कि वे वर्तमान प्रधानमंत्री हैं। शराब पुरानी अच्छी मानी जाती है और नेता वह जो सत्ता में है। जवाहरलाल अच्छे प्रधानमंत्री थे या मोरारजी, इस बहस में क्या रखा है। मरे हुए लोगों के साथ हम न रात काट सकते हैं, न दिन बिता सकते हैं। उनके साथ सबसे तार्किक सलूक यह है कि उन्हें मरा हुआ मान लिया जाए, नहीं तो वे जिंदा आदमियों को मार डालेंगे। जिंदा आदमी ही जिंदा आदमी के काम आ सकता है। अगर अटलबिहारी वाजपेयी आज प्रधानमंत्री होते, तो मैं कहता कि वाजपेयी ही मेरे प्रिय प्रधानमंत्री हैं।

प्रधानमंत्री के रूप में मनमोहन सिंह मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं, इसका दूसरा कारण यह है कि वे प्रधानमंत्री हैं भी और नहीं भी हैं। अगर वे सफल प्रधानमंत्री साबित होते हैं - हालांकि आज तक तो कोई ऐसा हुआ नहीं, तो उन्हें इसका

श्रेय जरूर मिलेगा। टाइम्स ऑफ इंडिया जैसे अखबारों द्वारा कहा जाएगा कि देखा, एक गैर-राजनीतिक व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनाना देश के लिए कितना हितकर रहा। फिर यह बहस छेड़ दी जाएगी कि क्यों न प्रत्येक राज्य में मुख्यमंत्री के पद पर भी किसी गैर-राजनीतिक व्यक्ति को ही बैठाया जाए और पाठकों से अनुरोध किया जाएगा कि वे एसएमएस से अपनी राय भेजें। अगर वे एक विफल प्रधानमंत्री साबित होते हैं, जिसकी संभावना रोज बढ़ती जा रही है, तो विख्यात पत्रकार इसका स्पष्टीकरण यों देंगे कि जो काम राजनीति का है, वह राजनेता ही कर सकते हैं - हम तो शुरू से ही यह मान कर चल रहे थे कि मैडम ने एक गैर-राजनीतिक व्यक्ति को प्रधानमंत्री बना कर हिमालयन ब्लंडर किया है। इस तरह मनमोहन सिंह एक ऐसे जुए का नाम है, जिसमें चित हो या पट, वही जीतेंगे। नागार्जुन की तरह वे कभी भी कह सकते हैं कि मैं एक गलत मुहल्ले में चला गया था।

मेरे पास कारण ज्यादा नहीं हैं - वैसे किसी को प्रिय मानने के लिए एक ही कारण काफी होता है, इसलिए मैं जल्दी से तीसरे और अंतिम कारण पर आता हूँ। वह यह है कि वे दुर्योधनों के बीच युधिष्ठिर की तरह रहते हैं। सभी लोग कहते हैं कि उनकी ईमानदारी संदेह से परे हैं। मैं तो शुरू से ही बहुत के साथ रहा हूँ। मेरा एक असमी दोस्त कहता है, 'मनमोहन सिंह ने दो बार अपने को असम का स्थायी निवासी बता कर राज्य सभा का चुनाव लड़ा, जो सरासर झूठ था, इसलिए मैं तो उन्हें ईमानदार नहीं मानता।' क्षमा करें, मैं अपने इस दोस्त से कभी सहमत नहीं हो सका, क्योंकि इस तरह की कसौटियों पर विद्वानों को कसना उनके साथ न्याय नहीं है। अगर किसी विद्वान को एसी सेकंड का किराया मिलता है और वह स्लीपर क्लास में 'सफर' (श्लेष अनिच्छित) करता है, तो क्या यह उसकी बेईमानी मानी जाएगी? मनमोहन सिंह मेरे प्रिय प्रधानमंत्री इसलिए हैं कि वे जल में कमल की तरह रहते हैं। कैबिनेट की बैठक में चारों ओर साँप फुँफकार रहे हों, तब भी वे अपनी कोमल, मधुर मुसकान को कायम रख सकते हैं और गंभीर बातें कर सकते हैं। कोई कह सकता है कि विद्वानों में इतना संयम नहीं होता, तो वे विद्वान कैसे कहलाते! इसके जवाब में मैं खींस निपोर दूँगा और कहूँगा, आप ठीक कहते हैं, सर।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मेरी दिल्ली मेरी शर्म

राजकिशोर

दिल्ली में रहने वाला कोई भी हिन्दी लेखक दिल्ली से खुश नहीं रहा। मेरी पढ़ाई कम है, इसलिए इस समय तीन ही लेखक याद आ रहे हैं। पहले हैं, रामधारी सिंह दिनकर। दिल्ली ने उन्हें मंत्री पद छोड़कर सब कुछ दिया। अपने संस्मरणों में उन्होंने कई जगह अफसोस जताया है कि वे किस तरह शिक्षा मंत्री बनते-बनते रह गए। मेरे अपने अनुमान से, उनके मंत्री न बन पाने का जो भी कारण रहा हो, शिक्षा मंत्री न बन पाने का यह कारण जरूर रहा होगा कि उन दिनों किसी हिन्दी भाषी को यह पद नहीं दिया जाता था। पता नहीं हिन्दीवालों में क्या बुराई थी जो वे जवाहरलाल नेहरू को शायद धोतीप्रसाद लगते थे, या गैर-हिन्दी भाषियों में क्या खूबी थी, जिसके कारण उनसे भारत के पहले प्रधानमंत्री का लगाव कुछ ज्यादा ही था। बहरहाल, दिल्ली से दिनकर को घोर सैद्धांतिक असंतोष था। उनकी एक बहुत अच्छी कविता है- भारत का यह रेशमी नगर। इसमें उन्होंने दिल्ली के रेशमी चरित्र पर बहुविधि प्रकाश डाला है - दिल्ली फूलों में बसी, ओस-कण से भीगी/दिल्ली सुहाग है, सुषमा है, रंगीनी है/प्रेमिका-कंठ में पड़ी मालती की माला/दिल्ली सपनों की सेज मधुर रस-भीनी है। दिल्ली की यह सुषमा दिनकर को आक्रांत करती थी। उन्हें लगता था कि 'कुछ नई आँधियाँ' इस जादू को तोड़ कर रहेंगी। उनकी भविष्यवाणी थी - ऐसा टूटेगा मोह, एक दिन के भीतर/इस राग-रंग की पूरी बर्बादी होगी/जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा/तब तक दिल्ली के भी तन पर खादी होगी।

ऐसा लगता है कि तीसरी दुनिया के गरीब देशों का राशिफल कवि और दार्शनिक नहीं लिखते। सो श्रीकांत वर्मा तक आते-आते दिल्ली का चरित्र 'मगध' जैसा हो गया। श्रीकांत जी ने अपने मगध का चित्रण एक ऐसे राज्य के रूप में किया है, जहाँ वैभव के साथ कुचक्र है तो सत्ता के साथ विचारों की कमी। इसे उस दिल्ली का पतन काल कहा जा सकता है, जिससे आकर्षित होकर श्रीकांत वर्मा मध्य प्रदेश के एक छोटे-से शहर से यहाँ आए थे। दिल्ली ने उन्हें भी खूब दिया। जितना दिया, उससे कहीं ज्यादा उन्होंने वसूल कर लिया। आखिर कांग्रेस में थे वे। जब दिल्ली कवि से नाराज हो गई, तो कवि ने बगावत कर दी और अंतिम दिनों की अपनी कविताओं में दिल्ली का सारा हाल खोल कर लिख दिया।

रघुवीर सहाय में दिनकर की उदात्तता और श्रीकांत की तुर्शी, दोनों की झाँकी दिखाई पड़ती है। वे दिल्ली में रहते हुए 'धर्मयुग' में 'दिल्ली मेरा परदेस' कॉलम लिखते थे। इस स्तम्भ में छपी सामग्री इसी नाम की एक किताब में संकलित है। इस शीर्षक से ही आप समझ सकते हैं कि एक कवि के रूप में दिल्ली को सहाय जी ने सबसे सटीक ढंग से समझा था। दिल्ली वाकई सभी का परदेस है। यहाँ की ज्यादातर आबादी उनकी है, जो बाहर से आए हैं। दिल्ली पर कभी मुसलमानों का प्रभुत्व रहा होगा। वह खत्म हो गया। फिर पंजाबी हावी हुए। अब वे भी

अल्पसंख्यक हैं। लेकिन दिल्ली को रघुवीर सहाय ने अपना परदेस बताया, तो इसका एक बृहत्तर संदर्भ भी थे। इस मायने में दिल्ली सभी संवेदनशील लोगों के लिए परदेश है। लेकिन परदेश होते हुए भी यह इतनी मोहक है कि कोई अपने देस नहीं जाना चाहता। बड़े से बड़े कलावादी और बड़े से बड़ा प्रगतिशील, सभी यहीं से देश को दिशा दे रहे हैं। कवियों, लेखकों और पत्रकारों की दिल्ली-अभिमुखता इतनी बढ़ गई है कि कुछ दिनों के बाद यह कहावत आम हो जाएगी - जो जा न सका दिल्ली, उसकी उड़ेगी खिल्ली।

दिनकर के शब्दों में मैं भी कह सकता हूँ कि 'मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूँ।' लेकिन मैं यहाँ यह नहीं लिखना चाहता कि दिल्ली से मुझे क्या मिला और क्या नहीं मिला। बताना मैं यह चाहता हूँ कि दिल्ली आजकल 'मेरे लिए' बड़ी तेजी से सँवर रही है। जिधर से भी गुजरो, एक सुन्दर-सा बोर्ड बताता है, इतनी हरियाली और कहाँ है मेरी दिल्ली के सिवा, मेरी दिल्ली सँवर रही है, दिल्ली मेट्रो मेरी शान, कितनी खुशहाल है मेरी दिल्ली, मेरी दिल्ली कितनी साफ-सुथरी है आदि-आदि। यह सिर्फ विज्ञापन नहीं है, दिल्ली को वाकई सजाया-सँवारा जा रहा है। पता नहीं कितने फ्लाईओवर बन गए हैं तथा कितने और बनेंगे। दिल्ली मेट्रो का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है। हवाई अड्डे को नया रूप मिलेगा। रेलवे स्टेशनों का पुनर्निर्माण किया जा रहा है। सड़कों को चौड़ा और सुचिक्कन बनाया जा रहा है। एयरकंडीशंड बसें चलने लग गई हैं। सभी जानते हैं, इस सबकी वजह क्या है। सन 2010 में दिल्ली में राष्ट्रमंडलीय खेल जो होने वाले हैं! किसी उपन्यास में पढ़ा था कि जिस दिन नवाब साहब आनेवाले होते हैं, उस दिन लखनऊ की सबसे खूबसूरत तवायफ कितनी बेताबी से अपना शृंगार करने लगती है और उसके रईसखाने को सजाने-सँवारने में कितनी जद्दो-जहद की जाती है।

दिल्ली में कभी तवायफें अच्छी संख्या में रहती होंगी। दिल्ली ने तय किया है कि अब वह खुद तवायफ बनेगी। उसके इस सजने-सँवरने में कोई सौंदर्य चेतना नहीं है। शील के बिना सौंदर्य कहाँ! जब भी मैं दिल्ली में कोई नई चमचमाती चीज देखता हूँ, मेरी आँखें शर्म से झुक जाती हैं। मुझे लगता है, करोड़ों पुरुषों और स्त्रियों को आधे अनाज और आधे कपड़ों में रख कर यह मुटल्ली अब कुछ ज्यादा ही इतराने की तैयारी में है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

महँगाई देवी

राजकिशोर

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने डिनर अभी समाप्त ही किया था कि चोबदार ने सलाम ठोक कर सूचना दी - सर, गुप्तचर विभाग के प्रमुख आपसे मिलना चाहते हैं। कहते हैं, बहुत जरूरी काम है। प्रधानमंत्री के शांत चेहरे पर तनाव की एक हलकी-सी झाँई आई। उनकी भंगिमा से ऐसा लगा कि वे कुछ और कहने वाले थे, पर झख मार कर उन्हें यह बोलना पड़ा - फोन पर बात कराओ।

वायरलेस फोन के दूसरे सिरे पर गुप्तचर विभाग का प्रधान था। प्रधानमंत्री ने पूछा - क्या वामपंथियों ने अपना समर्थन वापस ले लिया है?

उत्तर आया - नो, सर।

- क्या पाकिस्तान ने हमला कर दिया है?

- जी नहीं, यह भी नहीं।

- क्या मैडम के यहाँ किसी ने मेरी शिकायत की है?

- नो, सर।

- फिर क्यों मुझे परेशान करने चले आए? कल सुबह दफ्तर में मिलना।

- सर, एक बहुत जरूरी खबर थी...

- मैंने कहा न, कल मिलना।

जिस आदमी को यह नहीं मालूम कि जरूरी खबर क्या है और गैरजरूरी खबर क्या है, वह प्रधानमंत्री कार्यालय में मुलाकातियों की भीड़ में लाइन लगाए बैठा था। सोलहवें नंबर पर उसकी बुलाहट हुई। प्रधानमंत्री ने मानो कुछ अवमानना भाव से पूछा - बताइए, कौन-सी जरूरी खबर है कि आप रात के समय हमारे घर पहुँच गए? गुप्तचर ने अपने लम्बे सिर को थोड़ा झुका कर कहा - सर, देश के कुछ हिस्सों में महँगाई देवी प्रकट हुई हैं। लोग डर के मारे काँप रहे हैं और गाने-बजाने के साथ उनकी पूजा कर रहे हैं ताकि उनका कोप शांत हो।

प्रधानमंत्री - महँगाई देवी? मैं पहली बार इनका नाम सुन रहा हूँ।

गुप्तचर - सर, ये कई बार प्रकट हो चुकी हैं। जब भी दर्शन देती हैं, सरकार के पलटने का खतरा उपस्थित हो जाता है। चूँकि यह आपके लिए सबसे बड़ा खतरा है, इसलिए मैंने सोचा, आपको तुरन्त खबर करनी चाहिए। मेरे पास पक्की सूचना है कि महँगाई देवी जहाँ-जहाँ भी प्रकट हुई हैं, उनकी आकृति रोज-रोज बढ़ रही है। आशंका है कि वे कुछ और इलाकों में भी प्रकट होंगी। जनता के मन में डर फैल गया है।

प्रधानमंत्री - लेकिन इनके प्रकट होने से जनता कैसे प्रभावित होती है? भारत तो देवी-देवताओं का देश ही है। एक और देवी सही!

गुप्तचर- आपकी बात सही है। जब तक संतोषी माता की महिमा थी, लोग अपने जीवन से संतुष्ट रहते थे। वे ज्यादा की चाह नहीं करते थे। पर महँगाई देवी काली की तरह कोप की देवी हैं। ये जहाँ प्रकट होती हैं, चीजों के भाव बढ़ने लगते हैं। चावल, गेहूँ, आलू, प्याज, दाल, चीनी सब कुछ महँगा होने लगता है। लोगों में सरकार-विरोधी भावनाएँ पनपने लगती हैं। प्रधानमंत्री ने दुअन्नी आकार की अपनी मुस्कान छोड़ी - थैंक यू। ऐंड नोट इट कि मैं माइथोलॉजी से नहीं डरता। जाओ, पता लगाओ कि यह अफवाह भाजपा के लोग तो नहीं फैला रहे हैं? वे देवी-देवताओं के चक्कर में बहुत रहते हैं।

गुप्तचर विभाग का प्रमुख एक बार फिर निराश हुआ। वह एक अनुभवी और खुर्राट अफसर था। उसने कई सरकारों को आते-जाते देखा था। वह बहुत ही पका हुआ सरकारी कारिंदा था। इसलिए उसे इस बात से कोई मतलब नहीं रहता था कि कोई सरकार रहती है या जाती है। लेकिन जब तक कोई सरकार बनी रहती थीं, वह बड़ी निष्ठा के साथ उसका साथ देता था। उसकी दूसरी खूबी यह थी कि वह एक सरकार के समय की बातें दूसरी सरकार को नहीं बताता था। इसके बावजूद, या शायद इसी कारण, हर आने वाली सरकार उसकी इज्जत करती थी और उसके पद के साथ छेड़छाड़ नहीं करती थी।

हर गुप्तचर जानता है कि उसकी सूचनाओं का मूल्य क्या है और इस मूल्य की परख कौन कर सकता है। सो हमारा यह गुप्तचर-शिरोमणि सीधे 10, जनपथ जा पहुँचा, जहाँ भारत सरकार का नॉर्थ ब्लॉक और साउथ ब्लाक दोनों जाकर एक हो जाते थे और वहाँ के ड्राइंग रूम के फर्श पर दंडवत की मुद्रा में पड़े रहते थे। सोनिया गांधी को जैसे ही उसके आने की सूचना मिली, उन्होंने उसे तुरन्त बुला लिया। वे जानती थीं कि राज-काज कैसे चलता है। उसमें प्रकट की अपेक्षा गुप्त का महत्त्व हमेशा अधिक होता है। गुप्तचर ने मुख्तसर में उन्हें महँगाई देवी के प्रकट होने का सारा किस्सा सुनाया और अंत में कहा - मैडम, आपको तुरन्त कुछ करना चाहिए। खबर यह भी है कि वीपी सिंह अपने मित्रों से विचार-विमर्श कर रहे हैं कि इस मुद्दे को कैसे मुद्दा बनाया जाए। वामपंथी भी कसमसा रहे हैं।

सोनिया गांधी को गंभीर होने में समय नहीं लगा। उन्होंने गुप्तचर को धन्यवाद दिया और ताकीद की कि यह देवी जैसे ही कुछ और स्पॉट्स पर प्रकट हों, वह उन्हें तुरन्त इनफॉर्म करे। इसके बाद उन्होंने अपने भाषण लेखक को बुलाया और उसने कहा - सरकार के खिलाफ एक कड़ा - ज्यादा कड़ा भी नहीं - बयान तैयार करो। मैं कांग्रेस के सभी मुख्यमंत्रियों से मिलना चाहती हूँ। सेन्ट्रल मिनिस्टर्स को भी उसमें बुलाना है। इसकी तैयारी कराओ। या तो महँगाई देवी रहेंगी या मैं। यह मनमो...फिर पता नहीं क्या सोच कर रुक गईं।

बयान जारी हुआ, मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन भी बुलाया गया, और भी कई टोटके आजमाए गए। इस सबमें इतना समय लग गया कि महँगाई देवी अपने आप अदृश्य हो गईं। सुनते हैं, जाते-जाते उनकी मुखमुद्रा ऐसी थी मानो वे कह रही हों कि तुम्हारी नीतियाँ ऐसी ही रहीं, तो मुझे फिर आना पड़ेगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

महँगाई में प्रधानमंत्री

राजकिशोर

प्रधानमंत्री आज दफ्तर जाते समय बहुत प्रसन्न थे। सुबह-सुबह उन्हें पढ़ने को मिला था कि लंदन के एक अखबार ने भारत की वृद्धि पर खुशी जाहिर की है। हालाँकि उस अखबार ने थोड़ी आलोचना भी की है कि भारत में साक्षरता, सड़क, बिजली आदि की हालत बहुत खराब है। लेकिन प्रधानमंत्री अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ तजुर्बेदार भी थे। वे जानते थे कि 'शुद्ध मुनाफा' तो हो सकता है, पर 'शुद्ध तारीफ' नहीं हो सकती। फिर उनके प्रधानमंत्री हुए कुल ढाई साल ही तो हुए थे। उनके पास कोई जादू की छड़ी तो है नहीं कि एक सुबह लोग उठें और देखें कि पूरे देश में बिजली है और देश के हर आदमी के पास एक निजी पुस्तकालय है। हर पाँच किलोमीटर पर एक पेट्रोल पंप, एक होटल और एक एटीएम है। सुबह आठ बजे देश के सारे नौजवान और नवयुवतियाँ अपने को चिकना-चुपड़ा बना कर अपनी-अपनी गाड़ियों में दफ्तर के लिए निकल पड़े हैं। होगा, होगा, यह भी होगा, थोड़ा इंतजार तो करो। भारत के लोगों में यही तो बुरी आदत है। जब वे इंतजार करने पर आते हैं, तो सैकड़ों साल तक इंतजार कर सकते हैं। जब वे अधीर होते हैं, तो पाँच साल में ही सरकार की खाट खड़ी कर देते हैं।

अपनी नई उद्भावना पर प्रधानमंत्री के चेहरे पर एक इंच मुस्कान आई, फिर उन्होंने अपने को सँभाल लिया कि कहीं किसी की नजर पड़ गई कि क्या होगा - लोग कहेंगे कि एक तरफ देश में किसान आत्महत्या कर रहे थे और दूसरी तरफ प्रधानमंत्री अपनी कार में बैठे मुस्करा रहे थे। कहीं दैनिक पत्रों में यह बहस न शुरू हो जाए कि प्रधानमंत्री आखिर किस बात पर मुस्करा रहे थे। फिर तो दस-पंद्रह दिनों तक राष्ट्रीय मीडिया इसी रहस्य की तहकीकात करता रहेगा, इस विषय पर टीवी चैनलों पर बहस होगी, बड़े-बड़े स्तंभकार इस पर टिप्पणी करेंगे। यह भी हो सकता है कि कोई पत्रिका इस मामले को बड़े पैमाने पर उठा कर देश के आठ महानगरों में 'राष्ट्रीय' सर्वेक्षण ही करा डाले कि आपकी राय में प्रधानमंत्री किस बात पर मुस्कराए थे - (क) आर्थिक वृद्धि दर के बढ़ने पर, (ख) दिल्ली के नए मास्टर प्लान पर, (ग) कावेरी नदी जल विवाद के फैसले पर, (घ) देश में इतने राजनेताओं के होते हुए भी अपनी अपरिहार्यता पर या (च) इनमें से किसी भी बात पर नहीं।

अपने कार्यालय में पहुँचते ही प्रधानमंत्री ने सभी प्रमुख नौकरशाहों को बुलाया। जैसी कि उन्हें उम्मीद थी, सभी ने शब्दावली बदल-बदल कर उन्हें बधाई दी कि लंदन के अखबार ने उनके आर्थिक नेतृत्व की इतनी सराहना की है। प्रधानमंत्री कई घंटे तक इस खबर का आनंद ले चुके थे, फिर भी उन्हें बार-बार एक ही बात सुन कर बोरियत नहीं हो रही थी। उनकी दशा उस छात्र की तरह हो रही थी, जो बोर्ड की परीक्षा में प्रथम आया हो और जिसे बधाई देने के लिए हर कोई टूटा पड़ रहा हो। लेकिन प्रधानमंत्री की बैठक कोई मुशायरा तो होती नहीं है, इसलिए बधाई और आत्म-खुशी के माहौल को बदलना जरूरी हो गया। प्रधानमंत्री ने कुछ और गंभीर हो कर पूछा - क्या इस विषय

पर मुझे 'राष्ट्र के नाम संदेश' देना चाहिए? यह सुनते ही मीटिंग में एक तटस्थ सन्नाटा छा गया। वे सभी खुर्राट अफसर थे। उनमें से प्रायः 'इंडिया शाइनिंग' के जमाने में इसी तरह की बैठकों में भाग ले चुके थे।

लेकिन देश का सबसे शक्तिशाली आदमी (वैसे, इस पर अफसरों में मतभेद था; कुछ का कहना था कि इस जुमले का असली हकदार कोई और है और वह 'लाभ के पद' पर नहीं है) कुछ पूछ रहा हो और उसके मातहत मुँह सिले बैठ रहें, यह कायदा नहीं है, इसलिए एक-एक कर, दबी हुई आवाजें सुनाई पड़ने लगीं - 'सर, आइडिया अच्छा है'; 'लोगों को बहुत दिनों से कोई अच्छी खबर नहीं मिली है', वे खुश हो जाएँगे'; 'आखिर हम दुनिया की सबसे बड़ी डेमोक्रेसी हैं; जो बात सरकार जानती है वह जनता को भी पता चलनी चाहिए'; 'तब तो यह सीधे-सीधे राइट टु इन्फॉर्मेशन का मामला बनता है', 'नहीं तो यह आरोप भी लग सकता है कि सरकार जनता को अँधेरे में रख कर विकास करवा रही है'; 'अपोजीशन भी सवाल कर सकता है कि भारत के जिस भेद को लंदन के अखबार ने खोल दिया है, वह भेद सरकार ने संसद से क्यों छिपाए रखा? यह संसद की अवमानना है'...

एक नौजवान अफसर बहुत देर से बोलने के लिए मौके का इंतजार कर रहा था। बीच-बीच में उसके होंठ खुलने की कोशिश भी करते थे, पर कोई न कोई धाकड़ अधिकारी उसे ओवरटेक कर लेता था। प्रधानमंत्री खुद भी अल्पसंख्यक वर्ग के थे, इसलिए अल्पसंख्यक की वेदना को अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने उस युवा अफसर की तरफ देख कर कहा - शायद आप कुछ कहना चाहते हैं। जवाबी थोड़ा खुश हुआ, थोड़ा झेंपा, फिर बोला - सर, मेरे दिमाग में एक दूसरी बात थी...'थी या है?' यह कह कर प्रधानमंत्री जरा मुसकराने को हुए कि उन्होंने अपने को रोक लिया - अफसरों से मजाक करना ठीक नहीं है, यह बहुत खतरनाक प्रजाति है। मुसकराने का काम जवाबी ने किया और माफी माँगते हुए बोला - 'सर, मेरा खयाल यह है कि अगर आपको 'राष्ट्र के नाम संदेश' देना ही है, तो महँगाई की बढ़ती हुई समस्या पर देना चाहिए। मुझे लगता है, यह मुद्दा जल्द ही गंभीर बनने वाला है। लोग कसमसा रहे हैं।'

खुर्राट अफसर इस मामले में भी पीछे नहीं रहना चाहते थे। प्रधानमंत्री के चेहरे पर बढ़ रही गंभीरता को देख कर एक बुजुर्ग-से अफसर ने धीमे से कहा, मानो कोई भूली हुई बात याद करने की कोशिश कर रहा हो, 'मेरा ड्राइवर भी कह रहा था कि आजकल उसका बजट गड़बड़ा रहा है...।' एक दूसरे अफसर ने बुरा-सा मुँह बनाया, 'दरअसल, आजकल लोगों की एंबीशंस बहुत बढ़ गई हैं। सभी फल-दूध-सब्जी खाना चाहते हैं। अपने बच्चों को पब्लिक स्कूल में पढ़ाना चाहते हैं।...मेरा ड्राइवर पहले स्कूटर पर आता था। अब उसने एट हंड्रेट खरीद ली है। महँगाई बढ़ेगी नहीं?'

प्रधानमंत्री को लगा कि मामला नियंत्रण से बाहर जा रहा है। उन्होंने घोषणा की, 'इस बारे में मैं चिदंबरम साहब से बात करूँगा। यह पीएमओ का नहीं, फाइनांस मिनिस्ट्री का मामला है।'

आज की पहली बैठक यहीं खत्म हो गई।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

महाशक्ति की दीनता

राजकिशोर

अमेरिका से परमाणु करार होने के बाद भारत महाशक्ति हो गया है। यह मनमोहन सिंह तो मानते ही हैं, वे सभी लोग कहते हैं जो उन्हें आदर्श प्रधानमंत्री मानते हैं। परमाणु करार की शर्तों को लेकर जब-तब अमेरिका कुछ ऐसी बात कह देता है, जिसे लेकर हमारे यहाँ बवाल मच जाता है। इसे गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। जब अमेरिका महाशक्ति बना था, तब वहाँ कोई बवाल नहीं मचा था। जब चीन महाशक्ति हो गया, तब भी उस देश के भीतर कोई वाद-विवाद नहीं हुआ था। लेकिन भारत महाशक्ति होने की आग में झुलस रहा है। वामपंथी दलों ने विद्रोह कर दिया। मनमोहन सिंह की सरकार जाते-जाते बची। उसके बाद भी गुल गपाड़ा होता रहता है। यह सब इसलिए कि भारत सरकार उधार का सिंदूर लगा कर सुहागन होना चाहती है। एक गरीब देश जब महाशक्ति होने की राह पर चल पड़ा है, तो मुश्किलें तो आएँगी ही। भारत के लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि कानी के ब्याह में सैकड़ों मुश्किलें आती हैं। जब ब्याह की रस्में पूरी हो जाएँगी और भारत सरकार यूरेनियम की बिंदी लगा कर इठलाते हुए सड़क पर निकलेगी तब देखना।

एक सीधा-सादा नागरिक होने के नाते, मैं किसी झंझट में नहीं पड़ता। मुझे आम खाने से मतलब है न कि पेड़ गिनने से। राजनीतिक दल अपना घमासान जारी रखें। यह उन्हें शोभा देता है। मेरे लिए यह खबर ही काफी है कि भारत महाशक्ति हो गया है या एक दो तीन के बाद हुआ ही चाहता है। इससे हमारी पता नहीं कितनी समस्याएँ हल हो जाएँगी। लेकिन आम भारतीय की तरह मैं भी थोड़ा शक्की हूँ। अखबार में जो कुछ छपता है या टीवी पर जो कुछ बताया जाता है, उस पर पूरा यकीन नहीं करता। दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है। सो मैंने सोचा कि जरा एक-दो जगह जा कर पता लगाया जाए कि भारत के महाशक्ति होने का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

सबसे पहले मैं अपने इलाके के डीपीसी के यहाँ गया। वह मेरा मित्र तो नहीं है, लेकिन चूँकि मैं पत्रकारिता के पेशे में रहा हूँ, इसलिए हम दोनों एक-दूसरे को मित्र ही मानते हैं। वह तपाक से मिला। आज बहुत खुश था, क्योंकि कई महीनों के बाद उसके इलाके में पिछले दिन न कोई हत्या हुई थी, न बलात्कार हुआ था। यहाँ तक कि मामूली मारपीट भी नहीं हुई थी। मालूम हुआ कि कुछ समय से वह शनि देवता की पूजा कर रहा है। हर शनिवार को उपवास रखता है और शनि मंदिर में जा कर पाँच सौ एक रुपए का चढ़ावा चढ़ाता है। उसने बताया, 'लगता है, शनि महाराज अब जाकर प्रसन्न हुए हैं। कल देखो, मेरे इलाके में कोई क्राइम नहीं हुआ।' दूसरों को पंक्चर करने में मुझे मजा आता है। मैंने कहा, 'हो सकता है, कल अपराधियों ने छुट्टी मनाई हो। वे भी तो अपराध करते-करते थक जाते होंगे। उन्हें भी तो रेस्ट चाहिए। असली सवाल तो यह है कि बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी।' यह सुनते ही उसका मुँह लटक गया।

मित्र ही मित्र के काम आता है। अतः उसे तसल्ली देते हुए मैंने कहा, 'घबराने की बात नहीं है। तुम्हारी सारी समस्याएँ जल्द ही सुलझने वाली हैं।' उसके चेहरे पर हलकी-सी चमक आई। उसने पूछा, 'कैसे?' मैंने बताया, 'लगता है, आजकल तुम अखबार नहीं पढ़ते। नहीं तो तुम्हें पता होता कि भारत महाशक्ति हो गया है। अब उसकी शक्ति बढ़ गई है। वह अमेरिका और चीन की पंक्ति में आ गया है।' 'तो मुझे क्या? या पुलिस विभाग को क्या?' - उसने इस निराशा के साथ सवाल किया जैसे मैंने पहाड़ खोदा हो और उसके हाथ चुहिया लगी हो।

'तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? अरे, जब भारत महाशक्ति हो गया है, तो देश में अपराध कम नहीं होने लगेंगे? गुंडे, तस्कर, आदमियों की तस्करी करनेवाले, डकैत, बलात्कारी, रिश्वतखोर, सुपारी लेनेवाले, काले धन की सर्विसिंग करनेवाले, सट्टाखोर, रक्षा सौदों में कमीशन लेनेवाले - ये सब भारत की इस नई शक्ति-संपन्नता से डरेंगे नहीं? तुम्हें तो पता ही है, अपराधियों की खुफिया जानकारी हमसे तेज होती है। सरकार जो बात हमें आज बताती है, वह उन्हें कई हफ्ते पहले पता लग जाती है। तभी तो देश चल रहा है। नहीं तो कभी का ठप हो जाता।'

मित्र अधीर होने लगा था। बोला, 'यह कोई जन सभा नहीं है। साफ-साफ बताओ, कहना क्या चाहते हो?'

मैंने स्पष्ट करने की कोशिश की, 'अब हत्यारे हत्या करने से पहले पंद्रह बार सोचेंगे कि हत्या करें या नहीं, क्योंकि भारत महाशक्ति हो गया है और हमारे साथ पता नहीं क्या सलूक करे। मुनाफाखोर उद्योगपति और व्यापारी तो थर-थर काँपने लगेंगे। दंगाइयों का तो नामो-निशान मिट जाएगा। महाशक्ति के सामने वे कहाँ ठहरेंगे? गुंडे-बदमाश खुद थाने में आकर अपने हथियार जमा कर देंगे। भ्रष्टाचार करने वाले छिप कर भी भ्रष्टाचार नहीं करेंगे। उनमें यह खौफ फैल जाएगा कि महाशक्ति भारत उन्हें पता नहीं कितनी कठोर सजा दे। जब मुकदमे कम हो जाएँगे, तो मजिस्ट्रेट और जज अदालतों में मक्खी मारते नजर आएँगे। भारत में रामराज्य आ जाएगा।'

यह सुन कर मित्र हो-हो कर हँसने लगा। बोला, 'तुम्हारी शक्ल देखते ही मैं समझ गया था कि आज सबेरे-सबेरे ही भाँग चढ़ा ली है। अब साबित भी हो गया।'

इसके बाद कहीं और जाने की इच्छा नहीं हुई। घर लौटा और चादर तान कर सो गया।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मायावती से मिलने के बाद

राजकिशोर

मेरे एक मित्र दलित बुद्धिजीवी हैं। उनका नाम बता कर मैं यह साबित नहीं करना चाहता कि मेरी मित्र मण्डली में इतने प्रसिद्ध लोग भी हैं। उनसे जब भी मुलाकात होती है, मैं एक नई चिन्ता में पड़ जाता हूँ। आजकल वे कुछ उदास रहते हैं। हर अगली बार पिछली बार से ज्यादा उदास दिखाई देते हैं। इससे मेरा मन भी गिर जाता है। मेरे ये मित्र शुरू में बहुत उत्साहित रहते थे। दलित संघर्ष को और धारदार बनाने के नए-नए कार्यक्रम सोचा करते थे। लेकिन उनकी मुश्किल यह है कि वे बुद्धिजीवी हैं। इसकी व्याख्या यह हुई कि जनता के बीच इनकी पहुँच नहीं है। दलितों का पता नहीं है कि उनका बुद्धिजीवी उनके बारे में क्या सोच रहा है। मेरे मित्र भी दलितों में लोकप्रिय होना नहीं चाहते। उनकी आकांक्षा बुद्धिजीवियों के बीच प्रसिद्ध होने की है। अपने इस लक्ष्य में वे बारह आना सफल हो चुके हैं। लेकिन अन्य बुद्धिजीवियों की तरह वे कभी जमीन से कटे नहीं। कुछ दलित नेताओं से भी सम्पर्क बनाए रखते हैं। एक बार तो उन्होंने राज्य सभा के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया था। लेकिन एक अदना-से उद्योगपति ने उनका स्थान हड़प लिया। इसके बाद उन्होंने कई लेख लिखे, जिनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि राज्य सभा की कोई उपयोगिता नहीं है, इसे समाप्त कर देना चाहिए।

इस हफ्ते मित्रवर से मुलाकात हुई, तो वे गुस्से में थे। दुःख का गुस्से में बदलना खतरनाक होता है। लेकिन यह चिंता मुझे नहीं हुई, क्योंकि मित्र बुद्धिजीवी हैं और बुद्धिजीवी जब अभिव्यक्ति के खतरे उठाते हैं, तब भी बुनियादी तौर पर सुरक्षित ही रहते हैं। मित्र ने बताया कि वे कल ही मायावती से मिल कर आ रहे हैं - 'उनकी बातें सुन कर तो मैं चकरा गया। मुझे कहीं से नहीं लगा कि मैं देश की सबसे तेज-तर्रार नेता से मिल रहा हूँ।'

मायावती के तौर-तरीके मुझे कभी पसन्द नहीं आए। तब भी नहीं, जब वे मनुवादियों से जूतों से बात करती थीं और आज भी नहीं, जब मनुवादी स्वयं उनकी शरण में जा रहे हैं। मनुवाद की यही विशेषता है। वह सत्ता से प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं करता। जब कोई शूद्र राजा बन जाता है, तब वह उसकी प्रशस्ति में नए छन्द लिखने लगता है। इसी के साथ-साथ वह शूद्र राजा को भीतर ही भीतर मनुवादी बनाने की कोशिश करता रहता है। मूल लक्ष्य ब्राह्मण की सत्ता को बनाए रखना है। इसके लिए अवसर के अनुकूल जो भी करना आवश्यक हो, किया जाएगा। लगता है, मनुवाद के इस भेद को मायावती समझ गई हैं। स्त्रियों की आँख तेज होती है। उस सत्य को समझने में उन्होंने ज्यादा समय नहीं लगाया, जिसे कांशीराम कभी समझ नहीं पाए।

मित्र का कष्ट यही था। उन्होंने मायावती को यह समझाने की बहुत कोशिश की कि वे बहुजनवाद को सर्वजनवाद के जिस रास्ते पर धकेल रही हैं, उससे दलित राजनीति खत्म हो जाएगी। पार्टी में जब गैर-दलितों का बोलबाला हो जाएगा, तो दलितों का क्या होगा? आज उनके पास एक ठोस पार्टी है। कल वे दलविहीन हो जाएँगे। बल्कि अपने

ही दल में बेगाने हो जाएँगे। यह सुन कर मायावती हँस पड़ी थीं। उत्तर दिया था - 'तुम बुद्धिजीवी लोग कुछ समझते नहीं हो। दलितों को जब भी सत्ता मिली है, मनुवादियों या पिछड़ावादियों से गठबन्धन करने पर मिली है। चूँकि ये तबके नहीं चाहते कि दलित सत्ता में आएँ, इसलिए सीढ़ी से चढ़ा देने के बाद खींच लेते हैं। हर बार मैं भरभरा कर गिर पड़ी। मुलायम ने तो मेरी जान लेने की भी कोशिश की थी। सो मैंने सोचा, क्यों न अपनी ही पार्टी में एक कमरा मनुवादियों के लिए खोल दूँ और एक कमरा पिछड़ी जातियों के लिए भी। मुसलमानों का क्या है! उन्हें तो गैलरी में भी टिकाया जा सकता है। इस तरह जो मकान बनेगा, वह बहुत मजबूत होगा। हमीं दलितवादी, हमीं मनुवादी और हमीं पिछड़ावादी। जाओ, कहाँ जाओगे?'

मित्र का सवाल था - 'लेकिन मैडम, इससे तो दलितों पर होने वाले अत्याचार में कमी नहीं आएगी। वह बढ़ सकता है, क्योंकि अत्याचार करने वाले समूह भी आपकी ही छत्रछाया में होंगे।'

मायावती फिर हँसने लगीं। उन्होंने कहा - 'जाओ, जाओ, किताबें लिखो। राजनीति तुम्हारे बस की बात नहीं है। यहाँ चाहता ही कौन है कि दलितों की हालत में सुधार हो? मैं तीन-तीन बार मुख्यमंत्री बनी। दलितों के लिए मैंने कुछ किया? ऐसे करके मैं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मारती? दलित जब दलित नहीं रह जाएगा, तब दलित राजनीति का क्या होगा? इसलिए दलित शक्ति को जिलाए रखने के लिए जरूरी है कि दलितों के हित की बात की जाए, पर दलितों की भलाई के लिए कुछ न किया जाए।'

मित्र ने पूछा - 'लेकिन कांग्रेस भी तो यही करती थी। इसीलिए दलितों ने उस पर भरोसा करना छोड़ दिया।'

इस बार मायावती के गाल बैंगनी होने लगे। उन्होंने सख्ती से कहा - 'कांग्रेस दलितों की पार्टी नहीं थी। वह दलितों पर एहसान जताती थी। दलित किसी का एहसान लेना नहीं चाहता। अब वह जग गया है। वह खुद देश को नेतृत्व देना चाहता है। तुमने यह नारा नहीं सुना - आज उत्तर प्रदेश, कल पूरा देश? बुद्धिजीवी क्षणवादी होता है। नेता आगे की सोचता है। इसलिए जब तक केन्द्र में हमारी सरकार नहीं बनती, हम दलितों को दलित ही रखना चाहते हैं। और दलित जाएगा कहाँ? उसे मुझ पर पूरा विश्वास है कि मैं जो कुछ करती हूँ, ठीक करती हूँ। तभी तो दलित विधायकों को मैं अपने सामने कुर्सी पर बैठने नहीं देती। जिस दिन वह दलित होने के दर्द को भूल जाएगा, समझौतावादी हो जाएगा।' मित्र ने बताया - 'मेरे मन में आया कि कहूँ 'जैसे आप', पर मैं चुप ही रहा।'

मित्र तो और भी बहुत कुछ बताना चाहते थे, पर मैंने उन्हें रोक दिया - 'छोड़ो यार, अब तो तुमने सब कुछ समझ लिया। लिखने-पढ़ने में लगे रहो। तुम्हारा जो भी होगा, इसी से होगा।'

मित्र ने रूमाल निकालकर अपने रुआँसेपन को पोंछा और कहा - 'लेकिन मैं कब तक सवर्ण बुद्धिजीवियों के बीच पापड़ बेलता रहूँगा? मैं खूब जानता हूँ, वे अपना नेतृत्व जमाने के लिए हमारा इस्तेमाल कर रहे हैं।'

मेरे पास यह जवाब देने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था - 'तब तो तुम्हें मायावती की तारीफ करना चाहिए। सवर्ण जो तुम्हारे साथ कर रहे हैं, वही वे सवर्णों के साथ कर रही हैं।'

मित्र ने मेरी तरफ इस तरह देखा जैसे वह कह रहा हो - तो ब्रूटस, तुम भी?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मार्क्स की वापसी

राजकिशोर

जैसे मुन्नाभाई को गांधी जी दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही मुझे कभी-कभी मार्क्स दिख जाते हैं। जिस दिन बराक ओबामा जीते, उसी शाम यह घटना हुई। मैं एक मित्र के बार-बार कहने पर टहल रहा था, तभी देखा, मार्क्स सामने से चले आ रहे हैं। बहुत परेशान दिखाई पड़ रहे थे। मैंने सोचा कि कॉमरेड से पूछूँ कि नया क्या हुआ है जो आपको तंग कर रहा है, तभी वे रुक गए और मेरी आँखों में आँख डालकर बोले, 'क्या तुम भी मेरी वापसी से बहुत खुश हो?'

मैंने पहले मन ही मन उन्हें प्रणाम किया और फिर जवाब दिया, 'वापसी? क्या किसी चीज की वापसी होती है? आपने ही लिखा है कि कोई घटना दूसरी बार घटती है, तब वह कॉमेडी हो जाती है।'

मार्क्स के चेहरे पर थोड़ा-सा सन्तोष उभरा। फिर वे अपने मूड में आ गए, 'अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की सरकारों ने अपने कुछ पूँजीवादी संस्थानों को बचाने के लिए थोड़ा-सा सरकारी रुपया लगा दिया, तो तुम पत्रकारों ने लिखना शुरू कर दिया कि यह तो मार्क्स की वापसी है। तुमने शायद ऐसा नहीं लिखा है, पर जो पत्रकार तुमसे अधिक मशहूर हैं, उनका तो यही कहना है! मैंने भी पत्रकारिता की है, अमेरिकी अखबार में की है। उन दिनों के पत्रकार तो इतने जाहिल नहीं हुआ करते थे। अब जैसे-जैसे साधन बढ़ रहे हैं, पत्रकारों को ज्यादा पैसा मिलने लगा है, वे सिर्फ साक्षर भर दिखाई देते हैं। मार्क्स की वापसी! हुँह! क्या सिर्फ सरकारीकरण से ही समाजवाद की ओर बढ़ा जा सकता है? मैं कम्युनिस्ट हूँ, न कि सरकारवादी। मेरी नजर में तो जहाँ भी सरकार है, वहाँ विषमता और अन्याय है। मेरे रास्ते पर चले होते, तो अभी तक सभी सरकारें खत्म हो जातीं और समाज सक्रिय हो जाता। समाज को कमजोर कर जब सरकार मजबूत होती है, तो वह और बड़ी डायन हो जाती है।'

मैंने अपनी बात करना जरूरी समझा, 'कॉमरेड, मेरे लिए तो आपकी वापसी का कोई अर्थ ही नहीं है, क्योंकि मेरा मानना है कि आप तो पहली बार भी नहीं आए थे। जो आया था, वह मार्क्स नहीं, उसके नाम पर कोई बहुरुपिया था।'

मार्क्स ने अपनी दाढ़ी खुजलाई, 'तुम ठीक कहते हो। मैं जिन्दा होता, तो कम्युनिस्ट कहे जाने वाले सोवियत संघ और लाल चीन की धज्जियाँ उड़ा देता। याद नहीं आ रहा कि मैंने कहीं लिखा है या नहीं, पर तुम मेरे नाम से नोट कर सकते हो कि शिष्य लोग ही अपने गुरु का नाम डुबोने में आगे रहते हैं। तुम्हारे गांधी के साथ क्या हुआ? मुझे उसके किसी ऐसे अनुयायी का नाम बता सकते हो जिसे देख कर उस विचित्र आदमी की याद आती हो? मेरे साथ भी यही हुआ। यही होना ही था। इसीलिए मैंने बहुत जोर दे कर कहा था, डाउट एव्रीथिंग (हर चीज पर शक करो)।

मेरा नाम लेनेवालों ने यह तो किया नहीं, मेरे विचार को ही उलट दिया। उनका सिद्धान्त यह था, डाउट एव्रीबॉडी (हर आदमी पर शक करो)। खाली शक करने से कहीं इतिहास आगे बढ़ता है?'

मैं चुप रहा। अब इतनी नम्रता तो आ गई है कि बड़ों के सामने ज्यादा मुँह नहीं खोलना चाहिए। मार्क्स भी कुछ क्षणों तक खामोश रहे। फिर धीमे से बोले, 'और यह ओबामा! पता नहीं सारी दुनिया इस पर क्यों फिदा है! ठीक है, एक अर्ध-काले को अमेरिका का राष्ट्रपति चुन लिया गया है। हाँ, उसे अर्ध-काला ही कहा जाना चाहिए, क्योंकि उसकी माँ श्वेत थी। अगर उसके माँ-बाप दोनों ही काले होते, तो मुझे शक है कि वह चुना जाता। फिर वह ब्लैक राजनीति में भी कभी नहीं रहा। काला है, पर गोरों जैसी बातें करता है। कोई यह भी पूछना नहीं चाहता कि उसके विचार क्या हैं, वह अमेरिका को कैसे ठीक करेगा, अमेरिका को सभ्य राष्ट्र बनाने का उसका कार्यक्रम क्या है आदि-आदि। सब इसी बात से इतने खुश हैं कि ओबामा राष्ट्रपति बन गए। मैं निराशावादी तो नहीं हूँ, पर आशा के कारण भी दिखाई नहीं देते।'

मैं बोला, 'शायद आपने ही लिखा है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार पूँजीवादियों की कार्य समिति होती है। इस लिहाज से रिपब्लिकन पार्टी को उसका उच्च सदन और डेमोक्रेटिक पार्टी को निम्न सदन कहना चाहिए। काफी दिनों के बाद हेरफेर हुआ है, तो खुशी क्यों न मनाई जाए?'

मार्क्स की आँखें धीरे-धीरे लाल हो रही थीं। वे बोले, 'मैं मनहूस आदमी नहीं हूँ कि कोई खुशी मनाए, तो मेरे पेट में दर्द शुरू हो जाए। जरूर खुशी मनाओ, पर जहाँ दस-बीस फुलझड़ियाँ ही काफी हों, वहाँ दिवाली मनाने का क्या तुक है? अनुपात का कुछ तो बोध होना चाहिए।'

तभी हमारे बगल में एक कार रुकी। उसके चालक की सीट से मेरे एक परिचित ने मुँह बाहर निकाला और पूछा, 'सर अकेले-अकेले किससे बात कर रहे हैं?' परिचय कराने के लिए मैंने मार्क्स की ओर देखा, लेकिन वहाँ कोई नहीं था। मार्क्स हवा में विलीन हो चुके थे।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

मॉडल छात्र प्रतियोगिता 2007

राजकिशोर

अवसर : सेंट रमण (उच्चारण के अनुसार, सेंट रामन) पब्लिक स्कूल का वार्षिकोत्सव। स्थान : इसी स्कूल का ऑडिटोरियम। विषय : मॉडल छात्र प्रतियोगिता 2007। निर्णायक मंडल के सदस्य : राजेन्द्र यादव, अशोक वाजपेयी, कुलदीप नैयर और कृष्णा सोबती। अध्यक्ष : नामवर सिंह। विद्यार्थी एक-एक कर आते हैं और बताते हैं कि वे क्या बनना चाहते हैं।

स्वप्निल चड्ढा : मेरे आइडियल भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह हैं। इस समय उनके जैसी पोजीशन किसी की भी नहीं है। विद्वान के विद्वान और नेता के नेता। ही इज हैविंग द बेस्ट ऑफ बोथ वर्ल्ड्स। पहले मैंने प्रेसिडेंट कलाम के बारे में सोचा था। लेकिन प्रेसिडेंट के पास कोई रियल पॉवर नहीं होता। खाली उपदेश देने में क्या रखा है। मैं तो मनमोहन सिंह का रास्ता अपनाऊँगा। फिर, इस पोस्ट में रिटायरमेंट भी नहीं है।

वर्तिका सिंह : मेरे सामने दो मॉडल हैं। एक मेधा पाटकर का और दूसरा ऐश्वर्या राय का। दोनों ही फोटोजनिक हैं। लेकिन हर लड़की ऐश्वर्या राय नहीं बन सकती। ऑन द अदर हैंड, मेधा पाटकर बनने में मुश्किलें बहुत हैं। गाँव-गाँव, जंगल-जंगल घूमना पड़ेगा। ऑफ कोर्स, आई लव द रूरल सीन, बट, यू नो... इसलिए मैंने अपने लिए एक ऐसा मॉडल चुना है, जिसमें फिफ्टी परसेंट ऐश्वर्या राय हों और फिफ्टी परसेंट मेधा पाटकर। इट विल बी ए ग्रेट मिक्स।

अमिष श्रीवास्तव : मैं बड़ा होकर सलमान रुश्दी बनना चाहता हूँ। राइटिंग इज अ ग्रेट प्रोफेशन दीज डेज। सारी दुनिया घूमते रहो और साल-दो साल में एक नॉवेल लिख दो। मैं भी साल के दस महीने इंडिया से बाहर रहूँगा और सिर्फ दो महीने के लिए यहाँ आऊँगा। मुझे अपना पहला उपन्यास नॉर्थ-ईस्ट पर लिखना है। इसके लिए मैंने अभी से नोट्स लेना शुरू कर दिया है। मेरे पापा पेंगुइन में हैं। ब्रेक मिलने में कोई मुश्किल नहीं होगी।

शकुंतला नायर : टु बी वेरी फ्रैंक, मैं जर्नलिस्ट बनना चाहती हूँ। मैंने डिसाइड कर लिया है कि मुझे टीवी चैनल में नहीं जाना है। मुझे तो प्रिंट पसंद है। लेकिन मैं पॉलिटिक्स कवर करना नहीं चाहती। इट्स सो बोरिंग। मेरी पसंद लाइफस्टाइल जर्नलिज्म है। हाई सोसाइटी में मूव करना और नॉटी प्रोज में पर्सनालिटीज और ओकेजन्स के बारे में लिखना। हाउ थ्रिलिंग। मैंने अभी से फूड, वाइन, फैशन, पार्टीज, नाइटलाइफ वगैरह के बारे में जानकारी जमा करना शुरू कर दिया है।

रवि एन. दारूवाला : मनी इज माई पैशन। मैं लाखों-करोड़ों में खेलना चाहता हूँ। इसलिए मुझे इंडस्ट्रियलिस्ट बनना है। मेरा सपना मल्टी-नेशनल बनने का है - अ स्ट्रांग इंडियन मल्टीनेशनल। टाटा, अंबानी वगैरह ट्रेडीशनल

धंधों में लगे हुए हैं। मैं नए एरियाज में ब्रेकथ्रू करना चाहता हूँ। जैसे मेरा एक सपना है, हर शहर में हेलिकॉप्टर सर्विस शुरू करना। अगले कुछ वर्षों में सड़कों पर कंजेशन इतना बढ़ जाएगा कि लोग वक्त पर ऑफिस नहीं पहुँच पाएँगे और ऑफिस पहुँच गए, तो घर नहीं लौट पाएँगे। प्वाइंट टु प्वाइंट हेलिकॉप्टर सर्विस से सभी को रिलीफ मिलेगी। इसके साथ मैं अस्पतालों, होटलों और सिनेमा हॉल्स को भी जोड़ूँगा। ऐसे दर्जनों आइडियाज मेरे पास हैं।

अभिषेक वैदिक : आई एम अ बॉर्न लेफ्टिस्ट। मैं बड़ा होकर लेफ्ट का सबसे बड़ा सिगनेचर बनना चाहता हूँ। हमारे यहाँ के वामपंथी पिछड़े हुए हैं। वे मार्क्स की मारकेटिंग करना नहीं जानते, जबकि दुनिया भर में मार्क्सिज्म इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर गया है। मेरे खयाल से मार्क्सवाद की सबसे ज्यादा जरूरत मिडिल क्लास को है। मिडिल क्लास ही समाज को लीडरशिप देता है। पर हमारे यहाँ के मिडिल क्लास में कोई दम नहीं है। उसकी एम्बीशन्स बेहद लिमिटेड हैं। मैं उसके सारे बैरियर्स तोड़ दूँगा। दरअसल, हमें लेफ्ट की नहीं, न्यू लेफ्ट की जरूरत है। सीपीएम का लीडरशिप न तो लेफ्ट है और न न्यू लेफ्ट। इसीलिए वह आगे नहीं बढ़ पा रहा है। पॉलिटिक्स में नए खून की जरूरत है। अमेरिकन न्यू लेफ्ट के इंटेलेक्चुअल्स से मैंने अभी से करेसपांडेंस करना शुरू कर दिया है। चाइना के कई लेफ्ट ब्लॉगिस्ट्स मेरे गहरे साइबर-फ्रेंड हैं।

प्रतियोगियों द्वारा अपना-अपना पक्ष रखने के बाद निर्णायक मण्डल अंक तालिका बनाने में लग जाता है। कुछ ही मिनटों में निर्णायकों के बीच विवाद होने लगता है। राजेन्द्र यादव और अशोक वाजपेयी ऊँची आवाज में बोलने लगते हैं। कृष्णा सोबती हैरत से और कुलदीप नैयर उत्सुकता से दोनों को देखते रहते हैं। तभी स्कूल की प्रिंसिपल डॉ. स्वाती कला चोपड़ा मंच पर आती हैं। वे निर्णायकों से निवेदन करती हैं कि वे एक अलग कमरे में बैठक कर अपने मतभेद मिटा लें और नामवर सिंह से अध्यक्षीय भाषण देने के लिए आग्रह करती हैं।

नामवर सिंह : मैं मूलतः साहित्य का आदमी हूँ। प्रेमचन्द ने भले ही कहा हो कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, पर युग की संवेदना साहित्य में तुरन्त नहीं पहुँच जाती। इसमें समय लगता है। इसीलिए लेखक के लिए आवश्यक होता है कि वह युवा लोगों के बीच उठे-बैठे। इससे उसकी कलम पुनर्नवा हो जाती है। अशोक जी मेरे मित्र हैं। कवि हैं। उन्होंने ध्यान दिया होगा कि नई पीढ़ी में कोई कवि नहीं बनना चाहता। आज की इस प्रतियोगिता में राजेन्द्र जी के लिए भी गहरा सन्देश है। एक ने भी स्त्री या दलित की चर्चा नहीं छेड़ी। और, कुलदीप नैयर भी सँभल जाएँ। आज की पत्रकारिता अपना अलग रास्ता तलाश रही है। नई कहानी की तर्ज पर मैं कहना चाहूँगा कि यह नई पत्रकारिता है। दरअसल, यह पूरा समय ही नया है। किसी को चाहिए कि शोध कर 'नए युग के प्रतिमान' जैसी चीज लिखे। मुझे एक और सभा की अध्यक्षता करने के लिए जाना है। इसलिए मैं और ज्यादा कहना नहीं चाहता। धन्यवाद।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

रोने का राज

राजकिशोर

वह सड़क के किनारे एक बेंच पर बैठा पर रो रहा था। मैंने सोचा, या तो कोई मर गया होगा या उसकी प्रेमिका ने उसे धोखा दिया होगा। यह भी हो सकता है कि भूमंडलीकरण की आँधी में उसकी कई साल पुरानी नौकरी सूखे पत्ते की तरह उड़ गई हो। आजकल जैसा समय चल रहा है, उसमें रोने के हजार कारण हो सकते हैं। फिर भी मुझसे रहा न गया। वह जिस तरह फूट-फूट कर रो रहा था, उसे देखते हुए कोई रुके भी नहीं और उसे सांत्वना भी न दे, तो यह रोते जाने का एक नया कारण बन सकता था। इसीलिए एक आदर्श नागरिक की तरह आचरण करते हुए मैं आहिस्ता-आहिस्ता उसके पास गया और उसका काँपता हुआ हाथ अपने हाथ में लेते हुए पूछा - क्यों रो रहे हो, भाई?

उसने धीरे से सिर उठाया, मुझे गौर से देखा, फिर फफक कर पूछा, रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? ठठा कर हँसूँ? मेरी जुबान पर आ रहा था कि अगर चुनाव रोने और हँसने के बीच हो, तो हँसना ही बेहतर है, पर मैंने अपने आपको रोक कर कहा, क्या मामला ऐसा अजीबो-गरीब है कि उस पर रोया भी जा सकता है और हँसा भी जा सकता है?

वह मुझे इस तरह घूरने लगा जैसे मैं बहुत दिनों के बाद विदेश से लौटा होऊँ और भारत की स्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ होऊँ। फिर अपने आँसू पोंछते हुए बोला, अखबार नहीं पढ़ते हो? यह देखो, क्या लिखा है।

उसने अपने झोले से दिल्ली के एक हिंदी अखबार का पन्ना निकाला और रेखांकित पंक्तियों को पढ़ने का इशारा किया। समाचार राष्ट्रपति पद के लिए यूपीए और वाम दलों की उम्मीदवार के बारे में था। मैंने पढ़ा, 'प्रतिभा पाटिल के रूप में न सिर्फ उन्हें (सोनिया गाँधी को) एक स्वीकार्य, नरम और आज्ञाकारी राष्ट्रपति मिल जाएगा, बल्कि महाराष्ट्र में शरद पवार जैसे कइयों की (मैंने 'कइयों की' ही पढ़ा, हालाँकि छपा था 'कईयों की') महत्त्वाकांक्षाओं पर लगाम लगाने वाली एक समांतर हैवीवेट प्रतिमा भी खड़ी हो जाएगी।' उसके रुदन का कारण मैं समझ गया, फिर भी खुलासा करने के लिए पूछा, ठीक तो है। इसमें तो प्रतिभा जी की तारीफ ही छपी है। आपको रोना किस बात पर आ रहा है?

उसने मुझे इस तरह देखा जैसे किसी बहुत बड़े उल्लू से उसकी मुलाकात हो गई हो। फिर बोला, क्या खाक तारीफ लिखी है? भावी राष्ट्रपति के बारे में अखबार लिख रहा है कि कांग्रेस अध्यक्ष को एक आज्ञाकारी राष्ट्रपति मिल जाएगा। सोनिया गाँधी को ऐसे राष्ट्रपति की जरूरत हो सकती है, पर देश को तो ऐसे राष्ट्रपति पर शर्म ही आएगी, जो किसी दल विशेष के नेता का आज्ञाकारी हो। सोचिए जरा, पाँच साल लंबी शर्म... एक देश के रूप में हम कहाँ आ गए हैं!

मैंने उसे तसल्ली देना चाहा, लेकिन यह कोई नई बात तो है नहीं। इस मामले में तो हम पहले भी शर्मिंदा होते रहे हैं। वह कांग्रेस का ही चुना हुआ राष्ट्रपति था, जिसने इमरजेंसी के फरमान पर आज्ञाकारी पुत्र की तरह दस्तखत कर दिए थे। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह तो इंदिरा गांधी के घर में झाड़ू तक लगाने को तैयार थे।

उसकी आँखों की उदासी गहराने लगी, बीच में हम ऐसे राष्ट्रपतियों के अभ्यस्त हो चले थे जो पूरी तरह से आज्ञाकारी नहीं थे। उन्होंने कैबिनेट के कई प्रस्तावों को लौटा भी दिया था। लेकिन एक बार फिर...क्या यह सचमुच सच है कि भारत जितना बदलता है, वह उतना ही अपनी जड़ों की ओर लौट आता है?

मैंने फिर तसल्ली देने की कोशिश की, फालतू में क्यों बात बढ़ाते हो? शिवराज पाटिल, मोतीलाल वोरा, कर्ण सिंह वगैरह से तो यह बेहतर उम्मीदवार है। समझो, देश एक बड़े हादसे से बच गया। जहाँ तक छोटे हादसों का सवाल है, तो वे राजनीति में होते ही रहते हैं।

वह चौंक-सा गया। बोला, इसे छोटा-मोटा हादसा कहते हो? राष्ट्रपति पद पर लोग किसी जानी-मानी हस्ती का इंतजार करते हैं। जिसका कुछ कद हो, जिसकी कुछ उपलब्धियाँ हों, जिसने कुछ किया हो... इसके बजाय हमें दी जा रही है एक गृहिणी जैसी महिला, जिसे पता नहीं वर्तमान परिस्थिति की पेचीदगी का कुछ ज्ञान है भी या नहीं।

मैंने जवाब दिया, मुझे तो आज ऐसे ही लोगों में कुछ उम्मीद नजर आती है, जिनका सीवी सबसे छोटा हो। क्या पता, यह गृहिणी अपनी ईमानदारी में दूसरे राष्ट्रपतियों से आगे निकल जाए।

वह बोला, हो सकता है, तुम्हारी बात ठीक हो, पर यह तो भविष्य ही बताएगा। अभी तो मुझे रोने का अधिकार है और तुम चले जाओगे तो मैं फिर रोना शुरू कर दूँगा। मैं तो मानता हूँ कि इस वक्त रोना मेरा राष्ट्रीय कर्तव्य भी है। मुझे अपने कर्तव्य का पालन करने दो। क्यों नहीं तुम भी मेरे साथ बैठ कर थोड़ी देर रो लेते? तुम्हारा अंतःकरण धुल जाएगा।

मैंने कहा, मैं इतना बदकिस्मत हूँ कि मेरे पास रोने के लिए भी समय नहीं है। मुझे घर जाकर एक लेख लिखना है। मैं अपने आँसू अपने लेखों में ही उँड़ेल देता हूँ। खैर, इस पर तो खुश हुआ ही जा सकता है कि पहली बार एक महिला राष्ट्रपति का पद सँभालने जा रही है। उसने जोर से उसाँस भरी, फिर मुझे अनवरत घूरने लगा। अब उसकी आँखों से आग निकल रही थी। उसके होंठ थरथरा रहे थे, लेकिन शब्द नहीं निकल रहे थे। साफ था कि वह जो कहना चाह रहा था, कह नहीं पा रहा था।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

लो, मैं आ गई

राजकिशोर

मैंने पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि मैं आ रही हूँ। मुझसे पूछा गया कि मुलायम सिंह के शासन के बारे में आपके क्या विचार हैं, तो मैंने जवाब दिया था कि मैं आ रही हूँ। मुझसे सवाल किया गया कि चुनाव जीतने के बाद आप क्या करेंगी, तो मेरा उत्तर था, मैं आ रही हूँ। हर सवाल के रू-ब-रू मेरे पास एक ही जवाब था, मैं आ रही हूँ। इतिहास ने मुझे सही साबित किया। मैं आ रही थी। मैं आ गई हूँ।

कुछ लोगों को मेरा आना सुहा नहीं रहा था। वे देख रहे थे कि मैं आ रही हूँ, फिर भी इस कटु सत्य को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। दरअसल, उन्हीं में से कुछ ने मुझे बताया था कि मैं आ रही हूँ। फिर मैं सचमुच आने लगी। लेकिन जैसे-जैसे मतदान के दिन नजदीक आने लगे, मेरे आने के बारे में शक किया जाने लगा। सर्वेक्षणकर्ता लिखने लगे कि मैं आ तो रही हूँ, पर पूरा नहीं आ रही हूँ। पहले से ज्यादा आ रही हूँ, पर इतना नहीं आ रही हूँ कि अपने दम पर सरकार बना सकूँ। अब वे लोग माफी माँगते घूम रहे हैं। उनकी गलती यह थी कि मेरे आने को उन्होंने कम करके देखा। वे अगर समाज के सच्चे खैरख्वाह होते, तो दूसरे प्रकार की गलती करते। मैं जितना आ रही थी, मेरे आने को उससे ज्यादा आना दिखाते। तब भी उन्हें माफी माँगनी पड़ती। लेकिन क्या पता, मैं सचमुच जितना आ पाई हूँ, उससे अधिक ही आ जाती।

सर्वेक्षणकर्ताओं को भूलना नहीं चाहिए कि वे जनमत बताते नहीं, जनमत बनाते भी हैं। उन्हें यह भविष्यवाणी करने की उतावली क्यों रहती है कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, कौन कितना आ रहा है, कौन कितना जा रहा है? अरे भैया, वोटर को खुद क्यों नहीं तय करने देते कि किसे आना है, किसे जाना है, किसे कितना आना है, किसे कितना जाना है? तुम दाल-भात में मूसलचन्द बनने की आकांक्षा क्यों रखते हो? पढ़ने-लिखने वाले आदमी हो, पढ़ो-लिखो। राजनीति में क्यों पड़ते हो? क्या कहा, यह तुम्हारा पेशा है? क्या बताया, तुम्हें इसके लिए मोटे पैसे मिलते हैं? तब तो भैया, तुम भी मेरी तरह बिजनसमैन ही निकले। हम वोट से कमाते हैं, तुम वोट की दिशा बता कर कमाते हो। फिर बीच-बीच में हमारी आलोचना क्यों करते हो? हम दोनों ही इस पूँजीवादी व्यवस्था की जोंक हैं। एक जोंक को दूसरी जोंक के हितों पर प्रहार करने का कोई अधिकार नहीं है।

लोगों को यही समझाने के लिए ही तो मैं आई हूँ। मैं ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए न मेरे पास समय है और न इसमें मेरी दिलचस्पी है। क्या हनुमान जी हनुमान चालीसा पढ़ा करते थे? क्या रामचन्द्र को वाल्मीकि रामायण याद थी? गीता लिखवाने के बाद कृष्ण ने कितनी बार गीता का पाठ किया होगा? क्या जीसस को मालूम था कि बाइबिल में उनके बारे में क्या लिखा जा रहा है? मेरी स्थिति यही है। जो इतिहास

बनाते हैं, वे इतिहास पढ़ते नहीं हैं। मुझे आगे के बारे में सोचना है कि वर्तमान को रगड़ते रहना है? मैं वर्तमानजीवी होती, तो इतिहास बनाने के लिए टाइम कहाँ से निकाल पाती?

इसलिए जब मेरे चाटुकार आ-आकर मुझे यह बताते हैं कि मेरे बारे में बार-बार यह लिखा जा रहा है कि दलित-ब्राह्मण संयोग कर मैंने कमाल कर दिया, तो मुझे हँसी छूटने लगती है। मुझे दलितों से क्या मतलब? जब कहीं दलितों पर जुल्म होता है, उनके घर जलाए जाते हैं, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत लूटी जाती है, तो मैं कभी चीखती हूँ? कभी चिल्लाती हूँ? कभी ऐसे घटना स्थलों का दौरा करती हूँ? मैंने कभी दलितों के लिए कोई आंदोलन किया है? लोग मुझे बेकार ही दलितवादी कहते हैं। मैं मायावादी हूँ। मैंने बहुत पहले ही देख लिया था कि माया ही सत्य है। इसी तरह, मुझे ब्राह्मणों से भी क्या मतलब है? दलित मेरे लिए दाल-भात हैं और ब्राह्मण दही-मिठाई। इन दोनों को मिलाने से ही भोजन में पूर्णता आती है। पहले मैं सिर्फ भात-दाल पर आश्रित रहती थी और सोचती थी कि आज नहीं तो कल दही-मिठाई भी मिल जाएगी। पर थोड़ा समय बीतते ही दही-मिठाई वाले मेरा दाल-भात भी छीन लेते थे। तब मैंने तय किया कि दही-मिठाई का इंतजाम भी मुझे ही करना होगा। जैसे ही मैंने यह शुरू किया, मेरी थाली भरने लगी। और लो, मैं आ गई।

यह भी मेरे लिए कम अचरज की बात नहीं है कि लोग मुझसे तरह-तरह की उम्मीदें जताने लगे हैं। कल एक अमेरिकी पत्रकार आया। पूछने लगा कि सोशल इंजीनियरिंग का यह फार्मूला आपने कैसे ईजाद किया? मैंने साफ-साफ कह दिया, 'न मैं सोशल हूँ, न मैंने इंजीनियरिंग पढ़ी है। मैं राजनीति करती हूँ और अपने राजनीतिक अनुभवों से मैंने यह सबक सीखा है कि सब पर हुकूमत करनी है, तो सबको साथ लेकर चलना होगा। सिर्फ दलित मुझे जहाँ तक पहुँचा सकते थे, उन्होंने मुझे पहुँचा दिया। इससे आगे वे मुझे नहीं ले जा सकते। तो मुझे नई जमीन तोड़नी पड़ी। फसल भी अच्छी हुई है।' वह हँसने लगा। शायद उसके देश के नेता इतनी बेबाकी से अपने मन की बात नहीं कहते होंगे। फिर उसने पूछा, 'अब आगे आप क्या करेंगी?' मैंने और भी बेबाकी से कहा, 'कुछ करना ही होता, तो मैं राजनीति में क्यों आती? समाज सेवा नहीं करती।' उसने पूछा, 'फिर भी? सत्ता में आने के बाद तो कुछ न कुछ करना ही होता है।' मैंने जवाब दिया, 'वही करूँगी, जो पहले करती थी। भारत की जो हालत है, उसमें कुछ भी करो, तो बवाल हो जाता है। इसलिए कुछ करने से कुछ न करना ही अच्छा है।'

वह समझदार था। समझ गया। भारत के पत्रकार पता नहीं क्यों यह मोटी-सी बात नहीं समझ पाते। पश्चिम बंगाल के वामपंथी तब तक सुखी थे जब तक वे कुछ नहीं करते थे। कुछ करने की ठानी, तो सिर पर ओले पड़ने लगे। मेरे लिए इतना ही काफी है कि मैं आ गई। जब मेरे लिए इतना ही काफी है, तो दूसरों के लिए भी इतना ही काफी नहीं होना चाहिए?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

वह स्कूल खोलेगा

राजकिशोर

वह आजकल बहुत उत्तेजित है। ट्रांसपोर्ट के अपने कारोबार से वह ऊबा हुआ है। इस क्षेत्र में जितना कुछ किया जा सकता था, वह कर चुका। इस समय उसके पास तीस ट्रक हैं। इनमें से प्रत्येक ट्रक उसके लिए एक छोटी टकसाल है। लेकिन इन टकसालों में अब कोई चार्म नहीं रहा। शुरू में हर नए ट्रक में उसे लक्ष्मी माता के दर्शन होते थे। अब लगता है कि खटाल में एक और भैंस आ गई है। बोर... महाबोर...। वह सोचेगा, अब कुछ नया करना ही होगा। कोई ऐसा काम, जिसमें पैसा भी हो और प्रतिष्ठा भी।

वह कुछ दिनों तक अखबार ध्यान से पढ़ेगा। अंग्रेजी बहुत थोड़ी जानने के बावजूद वह शहर के सभी अंग्रेजी अखबार मँगाएगा ही नहीं, पढ़ने की कोशिश भी करेगा। धीरे-धीरे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि इस समय देश शिक्षा के संकट से गुजर रहा है। स्कूलों में प्रवेश नहीं मिलता। बड़े-बड़े लोगों को सिफारिश भिड़ानी पड़ती है। 60-70 प्रतिशत अंक पानेवालों से तो किसी भी अच्छे कॉलेज में बात तक नहीं की जाती। उन्हें कहा जाता है, जाओ, हिन्दी, संस्कृत, पाली आदि विभाग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आजकल नए-नए विश्वविद्यालय खुल रहे हैं। इनमें से कुछ तो विदेश से भी मान्यता हासिल कर चुके हैं। इन प्राइवेट विश्वविद्यालयों में ली जानेवाली फीस विश्वविद्यालयों से सिर्फ तीस से चालीस गुना ज्यादा है। वह इस विषय पर गंभीरता से सोचेगा।

शिक्षा से कभी उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं रहा। हाई स्कूल किसी तरह कर लिया था। तभी वह अपने पिता की टायर-ट्यूब ठीक करने की दुकान में काम करने लगा था। काम करते हुए ही उसने बीकॉम की पढ़ाई पूरी कर ली थी। नम्बर ज्यादा नहीं आए, तो क्या। वह ग्रेजुएट होने का दावा तो कर सकता था। कारोबार के नए क्षेत्रों पर विचार करते समय उसे एहसास होगा कि काश, उसे शिक्षा के बारे में कुछ और मालूम होता। इस सिलसिले में वह अपने शिक्षित मित्रों की खोज करेगा। उन्हें खाने पर बुलाएगा। उनसे समझने की कोशिश करेगा कि किसमें ज्यादा फायदा है - स्कूल खोलने में या कॉलेज खोलने में, किसमें कितनी पूँजी की जरूरत होगी, जमीन कितनी चाहिए, स्टाफ कितना लगेगा, सैलरी कितनी देनी होगी, कोई लफड़ा तो नहीं है? सभी ओर से कंविंस्ड हो जाने के बाद वह फैसला करेगा कि कॉलेज के धन्धे में बाद में पड़ेंगे, पहले स्कूल ही खोल लें। इस बिजनेस की पूरी जानकारी हो जाने के बाद ही कॉलेज सेक्टर में जाना ठीक रहेगा। हाथी के शिकार करने के पहले लोमड़ियों के शिकार का तजुरबा हासिल करना जरूरी है। नहीं तो घर के रहेंगे न घाट के।

सबसे पहले वह रियासती दर पर सरकारी जमीन हासिल करने के लिए कोशिश करेगा। इसके लिए वह जान लड़ा देगा। शिक्षा विभाग में संपर्कों का पता लगाएगा। इसी दौरान वह स्थानीय विधायक से दोस्ती गाँठेगा। उसके घर

आना-जाना शुरू करेगा। फिर दोनों में मिलीभगत की शुरुआत होगी। विधायक से नेट मुनाफे में दस परसेंट और हर साल दस एडमिशन पर बात फाइनल हो जाएगी। विधायक दिन-रात एक कर सस्ती दर पर जमीन दिला देगा। सरकार शर्त लगाएगी कि स्कूल की दस प्रतिशत सीटें बीपीएल परिवारों के लिए आरक्षित रहेंगी। वह हँसते-मुस्कुराते इस शर्त को मंजूर कर लेगा। तब तक वह जान चुका होगा कि यह क्लॉज बेकार है - कोई भी स्कूलवाला इस शर्त का पालन नहीं करता।

फिर वह बिल्ंिडग बनाने के चक्कर में पड़ेगा। वह हिसाब लगाएगा कि अपनी बिल्ंिडग बनाना ठीक है या किराए पर जगह लेना। किराएवाला विकल्प उसे ज्यादा जमेगा। मिली हुई जमीन के चारों ओर चारदीवारी बना कर उसे छोड़ देगा। बस एसबस्टस की छत लगा देगा। फिर उसे गोदाम के रूप में कई फर्मों को किराए पर दे देगा। शिक्षा विभाग के अधिकारियों की मुट्ठी गरम कर वह निश्ंिचत हो जाएगा कि इस बारे में सरकार की ओर से कोई पूछताछ नहीं होगी। गोदाम के किराए से आनेवाली रकम से वह स्कूल के लिए ली गई बिल्ंिडग का किराया भरेगा। अब स्टाफ की खोज शुरू होगी। एक रिटायर टीचर को वह प्रिंसिपल बनाएगा। उसे आधी सैलरी देगा। कुछ अच्छे स्कूलों से वह अच्छे टीचर तोड़ेगा, ताकि स्कूल के विज्ञापन में लिखा जा सके कि हमारी फैकल्टी में अनुभवी और प्रतिष्ठित स्कूलों के पूर्व-शिक्षक शामिल हैं। बाकी जगहें उन शिक्षिकाओं से भरी जाएँगी जो नौसिखुआ होंगी और जिनके लिए तीन से पाँच हजार तक की तनखा काफी होगी। इन्हें जितना वेतन दिया जाएगा, उससे काफी ज्यादा स्कूल रजिस्टर में चढ़ाया जाएगा। छात्रों के लिए दो बसें किराए पर ली जाएँगी।

फिर एक दिन उद्घाटन समारोह होगा। शिक्षा मंत्री को प्रमुख अतिथि बनाया जाएगा। वे अपने भाषण में कहेंगे कि मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि समाज सेवा की भावना से प्रबुद्ध नागरिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए आगे आ रहे हैं। कुछ देर तक विद्या के महत्व पर प्रकाश डालने के बाद वे कहेंगे कि मैं तो गाँव के स्कूल में पढ़ा हूँ, सो मेरा मन कर रहा है कि इस नए भव्य स्कूल की पहली कक्षा में एडमिशन ले लूँ, लेकिन मेरी उम्र को देखते हुए प्रिंसिपल साहब शायद मुझे दाखिला नहीं दें। इस पर श्रोताओं में हँसी की लहर फैल जाएगी।

इसके बाद का किस्सा मुख्तसर होगा। उसका स्कूल चलने लगेगा। वह एक के बाद एक कई स्कूल खोलेगा। क्रमशः उसके ट्रकों की संख्या घटती जाएगी और स्कूलों की संख्या बढ़ती जाएगी। एक दिन उस पर अपने ही एक स्कूल की शिक्षिका के यौन शोषण का आरोप लगेगा और वह गिरफ्तार हो जाएगा। लेकिन दूसरे ही दिन छूट जाएगा। टीवी के खोजी पत्रकार पता लगाते रह जाएँगे कि वह शिक्षिका आखिर कहाँ चली गई।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

वियोगी बाबा

राजकिशोर

बाबाओं के प्रति मेरे मन में शुरू से ही श्रद्धा रही है। सच तो यह है कि मैं बचपन में खुद भी बाबा बनना चाहता था। उन दिनों बाबा-सम्राट रजनीश की बहुत धूम थी। मैंने देखा कि हर्रे-फिटकरी लगे बिना भी रंग कितना चोखा आ सकता है। पार्ट-टाइम काम मुझे बहुत पसंद है। नौकरी की नौकरी, आजादी की आजादी। बाबावाद में इसकी पूरी गुंजाइश दिखती थी। सुबह या शाम दो घंटे भाषण दो, बाकी समय मस्त रहो। अपनी एक कमी के कारण मैं इस धंधे में जाते-जाते बचा। कमी यह थी कि मैं बहुत कम उम्र में एक समाजवादी सज्जन के असर में आ चुका था। रोज झूठ बोलने का पेशा अपनाने की हिम्मत नहीं हुई। इसलिए जब भी टीवी के रंगीन परदे पर बाबा रामदेव को देखता हूँ, तो उनके प्रति सहज ही श्रद्धा उमड़ आती है। सबसे बड़ा कमाल यह है कि उन्होंने योग को देश भर में चर्चा का विषय बना दिया है। हर कोई जानता है कि भारत वियोग का नहीं, योग का देश रहा है। सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती...अहा, कितनी सुंदर जोड़ियाँ हैं। पूजा बजरंगबली की भी होती है, पर अपने कारण नहीं, उस युगल-मूर्ति के कारण जिसकी सेवा में उन्होंने अपनी जवानी होम कर दी। पंत जी (आज की पीढ़ी के लिए : गोविंद वल्लभ पंत नहीं, सुमित्रानंदन पंत) ने कहा, वियोगी होगा पहला कवि...। यह कविता वियोग की नहीं, योग को महत्व देने की कविता है। जब दो जन मिलते हैं, तब अपने आप कविता पैदा हो जाती है। वियोग में वह सिर्फ लिखी जाती है।

योग का असीम महत्व जानते हुए भी पता नहीं क्यों बाबा रामदेव समलैंगिकों को वियोग की स्थिति में देखना चाहते हैं। पहले समाजवाद के और बाद में बाबा रामदेव के प्रभाव से मैं यह मानने लगा था कि मनुष्य-मनुष्य सब एक हैं। क्या स्त्री, क्या पुरुष। दोनों को ही भगवान ने बनाया है। इनमें भेद हो सकता है, विभेद नहीं। इसलिए पुरुष-स्त्री साथ रहें, जैसा कि वे रहते आए हैं, या पुरुष-पुरुष या स्त्री-स्त्री, इससे क्या फर्क पड़ता है? साथ ही रहते हैं, एक-दूसरे के साथ थुक्का-फजीहत तो नहीं करते। आपस में प्यार ही तो करते हैं, लड़ते-झगड़ते तो नहीं। फिर समलैंगिकों को आशीर्वाद देने के बजाय बाबा उनके खिलाफ अदालत जाने की क्यों सोच रहे हैं, समझ में नहीं आता।

बाबा को क्या यह पता नहीं कि अदालत में सत्य का परीक्षण नहीं हो सकता? अदालत का सत्य जो भी हो, वह क्षणिक होता है। भारत की एक अदालत ने भगत सिंह को फाँसी पर चढ़ा दिया था। आज उस अदालत के जज दिखाई पड़ जाएँ, तो जनता उन्हें मार-मार कर भरता बना देगी। विदेश की दर्जनों अदालतों ने 'लेडी चैटर्जी'ज लवर' को अश्लील करार दिया था। लोग छिप-छिप कर इस किताब को पढ़ते थे। फिर वह अदालत आई जिसने कहा कि इस उपन्यास में कहीं भी अश्लीलता नहीं है। इसलिए मैं तो ईश्वर की अदालत को छोड़ कर और किसी

अदालत में विश्वास नहीं करता। मैं समझता था कि बाबा रामदेव भी ईश्वरवादी हैं। इसलिए यह देख कर बड़ी हैरत हुई कि वे ईश्वर से ज्यादा वेतनभोगी जजों पर भरोसा करते हैं। क्या जजों में भी समलैंगिकता नहीं हो सकती?

बाबा रामदेव का कहना है, समलैंगिक संबंध अप्राकृतिक है। बाबा अपनी जिम्मेदारी पर ऐसा कहते हैं तो होगा। पर इस दुनिया में सर्वज्ञ कौन है? अंतिम तौर पर यह जानने का दावा कौन कर सकता है कि क्या प्राकृतिक है और क्या सांस्कृतिक। विद्वान लोग बताते हैं कि जो सांस्कृतिक है, वह प्राकृतिक भी है। यदि मानव प्रकृति में सांस्कृतिक होने की स्वाभाविक चाह न होती, तो संस्कृति का इतना बड़ा ताना-बाना कैसे खड़ा होता? फिर मानव अपनी गलतियों से सीखता भी है। सौ साल पहले तक राजशाही प्राकृतिक लगती थी। आज लोकशाही ही प्राकृतिक लगती है। आज जो राजशाही का समर्थन करेगा, उसे पागल करार दिया जाएगा।

इसी तरह, हो सकता है, आज समलैंगिकता ऊटपटाँग चीज लगती हो, पर कल यही स्वाभाविक लगने लगे। स्त्रियों के जोड़े एक तरफ, पुरुषों के जोड़े एक तरफ - अभी भी धार्मिक सत्संग में, क्लबों में, शादी-ब्याह के मौकों पर क्या स्त्री-पुरुष अलग-अलग नहीं बैठते? विषमलैंगिकता को आग और फूस के साथ की तरह खतरनाक माना जाता है। इससे बेहतर है कि आग आग के साथ रहे और फूस फूस के साथ। या आग में फूस के गुण पैदा हो जाएँ और फूस में आग के। फिर, कौन किसके साथ घर बसाता है, इससे पड़ोसियों को क्या मतलब? दूसरों के बेडरूम में झाँकना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सोच रहा हूँ, बाबा से जल्द ही मिलूँ और उनसे पूछूँ कि योग अच्छा है या वियोग।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सूखे के समय

राजकिशोर

सूखा पीड़ितों के लिए राहत सामग्री जुटाने के लिए जब मैं दयाल साहब के घर पहुंचा, तो वे नहा रहे थे। उस समय नौ बज कर पंद्रह मिनट हुए थे। दयाल साहब के कर्मचारी ने (नौकर कहने से कर्मचारी कहना मुझे बेहतर लगता है, हालांकि दोनों शब्दों का मूल अर्थ एक ही है) मुझे बैठकखाने में आदर के साथ बिठाया और तुरंत एक गिलास ठंडा पानी पेश किया। थोड़ी देर बाद वह फलों का रस ले आया, तब भी दयाल साहब नहा रहे थे। मुझे शक हुआ कि कहीं वह महीने भर का कोटा आज ही तो नहीं निपटा रहे हैं। फिर थोड़ी देर बाद उनका कर्मचारी भाप छोड़ती हुई चाय का बड़ा-सा प्याला लाया, तब भी दयाल साहब नहा रहे थे। अब मुझे शक हुआ कि कहीं यह मुझसे न मिलने का बहाना तो नहीं है!

दस बज कर बीस मिनट पर दयाल साहब बाथरूम से प्रसन्नचित्त निकले। दो सुदर्शन तौलियों में लिपटे वे भारत के भविष्य की उस सुंदर तसवीर की तरह लग रहे थे जिसके विविध रूप हमारे आशावादी विद्वान और संपादक हमारी मायूसी को दूर करने के लिए अकसर पेश करते रहते हैं। मुझे अपनी समझ पर झेंप आ गई। दयाल साहब ने मुझसे दोस्ताना हाथ मिलाने के बाद सामने के सोफे पर बाबा रामदेव की मुद्रा में बैठते हुए कहा, 'आज छुट्टी का दिन है। सो सोचा, जम कर नहा लूँ। घंटे भर पानी में पड़ा रहा। बड़ी दिव्य अनुभूति होती है!' फिर ठठा कर हँसे, 'अगर मैं कवि होता, तो कहता, जैसे भगवान विष्णु क्षीर सागर में लेटे रहते हैं, मुझे भी वैसा ही अनुभव हो रहा था।' मुझे मुसकराना जरूरी लगा, 'बस लक्ष्मी जी की कमी थी।' दयाल साहब एक बार फिर ठठा कर हँसे, मानो यह कोई मजाक हो।

तभी उनके दोनों मोबाइलों पर धड़ाधड़ फोन आने लगे, जैसे सभी को पता था कि वे कितने बजे स्नानघर से निकलेंगे। मुझे धीरज रखने का इशारा करते हुए दयाल साहब ने सभी से दो-दो मिनट बात की और पाँचवाँ फोन निपटाने के बाद दोनों मोबाइल बंद कर दिए। कर्मचारी को बुला कर आदेश दिया कि कोई भी फोन आए, तो कहना कि साहब बाथरूम में हैं। फिर मेरी ओर मुखातिब हुए, 'यार, ऐसा है कि परसों से पेरिस में विश्वव्यापी जल संकट पर इंटरनेशनल सेमिनार हो रहा है। मुझे उसके एक सेशन की सदारत करनी है। इसी सिलसिले में दिन भर फोन आते रहते हैं।... और तुम्हारा क्या हाल है? आजकल क्या लिख रहे हो?'

मैं कहना चाहता था, आजकल कोई कुछ नहीं लिख रहा है, सभी एक-दूसरे को दुहरा रहे हैं। कुछ बोलूँ, इसके पहले ही दयाल साहब ने पूछ लिया, 'लेकिन यह रोनी सूरत क्यों बना रखी है? लगता है, कई दिनों से बाथरूम में गए ही नहीं हो।'

वह फिर हँसे। मैं फिर झेंपा। फिर भी कुछ कहना जरूरी था, 'दरअसल, जब से सूखे की खबर आई है, मैं हफ्ते में एक बार ही नहा रहा हूँ। दिन में दो बार भीगे तौलिए से बदन पोंछ लेता हूँ।'

दयाल साहब अचानक गंभीर हो गए। बोले, 'मैं तुम्हारी भावना की कद्र करता हूँ। पर सूखे से निपटने का यह कोई तरीका नहीं है। तुमने यह फिकरा नहीं सुना कि मरों के साथ कोई मर नहीं जाता?'

मैं चुप रहा, वे बोलते रहे।

'सूखे की समस्या अब स्थानीय समस्या नहीं रह गई है। इस पर बहुत बड़े पैमाने पर विचार-विमर्श होना चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि इस सब्जेक्ट पर अभी तक कायदे का कुछ रिसर्च हुआ ही नहीं है। पेरिस कान्फ्रेंस में मैं खुद एक बहुत बड़ा रिसर्च प्रपोजल रखने जा रहा हूँ। मेरा प्रस्ताव है कि संसार भर में जहाँ-जहाँ भी पिछले दस सालों में सूखे की टेंडेंसी देखी जा रही है, वहाँ की क्लाइमेटिक कंडीशंस का विस्तृत अध्ययन करने के लिए एक इंटरनेशनल कमीशन सेटअप किया जाए। अब फुटकर स्टडीज और फुटकर समाधानों से काम चलनेवाला नहीं है। मेरा मन है कि अगर यह कमीशन बन जाए, तो अगले पाँच-सात साल इसी काम में अपने को होम कर दूँ।'

मैं फुसफुसाया, 'मेरे कुछ पर्यावरणवादी मित्रों का कहना है कि अगर देश भर में छोटी-छोटी नहरों का जाल बिछा दिया जाए, तो कम से कम खेती का तो नुकसान नहीं होगा। बताते हैं कि हमारी खेती का बहुत बड़ा हिस्सा अब भी मानसून पर निर्भर है। यह देश हित में नहीं है। नहरें बिछाने का काम, पिछले साठ वर्षों में बड़ी आसानी से किया जा सकता था।'

दयाल साहब की भृकुटि तन गई, 'सो तो है, सो तो है। हमने खेती की उपेक्षा करके बहुत बड़ा अनर्थ किया है। मैं तो कहता हूँ कि इस मामले में हम सभी अपराधी हैं। मेरा बस चले तो ऐसे सभी एक्सपर्ट्स को फाँसी पर चढ़ा दूँ, जिन्होंने भारत की गरीब जनता के साथ इतना बड़ा धोखा किया है।...'

मैं दंग। दंग से ज्यादा स्तब्ध। लगा कि सूखा पीड़ितों के लिए राहत भेजने की बात छेड़ने का यही मौका है। तभी दयाल साहब बोले, 'सोचता हूँ, पेरिस में यह मुद्दा भी क्यों न उठा दूँ कि सूखा राहत कार्यक्रमों के लिए एक इंटरनेशनल फंड बनाया जाना चाहिए - वाइल्डलाइफ फंड की तरह। ब्यूटीफुल आइडिया! आज ही इस पर काम करता हूँ।'

मैंने महसूस किया, इस समय मुझसे ज्यादा अप्रासंगिक आदमी कोई नहीं है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सच का सामना

राजकिशोर

एक सच कई दिनों से मेरा पीछा कर रहा है। बहुत दिनों तक मैंने सच का पीछा किया था। समझ लीजिए, बचपन से ही। अब इस काम में मेरी रुचि नहीं रही। मैंने हर क्षेत्र में पाया कि सच बहुत भयानक है। राजनीति में, आर्थिकी में, समाज में, शिक्षा व्यवस्था में, नौकरी के तंत्र में, पत्रकारिता में, मीडिया में, बुद्धिजीवियों में, धर्माचायों में, श्रमिक नेताओं में, विवाह में, विवाह के बाहर, प्रेम में, अप्रेम में, श्रद्धा में, श्रद्धाहीनता में, कार्यालयी दोस्तियों में, साहित्यिक दुश्मनियों में, अधेड़ों में, युवाओं में, बच्चों में, व्यवसाय में, उद्योग में, ठेकेदारी में और यहाँ तक कि वात्सल्य में भी। सच की खोज करते-करते मैं घबरा गया। अन्त में मैंने यूटोपिया की शरण ली। पर वहाँ भी घपला था। किसी भी यूटोपिया को मैंने परफेक्ट नहीं पाया। सब में कुछ न कुछ गड़बड़ी थी। तब मैंने निश्चय किया कि सच और झूठ के चक्कर से बाहर निकल आना चाहिए। जैसे हम आलू या गोभी को लेते हैं, वैसे ही मैं आदमियों को लेने लगा। वे भी मुझे आलू या गोभी की तरह ही लेते थे। इस तरह जो समीकरण बना, वह ज्यादा यथार्थ, ज्यादा कामकाजी था। इस रास्ते में शुरू में बहुत उलझन थी, पर एक बार मूल सिद्धान्त को मान लेने के बाद जीना आसान हो जाता है। लेकिन सच के दायरे से बाहर निकल आने के बाद आप सच से मुक्त थोड़े ही हो जाते हैं। जब आप सच का पीछा करना छोड़ देते हैं, तब सच आपका पीछा करना शुरू कर देता है।

शुरुआत एक छोटी-सी घटना से हुई थी। हम लोग एक पार्टी में बैठे थे। खाना जितना लजीज था, संगत उससे कहीं ज्यादा लजीज थी। मेरे सिवाय सभी अपने-अपने क्षेत्र के मास्टर थे। अचानक किसी के मुँह से यह सवाल उछला, क्यों न हम लोग एक-एक कर बताएँ कि हमने अपनी जिंदगी में किसे तहे-दिल से प्यार किया है? विषय बहुत मजेदार था। प्यार होता ही मजेदार है। दो-चार मिनट की खामोशी के बाद हरएक ने बताना शुरू किया कि उसने किसे सबसे ज्यादा प्यार किया था। किसी ने कहा, कला को, तो कोई बोला, साहित्य को। किसी को अपनी बीवी सबसे प्यारी लगी थी, तो किसी ने उस लड़की के बारे में बताया जो उसकी जिंदगी में आई, पर परिवार में नहीं आ सकी। किसी ने अपने शिक्षक का नाम लिया, तो किसी ने अपनी माँ को यह ओहदा दिया। एक ने अपने एक दोस्त को सबसे ज्यादा प्यार किया था, तो एक किसी फिल्म अभिनेत्री पर मरता था। क्रिकेट और टेनिस का भी जिक्र हुआ। सिर्फ दो आदमी कुछ बोल नहीं पाए। उस महफिल में एक ही स्त्री थी। वह बहुत फ्रैंक और बिंदास थी। पर उसकी जबान खुली ही नहीं। दोस्तों ने बहुत इसरार किया, पर उसकी आँखों में खालीपन भरा हुआ था। जब जिदें बढ़ चलीं, तो वह वॉशरूम की तरफ चली गई। लौटी, तो लगा, वह खूब रो कर आई है। उसकी आँखों का सूनापन और बढ़ गया था।

दूसरा मैं था। मेरे पास भी कोई जवाब नहीं था। मैंने कुछ कहने के लिए कई बार मुँह खोला, फिर रुक गया। मैं समझ रहा था कि अभी तक जिन लोगों ने अपने-अपने प्रेम-पात्रों का नाम लिया था, उनमें से किसी ने भी पूरा सच नहीं कहा था। या वह सच कहा था, जो सिर्फ उनकी निगाह में सच था। पर मैं इस मौके पर झूठ नहीं बोलना चाहता था। या, यों कहिए कि मैं जो भी बोलना चाहता था, वह उसी क्षण झूठ लगने लगता था।

बस उसी समय से सच का सामना मेरे गले लग गया। चार-पाँच दिनों तक सवाल वही था जो वहाँ पूछा गया था यानी तुमने सबसे ज्यादा किसे प्यार किया है? फिर उसका रूप बदल गया। अब सच की चुनौती यह थी : क्या तुमने किसी को प्यार किया भी है? मैंने अपने आपको कभी कोई उत्तर दिया, कभी कोई। व्यक्तियों से लेकर साहित्य, अध्ययन, बौद्धिकता और समाज, राष्ट्र, विश्व, मानवता आदि से होते हुए लोकतंत्र, समाजवाद, बराबरी आदि विषयों के इर्द-गिर्द मँडराता रहा। सत्य को प्यार किया है या नहीं, इस पर तो पूरे दो दिन सोचता रहा। लेकिन कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिल सका। फिर यह हैरत होने लगी कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मैंने इतना लंबा जीवन जिया और किसी को प्यार ही नहीं किया हो! यह अगर सच है, तो शर्म की बात है। प्यार पर ही तो यह दुनिया टिकी हुई है। जिसकी जिंदगी में प्यार नहीं आया, उसका जीना न जीना बराबर है।

अन्त में उत्तर मैंने खोज ही लिया। वह बहुत सीधा-सादा था। मैंने अपनी डायरी में लिखा : हाँ, मैंने एक आदमी को तहे-दिल से प्यार किया है। वह मैं खुद हूँ। उसके बाद कुछ देर तक डायरी के उस पन्ने को घूरता रहा। फिर लिखा : नहीं, अपने आपको भी मैंने तहे-दिल से प्यार नहीं किया।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सबसे बड़ी चुनौती

राजकिशोर

आज सुंदरलाल जी बहुत खुश नजर आ रहे थे। अड्डे पर पहुँचते ही उन्होंने घोषणा कर दी कि आज मैं सबको चाय पिलाऊँगा। मैंने पूछा, सुंदरलाल जी, आज तो आप बहुत खुश नजर आ रहे हैं। बात क्या है?

सुंदरलाल - हाँ, आज मैं वाकई खुश हूँ। अभी तक मुझे पता नहीं था कि देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती क्या है। अब पता चल गया है।

मैंने जानना चाहा, क्या है?

सुंदरलाल - देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती है, नक्सलवाद।

अनवर भाई बोल उठे - अच्छा! लेकिन इस नतीजे पर आप पहुँचे कैसे? मैं तो समझ रहा था कि देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती है, सांप्रदायिकता। अभी गुजरात में भाषण करते हुए सोनिया गांधी ने ऐसा ही कहा था। देश का बुद्धिजीवी वर्ग तो 1992 से ही यही बता रहा है। तब से आज तक उन्होंने किसी अन्य चुनौती की ओर इशारा तक नहीं किया। क्या दिसंबर 2007 में स्थिति कुछ बदल गई है?

ऐसे मौके पर सपना बहन क्यों चुप रहतीं। उन्होंने कहा - मेरे ख्याल में, सांप्रदायिकता से बढ़ कर चुनौती है, मर्दवाद। मर्दवाद से दबी हुई स्त्रियाँ सांप्रदायिकता का ठीक तरह से सामना नहीं कर सकतीं। उन्हें धर्म घुट्टी में ही पिला दिया जाता है। बाद में यही धर्म सांप्रदायिक लोगों के काम आता है। मैंने अभी-अभी राजेंद्र यादव की एक सौ बारहवीं किताब पढ़ी है। इसमें भी उनका कहना यही है कि जब तक मर्दवाद की मिट्टी पलीद नहीं की जाती, भारतीय समाज का विकास नहीं हो सकता। भारत का मर्द बहुत बदमाश है। वह सत्ता पर अपना एकाधिकार बनाए रखना चाहता है।

अनवर भाई ने चुटकी ली - यादव जी मर्द आदमी हैं। जो कुछ कहते हैं, खरी-खरी कहते हैं।

कपूर साहब - इस मामले में राजेन्द्र यादव गांधी की तरह हैं। गांधी जी को स्त्रियों का साथ बहुत पसंद था। राजेन्द्र जी ने भी अपने बारे में यह तथ्य स्वीकार किया है।

पूरी सभा में हास्य की लहर दौड़ पड़ी। बहुत कम हँसनेवाले रामसहाय जी के चेहरे पर भी मुस्कान आ गई। हमारे बीच वह अकेले दलित थे।

सुंदरलाल अभी तक इंतजार कर रहे थे कि ये छोटे-छोटे ब्रेक खत्म हों, तो वे अपनी बात कहें। मौका मिलते ही बोल उठे, आप लोग जानना चाहते हैं न कि नक्सलवाद के बारे में यह बात मुझे कैसे मालूम हुई? तो सुनिए, यह किसी ऐरे-गैरे का नहीं, हमारे प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का बयान है। प्रधानमंत्री झूठ क्यों बोलेंगे! उन्हें जरूर खुफिया एजेंसियों से खबर मिली होगी कि नक्सलवाद ही इस समय देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। देश को यह चेतावनी दे कर उन्होंने बहुत अच्छा किया। वरना नेता लोग तो असली खबर को हमेशा दबा देते हैं। मनमोहन जी ने यहाँ तक बता दिया है कि बेहतर हथियारों व विस्फोटकों से लैस ये वामपंथी उग्रवादी अपने हमले तेज कर सकते हैं। भाई, हम सबको सावधान रहना होगा।

कपूर साहब - इसका मतलब यह है कि नक्सलवादियों का सालाना बजट हमारी केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के सलाना बजट से ज्यादा है!

रामसहाय - सुंदरलाल जी, आप फिजूल में हमें डरा रहे हैं। दिल्ली नक्सलवाद-प्रभावित क्षेत्र नहीं है। यहाँ कोई हमला-वमला नहीं होनेवाला है।

अनवर - सर, आप क्या कहते हैं! यहाँ आए दिन विस्फोट होते रहते हैं। अगर बाहर से आ कर लोग दिल्ली में बसना छोड़ दें, तो आतंकवाद के कारण यहाँ की आबादी चार-पाँच साल में आधी हो जाए! अभी परसों ही पुलिस ने दो आतंकवादियो को पकड़ा था। वे क्रिसमस के मौके पर कनॉट प्लेस में कोई बड़ी घटना करनेवाले थे।

सपना - दिल्ली पुलिस आतंकवादियों को धड़ाधड़ पकड़ती रहती है, तब तो यह हाल है। वह आतंकवादियों का पीछा करना छोड़ कर गुंडों-बदमाशों को पकड़ने लग जाए, तब तो दिल्ली पर पूरी तरह से आतंकवाद का राज्य हो जाएगा।

रामसहाय - तो क्या आप लोग आतंकवाद को नक्सलवाद से बड़ी समस्या मानते हैं?

अनवर - इसमें शक ही क्या है? अभी हाल ही में विज्ञान भवन में आतंकवाद-विरोधी सम्मेलन हुआ था। उसमें हमारे प्रधानमंत्री ने ही कहा था कि आतंकवाद भारत के ही सामने नहीं, विश्व के सामने सबसे बड़ी समस्या है।

सपना - भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। जिसके मन में जो आए बोल सकता है। आप किसी की जबान नहीं बाँध सकते।

सुंदरलाल - सो तो है। पर आप मेरी जबान क्यों बाँधना चाहती हैं? मुझे पूरी बात बोलने तो दीजिए।

मैंने आश्वस्त किया - हाँ, हाँ, आप जरूर बोलिए। प्रधानमंत्री ने आगे क्या कहा?

सुंदरलाल - प्रधानमंत्री ने एक खास बात यह बताई कि पिछले कुछ सालों में नक्सलवादी गुटों की गतिविधियों के नए पहलू उजागर हुए हैं। वे अब प्रमुख आर्थिक ठिकानों को निशाना बना रहे हैं।

रामसहाय - ऐसा लगता है कि वे देश के तीव्र आर्थिक विकास से जलते हैं। अगर उनके मंसूबे सफल हो गए, तो हमारी विकास दर घट कर 9.6 हो जा सकती है। फिर हम महाशक्ति के रूप में चीन से प्रतिद्वंद्विता कैसे कर सकेंगे?

मैंने एक बार फिर हस्तक्षेप करना जरूरी समझा - यह नक्सलवादियों के अस्तित्व का भी सवाल है। मगर मनमोहन सिंह के बताए हुए रास्ते पर चलने से देश से गरीबी खत्म हो जाए, तो फिर नक्सलवादी क्या करेंगे?

सपना - मुझे तो लगता है कि मनमोहन सिंह और नक्सलवादी, दोनों का लक्ष्य एक समान है - गरीबी मिटाना। इसलिए उनमें आपसी द्वेष है।

रामसहाय - तो क्या देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती गरीबी हटाना है?

अड्डे पर सन्नाटा छा गया।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सर्वदलीय सांसद महासंघ का प्रस्ताव

राजकिशोर

अखिल भारतीय सर्वदलीय सांसद संघ का यह विशेष अधिवेशन एक आपातकालीन स्थिति पर विचार करने के लिए आहूत किया गया है। यह आपातकालीन स्थिति बाबूभाई कटारा की असंसदीय और लोकतंत्र-विरोधी गिरफ्तारी से पैदा हुई है। सांसदों को गिरफ्तार करने की सही जगह संसद है, जहाँ पुलिस का प्रवेश वर्जित है। सेना भी उन्हें गिरफ्तार कर सकती है, लेकिन इसके लिए उसे संसद भवन में प्रवेश करना पड़ेगा, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती। किसी भी स्थिति में, सांसद को हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह लोकतंत्र और संसदीय प्रजातंत्र की सरासर अवमानना है। पिछले कुछ समय से भारत में सांसदों की जिस तरह अवमानना की जा रही है, उन्हें परेशान और लज्जित किया जा रहा है, उनके स्वतंत्र आवागमन के अधिकार को रोका जा रहा है, उन्हें संसद भवन की जगह जेल और हवालात में ले जाया जा रहा है, उन्हें अकारण या मामूली कारणों से संसद से निष्कासित किया जा रहा है, इसे अखिल भारतीय सर्वदलीय सांसद महासंघ घोर शंका और अविश्वास की निगाह से देखता है और अपनी यह सुचिंतित राय प्रकट करता है कि यदि इस प्रकार की अशुभ प्रवृत्तियाँ जारी रहीं, तो भारत में संसदीय लोकतंत्र खतरे में पड़ जाएगा और हम पुलिस और न्यायपालिका की तानाशाही के शिकार होकर रह जाएँगे। हमारे कई पड़ोसी देशों में फौज की तानाशाही है। हम देश की शांतिप्रिय और लोकतंत्रवादी जनता को चेतावनी देना चाहते हैं कि पुलिस की तानाशाही फौज की तानाशाही से कम खतरनाक नहीं है।

भारत में लोकतंत्र के भविष्य को सुरक्षित करने और संसद की छीजती हुई मर्यादा को बहाल करने के लिए अखिल भारतीय सर्वदलीय सांसद महासंघ सर्वसम्मति से ये प्रस्ताव पारित करता है :

1. सांसद भारत की संप्रभु जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। अतः सांसदों का किसी भी प्रकार का अपमान वस्तुतः भारत की जनता का ही अपमान है।

2. जिस तरह भारत की जनता को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, उसके खिलाफ कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, उसे सजा नहीं दी जा सकती, उसी तरह उसके निर्वाचित प्रतिनिधि भी इन सब चीजों से मुक्त हैं। देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों के इस मूल अधिकार को संविधान के अगले संस्करण में शामिल करना आवश्यक है, नहीं तो भ्रम की वर्तमान स्थिति बनी रहेगी।

3. सांसद भी आखिर मनुष्य ही हैं और अपने समय और समाज की उपज हैं। वे उन्हीं उपायों से चुनाव जीत कर आते हैं, जिन उपायों से देश की सभी सरकारें चल रही हैं, सभी औद्योगिक घराने चल रहे हैं, खेल और साहित्यिक

संगठन और विभिन्न अकादमियाँ चल रहा हैं, फिल्म और कला की दुनिया चल रही है और विभिन्न प्रकार के आंदोलन और अभियान चल रही हैं। अगर सांसद इन उपायों का सहारा न लें, तो कोई भी व्यक्ति संसद के लिए नहीं चुना जा सकता और हमारी महान संसद एक खाली मकान बन कर रह जाएगी। इसलिए सांसदों से उच्चतर आचरण की माँग छोड़ देनी चाहिए और उन्हें हाड़-मांस के सामान्य मनुष्य की तरह आचरण करने की अबाधित स्वतंत्रता उपलब्ध होनी चाहिए। व्यवहार में तो ऐसा चल ही रहा है। कथनी और करनी की एकता के हित में अब इसे सिद्धान्त के स्तर पर भी राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

4. संसद भारत की राज्य व्यवस्था की क्रीम है और सांसद क्रीमी लेयर हैं। जब देश की सर्वोच्च न्यायपालिका ने क्रीमी लेयर के सिद्धान्त को मान्यता दे दी है, तो सरकार को भी इस सिद्धान्त को मान लेना चाहिए और अपने सभी अंगों को यह निर्देश जारी करना चाहिए कि सांसदों के साथ गैर-क्रीमी सलूक न किया जाए।

5. भारत में संसद ही कानून निर्माता है। इस तर्क से सांसद भी कानून निर्माता हुए। जो कानून बनाते हैं, वे कानून से ऊपर होते हैं। स्रष्टा हमेशा अपनी सृष्टि से बड़ा होता है, जैसे ईश्वर इस सृष्टि का अंग नहीं है, उससे परे है। इसलिए अखिल भारतीय सर्वदलीय सांसद महासंघ माँग करता है कि सांसदों को देश के कानूनी ढाँचे से परे घोषित किया जाए। जब तक सांसदों पर देश के वही कानून लागू होते रहेंगे, जो साधारण नागरिकों पर लागू होते हैं, तब तक संसद की मर्यादा खतरे में रहेगी और कोई भी ऐरा-गैरा पुलिस अधिकारी, जज या मजिस्ट्रेट सांसदों की आबरू के साथ खिलवाड़ करता रहेगा।

6. कबूतर एक बहुत ही निर्दोष और शांतिप्रिय पक्षी है। वह पंचशील का सार्वभौमिक प्रतीक है। पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे महान नेता समय-समय पर तथा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में कबूतर उड़ाया करते थे। अतः सांसदों के सन्दर्भ में कबूतरबाजी जैसे आशालीन मुहावरों के उपयोग पर तत्काल प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

7. कुछ सांसदों के आचरण से संसद की इज्जत पर धब्बा लगा है, यह हम भी मानते हैं। लेकिन इसका इलाज संसदीय लोकतंत्र के दायरे में ही खोजा जाना चाहिए, उससे बाहर नहीं। इसलिए अखिल भारतीय सर्वदलीय सांसद महासंघ की माँग है कि सांसदों की किसी भी अवांछित गतिविधि पर विचार सिर्फ संसद में ही हो और किसी भी सांसद को अर्थदण्ड से बड़ी सजा न दी जाए। जिस तरह उद्योगपतियों को जेल नहीं भेजा जाता, मामूली-सा अर्थदण्ड लेकर छोड़ दिया जाता है, वैसा ही सांसदों के साथ भी किया जाए। महासंघ सभी सांसदों से अनुरोध करता है कि वे हर महीने एक निश्चित धनराशि संसद के समेकित कोष में जमा कर दिया करें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन पर लगाए गए अर्थदंड की वसूली उस कोष से होती रहे और किसी के डिफाल्टर होने का खतरा न रह जाए। बल्कि जिस तरह सरकार ने सांसद कोष की व्यवस्था की है, उसी तरह सरकारी खर्च पर सांसद अर्थदंड कोष की स्थापना की जा सकती है। इसे न्याययुक्त बनाने के लिए ऐसा किया जा सकता है कि इस कोष में सरकार और सांसद बराबर-बराबर योगदान करें, जैसा कि पीएफ के मामले में होता है।

8. अन्त में, सांसदों का कितना सम्मान होता है, इसी से दुनिया यह अनुमान लगाएगी कि भारत में संसदीय लोकतंत्र कितना मजबूत है। इसलिए सांसदों के साथ व्यवहार का प्रोटोकॉल क्या हो, इस बारे में संसद एक पुस्तिका प्रकाशित करे और उसकी प्रतियाँ देश के हर नागरिक और संगठन को मुफ्त मुहैया कराई जाएँ। प्रत्येक पुलिस अधिकारी के लिए इस पुस्तिका को हमेशा अपने साथ रखना अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

स्वयंवर

राजकिशोर

मैंने कभी किसी का स्वयंवर नहीं देखा था। जब सुना कि राखी सावंत का स्वयंवर टीबी पर, माफ कीजिएगा, टीवी पर मंचित होने वाला है, तो उत्सुकता पैदा हो गई। उत्सुकता राखी में नहीं, स्वयंवर में थी। रोज सैकड़ों राखियाँ टीबी पर, फिर माफ कीजिएगा, टीवी पर आती रहती हैं। इसलिए किसी एक को महत्व देना लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है। लोकतंत्र का महत्व कम करके न आँकिए। यह लोकतंत्र का ही प्रताप है कि स्वयंवर सार्वजनिक रूप से दिखाया जा रहा है।

किताबों में जो पढ़ा है, उसके अनुसार स्वयंवर इस तरह खुलेआम नहीं होते थे। स्वयंवर का तरीका भी कुछ और था। संभावित वरों के लिए कोई कठिन परीक्षा रख दी जाती थी। जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता था, उसे चुन लिया जाता था। सीता और द्रौपदी के लिए वर इसी तरह खोजा गया था। दूसरी युवतियों के लिए स्वयंवर हुआ था या नहीं और हुआ था, तो उसमें जीत की कसौटी क्या रखी गई थी, यह मालूम नहीं। जो लोग प्राचीन इतिहास पर शोध करते हैं, उनके लिए यह एक अच्छा विषय है। अगर सौ-दो सौ स्वयंवरों के ब्यौरे निकाल कर ले आएँ, तो हम समझ पाएँगे कि उस जमाने में विवाह के लिए कौन-सी योग्यताएँ अपेक्षित मानी जाती थीं।

वैसे, यह बात समझ में नहीं आती कि राजकुमारी सीता के योग्य वर होने और शिव का धनुष उठा लेने की क्षमता के बीच संबंध क्या है। राजा जनक को सुयोग्य पात्र चाहिए था या कोई गँठा हुआ पहलवान? मुहावरे में कहा जाए तो कोई भी विवाह शिव का धनुष उठाने की चुनौती से कम नहीं है। लेकिन यह वर के बारे में जितना सच है, उतना ही वधू के बारे में भी सच है। मैत्रेयी पुष्पा वगैरह के उपन्यास पढ़ने पर तो लगता है कि यह चुनौती वधू के लिए ज्यादा है। स्त्रीवादी लेखिकाओं का कहना है कि प्रत्येक पुरुष एक तनी हुई प्रत्यंचा है। पर आजकल यह उपमा स्त्रियों पर भी लागू होने लगी है। ऐसा लगता है कि आधुनिक सभ्यता में स्त्री-पुरुष नहीं मिलते, बल्कि दो तनी हुई प्रत्यंचाएँ मिलती हैं। क्या पता पहले भी ऐसा होता हो। उन दिनों की व्यक्तिगत डायरियाँ नहीं मिलतीं। वरना हम समझ पाते कि अहल्या की मनःस्थिति क्या थी और उसके पति गौतम ऋषि के मन में किसी बात को लेकर कोई कुंठा तो नहीं थी। चंद्रमा को छिछोरा छोकरा माना जाता है। हो सकता है, अहल्या से उसका वास्तविक अनुराग रहा हो और अहल्या भी उस पर अनुरक्त रही हो। यह भी एक तरह का स्वयंवर ही था, जो गौतम ऋषि को ठीक नहीं लगा।

द्रौपदी को पाने के लिए जो शर्त रखी गई थी, उसमें वजन उठाने की शक्ति के बजाय सही निशाना लगाने की क्षमता पर स्वयंवर को केन्द्रित किया गया था। इस शर्त की प्रासंगिकता भी समझ में नहीं आती। आदर्श पति

जरूरी नहीं कि अपने मुल्क का सर्वश्रेष्ठ तीरंदाज ही हो। अगर उन दिनों स्वयंवर में सफल होने के लिए ऐसी ही ऊटपटाँग शर्तें रखी जाती थीं, तो यह दावा किया जा सकता है कि लड़कियों के, माफ कीजिएगा, राजकुमारियों के माता-पिता की नजर में सभी वर एक-जैसे ही थे। उनके बीच चयन की मुश्किल को दूर करने के लिए कोई ऐसी चित्र-विचित्र परीक्षा रख दी जाती थी जिसमें पास होना जरा कठिन हो। बस हो गया फैसला। जाहिर है, वर के चयन में वधू की कोई भूमिका नहीं होती थी। उसकी पसंद-नापसंद का खयाल नहीं रखा जाता था। कहलाता था स्वयंवर, पर जयमाला किसके गले में डालनी है, इसका फैसला वधू की आँखें, हृदय या मस्तिष्क नहीं, वह शर्त तय करती थी, जिस पर खरा उतरना स्वयंवर जीतने की कसौटी थी। मान लीजिए कि जिस राजकुमार ने यह शर्त पूरी कर दी, उसके निकट जाने पर राजकुमारी साँसों की बदबू से परेशान हो गई या राजकुमार का चेहरा देखकर उसकी आँखें मुँद गईं, तो क्या? उसने स्वयंवर जीता था और अब वही उसका भावी पति था। राजकुमारी के विकल्प खत्म हो चुके थे।

उस सब से तो राखी सावंत का ही स्वयंवर बेहतर है। वह खुद उम्मीदवारों को देख-परख रही है। काश, यह असली होता। लेकिन तब, सवाल-जवाब भी तो कुछ और होते। असली जीवन में स्वयंवर आँखें खोल कर नहीं, आँखें मूँद कर किए जाते हैं।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सांसदों की कीमत

राजकिशोर

क्या जमाना है! किसी भी चीज की कीमत स्थिर नहीं रही। जो शेयर कल तक सोने के भाव बिकते थे, अब वे मिट्टी की दर पर मिल रहे हैं। सोना कभी फिसलता है, कभी उछलता है। मकान कभी महँगे होते हैं, कभी सस्ते हो जाते हैं। बैंक भी अपनी ब्याज दर घटाते-बढ़ाते रहते हैं। कारों की कीमत भी ऊपर-नीचे होती रहती है। जो कर्मचारी कल अस्सी हजार रुपए महीने पाने के काबिल माना जाता था, वह आज अचानक टके के भाव भी महँगा हो जाता है। ठीक ही कहा था हमारे पुरखों ने, लक्ष्मी स्वभाव से ही चंचला है। पुरुष पुरातन की वधू ठहरी।

लेकिन लोकतंत्र? इसके बारे में हम लगातार अपने आपको और खुद से ज्यादा विदेशियों को लगातार आश्वस्त करते आ रहे हैं कि भारत में यह खूब मजबूत और सघन होता जा रहा है। भइया, हमें तो कभी ऐसा लगा नहीं। आखिर हम भी इसी लोकतंत्र में रहते हैं। लोकतंत्र मजबूत होता रहता, तो हम भी मजबूत और सघन होते जाते। लेकिन मुझे यह एहसास कभी नहीं हुआ। अन्याय का विरोध करते हुए कई बार पिटते-पिटते बचा हूँ। हर महीने कोई न कोई ऐसी खबर मिलती है, जिससे यह बात पुष्ट होती है कि अयोग्य व्यक्तियों की पूछ बढ़ती जा रही है। जब किसी महत्वपूर्ण पद पर नियुक्ति का मामला उठता है, तो सबसे पहले उन्हीं पर नजर जाती है। हम ठीक से नहीं जानते। हो सकता है, लोकतंत्र इसी तरह पुष्ट होता हो।

लेकिन लोकतंत्र पुष्ट हो रहा है, तो सांसदों की कीमत में अस्थिरता क्यों आ रही है? अभी उस दिन लोक सभा के स्पीकर सोमनाथ चटर्जी ने कुछ संसद सदस्यों को बताया कि तुम लोगों की कीमत एक रुपए की भी नहीं है। सभी को पता है कि संसद में कही गई बातों पर मानहानि का मामला ले कर अदालत में नहीं जाया जा सकता। संसद की विशेषाधिकार समिति को मामला सौंपा जा सकता है, लेकिन अब यह भी संभव नहीं। इस लोक सभा की मीयाद पूरी हो रही है। अगली बार जब लोक सभा जुड़ेगी, तो वह दूसरी लोक सभा होगी। वह इस लोक सभा के मामलों पर विचार नहीं कर सकेगी। इस तरह मामला रफा-दफा हो जाएगा। सांसदों की वास्तविक कीमत बताने के लिए स्पीकर महोदय ने सटीक समय चुना है।

सच कहूँ तो सोमनाथ चटर्जी की बात मेरी समझ में आई नहीं। कुछ समय पहले यही सांसद थे, जिनकी कीमत लाखों और करोड़ों में लगाई जा रही थी। यह साबित करने के लिए कुछ सांसद अपनी सांसद निधि ले कर लोक सभा में आए और एक करोड़ रुपए की गड्डियाँ भी उछालीं। पर लोक सभा को सदमा नहीं लगा। हलकी-सी तफतीश कर रुपए सरकारी खजाने में जमा करवा दिए गए। यह पता लगाने की जरूरत नहीं समझी गई कि ये रुपए आए कहाँ से थे और किसलिए किसने किसको दिए थे। स्पीकर महोदय को लगा होगा कि सांसदों की कीमत बढ़ रही है, तो यह जश्न मनाने की बात है न कि चिंता करने की।

मुझे लगता है कि एक करोड़ से सांसदों की वास्तविक कीमत का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुभवी लोगों का कहना है कि एक-करोड़-रुपया-रिश्वत कांड की जाँच संसद मार्ग थाने के किसी सब-इंस्पेक्टर को सौंप दी गई होती, तो बेहतर था। वह भी शायद वही करता जो लोक सभा ने किया। लेकिन इस बीच दो-तीन करोड़ रुपए खुद भी कमा लेता। आजकल के भाव से एक करोड़ की लाज बचाने के लिए इससे कम क्या खर्च करने होंगे। सरकार चाहती, तो उस पुलिस सब-इंस्पेक्टर से सौदा भी कर सकती थी कि इस कांड से तुम जितना चाहो, कमा लो - बस उसका आधा सरकारी खजाने में जमा कर देना। इससे एक नई परंपरा शुरू हो सकती थी। फिलहाल लोक सभा पर खर्च ही खर्च होता है। सब-इंस्पेक्टर यह साबित कर देता कि लोक सभा से सरकार को कमाई भी हो सकती है।

आजकल सभी कॉलेजों, विश्वविद्यालयों तथा अन्य अनेक संस्थानों से कहा जा रहा है कि वे अपना खर्च खुद उठाएँ। जो आमदनी नहीं कर सकता, उसे खर्च करने का अधिकार नहीं है। देश में नोट छापने का अधिकार सिर्फ एक ही संस्था को है, जिसका नाम है भारत सरकार। बाकी लोगों को नोट कमाने होंगे। इस तर्क से लोक सभा को भी बाध्य किया जाना चाहिए कि वह भी आमदनी करके दिखाए। इसका सबसे आसान तरीका यह है कि चुन कर आनेवाले सांसदों पर एंट्री फी लगा दी जाए। जब संसद की एक सीट जीतने के लिए दस-पंद्रह करोड़ खर्च कर देना मामूली बात है, तो संसद में बैठने की जगह पाने के लिए एक-दो करोड़ खर्च करने से कौन पीछे हटेगा? इसी तरह, संसद में बोलने की दर भी तय की जा सकती है। शोर-शराबे के कारण संसद जितनी देर तक स्थगित रहती है, उसका सामूहिक जुर्माना शोर-शराबा करनेवालों से वसूल किया जा सकता है। निवर्तमान हो रहे सदस्यों पर पाबंदी लगाई जा सकती है कि अगला चुनाव लड़ने के लिए उन्हें संसद से अनापत्ति प्रमाणपत्र लेना होगा। इस प्रमाणपत्र की कीमत सांसद के आचरण को देखते हुए एक हजार से एक करोड़ रुपए तक रखी जा सकती है। संसद की आय बढ़ाने के लिए एमबीए उपाधिधारकों की टोलियाँ नियुक्ति की जा सकती हैं - इस शर्त पर कि जो टोली जितनी ज्यादा आमदनी के स्रोत सुझाएगी, उसे उतना ही ज्यादा पारिश्रमिक दिया जाएगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सिर पर शौचालय

राजकिशोर

वह देखो, वह आदमी अपने सिर पर एक बड़ा-सा शौचालय लिए जा रहा है। नहीं, नहीं, यह शौचालय नहीं, उसका एक छोटा-सा मॉडल है। इसे देखने से आदमी यह अनुमान लगा सकता है कि असली शौचालय कैसा होता होगा। लेकिन इसमें तो कोई नल नहीं है। फिर शौच करने के लिए पानी कहाँ से आता होगा? हाँ, यह एक बड़ा सवाल है। लेकिन यह किसी फ्लैट का शौचालय तो है नहीं। यह तो किसी ग्रामीण इलाके का, किसान का या खेतिहर मजदूर का शौचालय है। देखते नहीं, इसकी बनावट ही बता रही है। यह शौच का उत्सव नहीं, शौच का शोक है। चूँकि भारत सरकार को आजादी के अट्ठावन साल बाद अचानक यह बुरा लगने लगा है कि लोग खुले में शौच करें, इसलिए गाँव-गाँव में ऐसे, कम लागत के शौचालय बनाए जा रहे हैं। इसे ही संपूर्ण स्वच्छता अभियान का नाम दिया गया है। गोया शौच स्वच्छ हो गया, तो बाकी सब अपने आप स्वच्छ हो जाएगा।

लेकिन यह आदमी कौन है, जो अपने सिर पर शौचालय का यह मॉडल लिए घूम रहा है? अरे, पहचाना नहीं? ये तो अपने ग्रामीण विकास मंत्री हैं - रघुवंश प्रसाद सिंह। हाँ, हाँ, वही, जो लालू प्रसाद की पार्टी से जीत कर आए हैं। कौन लालू प्रसाद? अरे, उनको नहीं जानते? आजकल रेल मंत्री हैं। रेल व्यवस्था में काफी सुधार कर रहे हैं। नई-नई रेलें दौड़ा रहे हैं। रेलों की रफ्तार बढ़वा रहे हैं। पर बेचारे के वश में इतनी-सी बात नहीं है कि हर डिब्बे में, खासकर शौचालय में, पानी हमेशा मौजूदा रहे। शायद उनका खयाल यह है कि जिस तरह मुसाफिर पीने का अपना पानी लेकर चलने के आदी हो गए हैं, उसी तरह शौच के लिए भी पानी ले कर चलें। क्या इसीलिए रघुवंश प्रसाद सिंह को इस बात की चिंता नहीं है कि शौचालय में पानी है भी या नहीं। उनका कहना है कि पानी हो या नहीं, गाँव के हर आदमी के घर में या घर के बाहर एक शौचालय - निजी शौचालय - जरूर होना चाहिए।

चाहे जो कहो भाई, हमारे ग्रामीण विकास मंत्री बहुत ही सूझ-बूझ वाले मंत्री हैं। तुम्हें पता नहीं कि हाल में उन्होंने क्या कहा? तुम किस दुनिया में रहते हो? क्या खाली फिल्म स्टारों की चर्चा पढ़ते हो या सिर्फ टीवी सीरियल देखते हो? इसीलिए तो असली बात तुमसे छूट जाती है। सुनो, ध्यान से सुनो। हमारे ग्रामीण विकास मंत्री का कहना है कि किसी देश के स्वास्थ्य की सूचना सेंसेक्स या जीडीपी से नहीं मिलती, यह सूचना इस बात से मिलती है कि लोगों के पास शौचालय है या नहीं है। है न पते की बात! यहाँ लोग रोज सेंसेक्स का चढ़ाव-उतार देखते रहते हैं, यह जानने के लिए कि देश आगे बढ़ रहा है या पीछे जा रहा है। इसके लिए जीडीपी पर भी नजर रखी जाती है। लेकिन ये सब तो अमीर लोगों के चोंचले हैं। इनसे यह पता नहीं चलता कि देश का स्वास्थ्य कैसा है। देश के स्वास्थ्य का नवीनतम हाल जानने के लिए हमारे रघुवंश प्रसाद सिंह यह मालूम करते रहते हैं कि आज भारत में शौचालयों की कुल संख्या क्या है। जिस दिन यह पता चल जाएगा कि देश भर में जितने परिवार हैं, उतने ही शौचालय हैं, उस दिन वे राहत की साँस लेंगे, क्योंकि इससे यह साबित हो जाएगा कि देश पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया है।

कह सकते हो कि मैं एक गंभीर बात का मजाक बना रहा हूँ। बात निश्चय ही काफी गहरी है। जहाँ लोगों के पास शौचालय न हों, उन्हें शौच के लिए मैदान या झाड़ियों के पीछे जाना पड़ता हो, वहाँ सेंसेक्स से देश की प्रगति को मापना क्या पागलपन नहीं है? सेंसेक्स कूदता-फाँदता रहे, जीडीपी हर साल छलाँग लगाता रहे, लेकिन अगर खुले में शौच करने से गाँवों में बीमारियाँ फैल रही हों, इन बीमारियों से लोग मर रहे हों, तो लानत है देश चलाने वालों पर। पहले वे हर घर में एक शौचालय का इंतजाम तो कर दें, फिर मेट्रो रेल दौड़ाएँ या जेट विमान उड़ाएँ, हमारी बला से। आदमी की एक बुनियादी जरूरत तो पूरी होनी चाहिए। सोचो, जरा और गहराई से सोचो। हमारे ग्रामीण विकास मंत्री ने बहुत दूर की बात कह दी है। प्रत्येक घर में शौचालय की माँग करते हुए उन्होंने इशारे से यह भी कह दिया है कि हर आदमी के पेट में पर्याप्त अन्न भी जाना चाहिए। आदमी पूरा खाना नहीं खाएगा, तो वह शौच करने कैसे जाएगा? देखा, रघुवंश जी देश के योजनाकारों को कितना गहरा पाठ पढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं!

अब लोगों को पूरा खाना मिले, इसकी जिम्मेदारी कौन लेगा भाई, यह बहुत कठिन काम है। माना कि देश तेजी से विकास कर रहा है। माना कि बहुत जल्द ही वह आर्थिक महाशक्ति बनने जा रहा है। लेकिन एक अरब से ज्यादा लोगों के लिए अन्न का इंतजाम करना मामूली बात नहीं है। इतना अनाज कहाँ से आएगा? मान लो कि अनाज का इंतजाम भी हो गया, तो गरीब लोगों की टेंट में पैसा कौन भरेगा? राम, राम, जो काम महाबली अंग्रेज सरकार नहीं कर सकी, वह हमारी सरकार क्या खाकर कर सकती है? लेकिन यह मत समझो कि सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी है। वह भरसक कोशिश कर रही है। अभी तक वह इस मुकाम पर पहुँची है कि साल में कम से कम सौ दिन तो लोगों को काम यानी खाना मिले। इसीलिए तो राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना शुरू की गई है। साल में सिर्फ सौ दिन क्यों? अजीब सवाल है! तुम घोंचू के घोंचू ही रहोगे। अरे, सरकार जब पूरे साल भर काम की गारंटी नहीं दे सकती तो क्या वह सौ दिन की गारंटी भी न दे? क्या तुमने यह मुहावरा नहीं सुना है - भागते भूत की लँगोटी ही सही। जहाँ सरकार एक दिन की भी गारंटी लेने को तैयार नहीं थी, वहाँ सौ दिन क्या तुम्हें कम लग रहे हैं? भारतीय होकर भी गाँवों के लोग क्या हर हफ्ते दो-तीन दिन उपवास नहीं रख सकते? क्या सरकार उनके लिए अपना सारा खजाना लुटा दे? पैसे नहीं होंगे, तो इतनी भारी-भरकम सरकार कैसे चलेगी? मंत्री और अफसर क्या खाएँगे-पिएँगे? और खाएँगे-पिएँगे नहीं, तो वे शौच कैसे जाएँगे? क्या शौच जाने का अधिकार सिर्फ गाँव वालों को है?

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

सीमा पर नागरिक

राजकिशोर

भारत का एक आदमी पाकिस्तान की सीमा पर गया। उसने दाएँ-बाएँ देखा। कोई न था। जैसे ही उसने सीमा पार करने के लिए कदम बढ़ाए, उसके सिर के ऊपर से होते हुए गोली निकल गई। एक मिनट में दोनों ओर से आ कर चार सिपाहियों ने उसे घेर लिया। एक ने जेब से रस्सी निकाली। दो सिपाहियों ने रस्सी उसकी कमर में बाँध दी। चौथे ने उसका एक सिरा अपने हाथ में ले लिया। पहला सिपाही गरजा - अब देखें कैसे भागते हो। नागरिक ने पूछा - लेकिन आपने गोली क्यों चलाई? कहीं लग जाती तो? दूसरा सिपाही बोला - शुक्र मनाओ कि बच गए। हमें 'देखते ही गोली मार दो' का आदेश है। नागरिक ने पूछा - और यह रस्सी? तीसरे सिपाही ने कहा - ताकि तुम भाग न सको। नागरिक - मैं भाग कहाँ रहा था? पहला सिपाही - तो और क्या कर रहे थे? नागरिक - मैं पाकिस्तान के भाई-बहनों को यह समझाने जा रहा था कि हम युद्ध नहीं चाहते।

दूसरे सिपाही - तो हुजूर, आप नेता हैं? तीसरा सिपाही - नहीं, ये भारत-पाकिस्तान मैत्री संघ के अध्यक्ष होंगे। पहला सिपाही - नहीं जी, कोई छोटा-मोटा तस्कर होगा। इसकी तलाशी ले लो, मेरी बात सही साबित न हो तो कहना। दूसरा सिपाही - यह तो बहुत मामूली आदमी लगता है। मामूली आदमी तस्कर नहीं होते। तीसरा सिपाही - जो भी हो, इसके इरादे ठीक नहीं लगते।

नागरिक - आप लोग परेशान न हों। मैं अपनी हकीकत बताता हूँ। देश भर में युद्ध का वातावरण बन रहा है। उधर की सही खबर इधर नहीं आती। इधर की सही खबर उधर नहीं जाती। तो मैंने सोचा कि जरा खुद जा कर देखूँ। जिससे भी भेंट हो जाए, उसे समझाऊँ कि भारत की आम जनता युद्ध नहीं चाहती। सिर्फ कुछ लोग हैं, जो जंग-जंग चिल्ला रहे हैं।

पहला सिपाही - तो वीसा-पासपोर्ट क्यों नहीं लिया? नागरिक - ये सब बड़े लोगों के चोंचले हैं। साधारण लोग तो वैसे ही जहाँ-तहाँ चले जाते हैं। तीसरा सिपाही - आतंकवादी तो नहीं हो? नागरिक - कोई यह स्वीकार करता है कि वह आतंकवादी है? दूसरा सिपाही - यानी आतंकवादी हो सकते हो। नागरिक - चाहता तो हूँ कि अपने देश में नागरिकों का कुछ आतंक बने। लेकिन हमारी कोई सुनता ही नहीं। दूसरा सिपाही - जेब में कितने पैसे हैं?

पाकिस्तान का एक आदमी भारत की सीमा पर आया। उसने दाएँ-बाएँ देखा। कहीं कोई न था। वह सीमा पार करने ही वाला था कि दोनों ओर से चार सिपाही आए। एक ने उसका कॉलर पकड़ा। दूसरे ने उसके हाथ मरोड़ कर पीठ की ओर कर दिए। तीसरा उसकी तलाशी लेने लगा। चौथा उसकी ओर रिवॉल्वर ताने खड़ा रहा।

पहला सिपाही - तो, हुजूर, आप किधर तशरीफ ले जा रहे थे? दूसरे सिपाही ने कहा - गनीमत हुई कि हमने तुमको देख लिया, वरना हम गोली चला देते। दूसरा सिपाही - हमें हुक्म है कि हम किसी के साथ रियासत न करें। चौथा सिपाही - जल्दी से बताओ, तुम्हारे इरादे क्या हैं? वरना मेरी उँगलियाँ बेचैन हो रही हैं। तीसरा सिपाही - जेब में कुल तीन सौ रुपए हैं और चले हैं बॉर्डर लाँघने।

नागरिक - आप लोग परेशान न हों। मैं एक सीधा-सादा इनसान हूँ। इंडिया जा रहा था, ताकि वहाँ के लोगों से बात कर सकूँ। उन्हें समझाऊँ कि पाकिस्तान का अवाम जंग नहीं चाहता। यह तो लीडरान हैं, जो तुर्की-बतुर्की बोल कर सनसनी फैला रहे हैं।

तीसरा सिपाही - तुम तो गद्दार लगते हो। लीडरान के खिलाफ आयँ-बायँ बक रहे हो। तुम्हें पता है, इसी बात पर तुम्हें अरेस्ट किया जा सकता है? दूसरा सिपाही - मामूली आदमी हो तो मामूली आदमी की तरह बरताव करो। सियासत के बारे में तुम्हें क्या मालूम? चौथा सिपाही - ऐसे ही लोग तो हिन्दुओं का मन बढ़ा रहे हैं।

नागरिक - यह आप लोगों की गलतफहमी है। इंडिया में मुसलमानों की तादाद हमसे कम नहीं है। मैं उनसे मिल कर समझना चाहता हूँ कि इंडिया-पाकिस्तान उलझाव के बारे में वे क्या सोचते हैं। गैर-मुसलमानों से भी बातचीत करने की तबीयत है। दूसरे, पाकिस्तान में अब जमहूरियत है। यहाँ के लोग अपनी किस्मत का फैसला खुद कर सकते हैं।

चारों सिपाही हँसी से लोटपोट हो गए। दूसरा सिपाही - जमहूरियत! तुम्हारे बाप ने भी कभी जमहूरियत देखी है? पहला सिपाही - यहाँ दो ही ताकतें हैं। अल्लाह की ताकत और फौज की ताकत। पहले अमेरिका की भी ताकत थी, पर अब हम उन पर यकीन नहीं करते। वे हमें भाड़े का टट्टू मानते हैं।

नागरिक - तो क्या पाकिस्तान में इनसानी ताकत की कोई वकत नहीं है?

चारों सिपाही फिर हँसने लगे। तीसरा सिपाही - तो क्या तुम समझते हो कि इंडिया में इनसानी ताकत मायने रखती है?

दूसरा सिपाही - इनसान हो तो यहाँ क्या करने आए हो? घर में रहो, बीवी-बच्चों का खयाल रखो। खुदा का खौफ खाओ। मुल्क को हम लोगों पर छोड़ दो।

नागरिक - अब तक यही तो कर रहा था। अब लगता है, इससे काम नहीं चलेगा। इसीलिए तो हिंदुस्तान जा रहा था।

पहला सिपाही - तो आप अमन के फरिश्ते हैं। जाइए, घर जाइए। अपने दोस्त-अहबाब को बताइए कि मुल्क जनता से नहीं, फौज से चलते हैं। जिस दिन फौज का साया हट गया, धरती से पाकिस्तान का नक्शा ही मिट जाएगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

हिन्दू और आतंकवादी

राजकिशोर

कोई भी देश कितना सभ्य है, यह जानने की तीन कसौटियाँ हैं - रेल रुकने पर चढ़नेवाले और उतरनेवाले एक-दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, घरों में स्त्रियों और बच्चों के साथ कैसा सलूक होता है और सार्वजनिक शौचालयों की हालत कैसी है। हाल ही में पहले अनुभव से मेरा पाला पड़ा। अब मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमने अभी तक सभ्य होने का सामूहिक फैसला नहीं किया है।

जब मैं किसी तरह अपने डिब्बे में चढ़ गया और अपनी सीट पर कब्जा करने के लिए विशेष संघर्ष नहीं करना पड़ा, तो मैंने महसूस किया कि आज मेरी किस्मत अच्छी है। आमने-सामने की तीनों सीटें भरी हुई थीं। रेलगाड़ी के चलते ही सामने की सीट पर बैठे एक सज्जन ने एक दैनिक पत्र निकाल कर अपने सामने फैला दिया, जैसे हम सिर पर छाता तानते हैं। एंकर की जगह पर एक बड़ा सा शीर्षक चीख रहा था : हिन्दू आतंकवादी नहीं हो सकता - राजनाथ सिंह। मेरे बाईं ओर बैठे सज्जन खिल उठे। पता नहीं किसे सम्बोधित करते हुए वे बोले, 'एकदम ठीक कहा है। हिन्दू को आतंकवादी होने की जरूरत क्या है? यह पूरा देश तो उसी का है। वह क्यों छिप कर हमला करेगा? यह तो अल्पसंख्यक करते हैं। पहले सिख करते थे। अब मुसलमान कर रहे हैं।'

अखबार के स्वामी को लगा कि उन्हें ही सम्बोधित किया जा रहा है। उन्होंने न्यूजप्रिंट के पीछे से अपना सिर निकाला, 'तो क्या साध्वी प्रज्ञा सिंह और उनके सहयोगियों के बारे में पुलिस जो कुछ कह रही है, वह गलत है? साध्वी ने तो अपना बयान मजिस्ट्रेट के सामने दिया है। अब वह इससे मुकर नहीं सकती।'

बाईं ओर वाले सज्जन का मुँह जैसे कड़वा हो आया। फिर कोशिश करके हँसते हुए वे बोले, अजी, यह सब मनगढ़ंत बातें हैं। पुलिस पर यकीन कौन करता है? उससे जो चाहो, साबित करा लो।

सामनेवाले सज्जन : चलिए फिलहाल आपकी बात मान लेते हैं। क्या आप मेरे एक सवाल का जवाब देंगे

- जरूर। क्यों नहीं। कुछ वर्षों से सबसे ज्यादा सवाल हिन्दुओं से ही किए जा रहे हैं। मुसलमानों और ईसाइयों से कोई कुछ नहीं कहता।

- अच्छा, यह बताइए कि हिन्दू गुंडा हो सकता है या नहीं?

- (कुछ क्षण रुक कर) हिन्दू गुंडा क्यों नहीं हो सकता? गुंडों की भी कोई जात होती है?

- तो यह भी बताइए कि हिन्दू शराबी-कबाबी हो सकता है कि नहीं?

बगलवाले सज्जन मुसकराने लगे, आपने कहा था कि आप सिर्फ एक सवाल पूछेंगे।

सामने वाले सज्जन : अजी, यह सवाल और आगे के सारे सवाल आपस में जुड़े हुए हैं। तो, हिन्दू शराबी-कबाबी हो सकता है या नहीं?

- हो सकता है, बल्कि हैं। इसीलिए तो हिन्दू समाज को संगठित करने की जरूरत है, ताकि वह मुसलमानों और अंग्रेजों से ली गई बुराइयों को रोक सके।

अखबारवाले सज्जन के दाईं ओर बैठे सज्जन ने मुसकराते हुए हस्तक्षेप किया, सुना है, अटल बिहारी वाजपेयी को शराब पीना अच्छा लगता है। वे मांस-मछली भी खूब पसंद करते हैं।

मेरे बाईं ओर वाले सज्जन : इस बहस में व्यक्तियों को क्यों ला रहे हैं? खाना-पीना हर आदमी का व्यक्तिगत मामला है।

अखबार वाले सज्जन : खैर, इसे छोड़िए। यह बताइए कि हिन्दू चोर या डकैत हो सकता है या नहीं?

- हो सकता है। हम लोग तथ्यों से इनकार नहीं करते।

क्या वह वेश्यागामी हो सकता है?

...

- क्या वह बलात्कार भी कर सकता है?

...

- जब हिन्दू यह सब कर सकता है, तस्करी भी कर सकता है, लड़कियों को भगा कर दलालों को बेच सकता है, बच्चों के हाथ-पाँव कटवा कर उनसे भीख मँगवा सकता है, किडनी खरीदने-बेचने का बिजनेस कर सकता है, मर्डर कर सकता है, दहेज की माँग पूरी न होने पर अपनी नवब्याहता की जान ले सकता है, तो वह आतंकवादी क्यों नहीं हो सकता?

यह सुनकर मेरे पड़ोसी हिन्दूवादी मित्र तमतमा उठे, आप कहीं कम्युनिस्ट तो नहीं हैं? या दलित? यही लोग हिन्दुओं की बुराई करते हैं। जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। आप जो बुराइयाँ गिनवा रहे हैं, वे दुनिया में कहाँ नहीं हैं? हमारा कहना यह है कि भारत में हिन्दू बहुसंख्यक हैं, फिर भी उनकी उपेक्षा की जा रही है। उन्हें वेद-शास्त्र के अनुसार देश को चलाने से रोका जा रहा है। इसलिए हिन्दू अगर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए हथियार भी उठाता है, तो इसमें हर्ज क्या है? लातों के देवता बातों से नहीं मानते।

अब अखबारवाले सज्जन के बाईं ओर बैठे सज्जन तमतमा उठे, हर्ज कैसे नहीं है? हर्ज है। अगर देश के सभी धर्मों के लोग, सभी जातियों के लोग, सभी वर्गों के लोग, सभी राज्यों के लोग देश में अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए हथियार उठा लें, तो गली-गली में खून नहीं बहने लगेगा? उसके बाद क्या भारत भारत रह जाएगा? फिर कौन कहाँ अपना वर्चस्व कायम करेगा?

- आप हिन्दू विरोधी हैं। आप लोगों से कोई बहस नहीं की जा सकती।

- आप भारत विरोधी हैं। आपसे भी बहस नहीं की जा सकती।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

हिन्दी की शोक सभा

राजकिशोर

साल : 2015 से 2020 के बीच का कोई साल। दिन : 14 सितंबर। स्थान : जवाहरलाल नेहरू सभागार, दिल्ली। समय : सायं 6 बजे। उपस्थिति : 12 पुरुष (उम्र 65 और 75 के बीच) और दो महिलाएँ (दिखने में अधेड़, उम्र अननुमेय)। विषय : हिन्दी की शोक सभा। वक्ता : एक मंत्री, एक लेखक, एक प्रोफेसर और एक प्रकाशक। अध्यक्ष : वही (कुछ वर्षों से अस्वस्थ रहने के कारण स्ट्रेचर पर लाए गए हैं, पर बोलते समय सीधे खड़े हो जाते हैं। बोल चुकने के बाद फिर स्ट्रेचर पर जाकर लेट जाते हैं)। प्रेस दीर्घा : खाली। टीवी कैमरे : नदारद।

प्रोफेसर : आप सबको ज्ञात ही है कि हम यहाँ किसलिए इकट्ठा हुए हैं। जब मुझे इस कार्यक्रम की सूचना दी गई, तो पहले तो मैं अवाक् रह गया। क्या ऐसा हो सकता है? क्या हिन्दी जैसी जीवंत भाषा कभी मर सकती है? लेकिन पिछले कुछ वर्षों से मैं देख रहा हूँ कि हिन्दी विभाग में एडमिशन नहीं हो रहे हैं। इस साल एमए (हिन्दी) में कुल पाँच छात्रों ने प्रवेश लिया है, जबकि रिक्त पदों को छोड़ दिया जाए तो हिन्दी पढ़ाने वालों की संख्या पंद्रह है। एक-एक छात्र को तीन-तीन प्राध्यापक कैसे पढ़ाएँगे? यही स्थिति बनी रही तो प्राध्यापकों में पढ़ाने को लेकर मारपीट भी हो सकती है। क्लास लेने के उद्देश्य से छात्रों का, खासकर छात्राओं का, अपहरण भी हो सकता है। पिछले सात सालों में हिन्दी में एक भी पीएचडी सबमिट नहीं हुई। मैं हिन्दी माता को श्रद्धा के फूल चढ़ाते हुए माँग करता हूँ कि सरकार हिन्दी को पुनर्जीवित करने के लिए एक आयोग बैठाए। इसके साथ ही, मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि इस प्रस्ताव में मेरा कोई निहित स्वार्थ नहीं है। मेरे दोनों बेटे स्टेट्स में सेटल हो चुके हैं। बेटी डेनमार्क में है। लेकिन मैंने हिन्दी का नमक खाया है। इसलिए मैं हिन्दी की अकाल मृत्यु नहीं देख सकता।

लेखक : मैंने बहुत पहले ही पहचान लिया था कि हिन्दी का कोई भविष्य नहीं है। फिर भी मैं हिन्दी में लिखता रहा, क्योंकि मैं अंग्रेजी में नहीं लिख सकता था। मेरे कई महत्त्वाकांक्षी लेखक मित्रों ने लिखने के लिए उसी तरह अंग्रेजी सीखी, जैसे चंद्रकांता संतति को पढ़ने के लिए हजारों लोगों ने हिन्दी सीखी थी। वे हिन्दी से अंग्रेजी में वैसे ही गए, जैसे प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आए थे। लेकिन हमारे इन मित्रों को कोई बड़ी सफलता नहीं मिली। कारण, वे जो अंग्रेजी लिखते थे, वह हिन्दी जैसी ही होती थी। फिर बुकर वगैरह मिलने का सवाल ही कहाँ उठता था? बहरहाल, मुझे हिन्दी में लिखने का कोई अफसोस नहीं है। अफसोस इस बात का है कि मुझे अपने घर से पैसे खर्च कर अपनी किताबें छपवानी पड़ीं। अगर मेरे बड़े भाई पुलिस महानिदेशक न होते तो मैं अपने बल पर इस खर्च का प्रबंध नहीं कर सकता था। रॉयल्टी मिलने का कोई सवाल ही नहीं है। उलटे, प्रकाशक कहता है कि जगह महँगी हो गई है, इसलिए आप या तो अपनी किताबें अपने घर ले जाइए या गोदाम का किराया दीजिए। इसलिए मैं इसे हिन्दी की मृत्यु नहीं, उसकी मुक्ति कहता हूँ।

प्रकाशक : हिन्दी की शोक सभा में शामिल होना मुझे कतई अच्छा नहीं लग रहा है। आखिर यह मेरी भी मातृभाषा है। हिन्दी में किताबें छाप कर एक जमाने में मैंने कितना कमाया था। मेरा घर, मेरी गाड़ी, मेरे लड़के-लड़कियों की विदेश में पढ़ाई - यह सब हिन्दी की बदौलत ही संभव हुआ है। इसके लिए मैं अनेक हिन्दी-प्रेमी सरकारी अधिकारियों का ऋणी हूँ। लेकिन हिन्दी से मेरा रिश्ता व्यावसायिक है। जब हिन्दी की किताबें बिकती ही नहीं, तो मैं उन्हें क्यों छापूँ? इसीलिए मैं समय रहते अंग्रेजी में शिफ्ट कर गया। जो प्रकाशक अभी भी हिन्दी में पड़े हैं, जरा उनकी हालत देखिए। कल गाड़ी में चलते थे, अब स्कूटर के लिए पेट्रोल जुटाना भी मुश्किल हो रहा है। हाँ, सरकार हिन्दी को पुनर्जीवित करने के लिए कुछ विशेष प्रयास करे और हिन्दी किताबों की थोक खरीद फिर शुरू कर दे, तो मैं वादा करता हूँ कि हिन्दी में प्रकाशन फिर शुरू कर दूँगा। आखिर यह मेरी भी मातृभाषा है।

मंत्री : आज सचमुच बड़े शोक का दिन है। जिस हिन्दी ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक भूमिका निभाई थी, वह आज भरात की समृद्धि देखने के लिए जीवित नहीं है। लेकिन मित्रो, मैं निराशावादी नहीं हूँ। लोग कहते हैं कि संस्कृत इज ए डेड लैंग्वेज। लेकिन हमने संस्कृत को अभी तक बचा कर रखा है। रेडियो पर अभी भी संस्कृत में समाचार पढ़ा जाता है। इसी तरह हम हिन्दी को भी बचा कर रखेंगे। क्षमा करें, आज कई जगहों पर हिन्दी की शोक सभाएँ हैं और उनमें मुझे बोलना है। लेकिन मैं यह आश्वासन देकर जाना चाहता हूँ कि मैं संसद के अगले सत्र में हिन्दी को बचाने के लिए एक निजी विधेयक जरूर लाऊँगा।

अध्यक्ष : आज का दिन एक ऐतिहासिक दिन है। दुनिया भर में यह एक विरल घटना है कि एक भाषा को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सभा का आयोजन किया गया। वह श्रेय न संस्कृत को मिला, न पाली को, न अपभ्रंश को और न किसी यूरोपीय या अन्य एशियाई भाषा को। इस दृष्टि से हिन्दी विशेष रूप से गौरवशाली है। लेकिन मित्रो, यह स्वाभाविक मृत्यु नहीं, शहादत है। दरअसल, हिन्दी शुरू से ही शहादत की भाषा रही है। मुझे महादेवी जी की पंक्तियाँ याद आती हैं : मैं नीर भरी दुख की बदली, उमड़ी कल थी, मिट आज चली। वैसे भी, किसी खास भाषा से मोह रोमांटिकता है। मैंने हिन्दी आलोचना में शुरू से ही रोमांटिकता का विरोध किया है। हमें यथार्थवादी बनना चाहिए। आज का यथार्थ यही है कि हिन्दी नहीं रही। अतः इस पर शोक मनाना अतीत के शव की पूजा करना है। हिन्दी नहीं रही तो क्या हुआ, उसका साहित्य तो है। हमें इस विपुल साहित्य का पठन-पाठन, चिंतन-मनन करना चाहिए। यही हिन्दी को साहित्य प्रेमियों की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

आडवाणी के लिए दो शब्द

राजकिशोर

कहा जाता है कि वह राजनेता उतना ही बड़ा होता है, जो जितना बड़ा ख्वाब देखता है। जवाहरलाल नेहरू से ले कर राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण तक की पीढ़ी ख्वाब देखते-देखते गुजर गई। पता नहीं इनमें कौन कितना बड़ा राजनेता था। जब कोई नेता अपने जीवन काल में अपना ख्वाब पूरा नहीं कर पाता, तो उसका कर्तव्य होता है कि वह उस ख्वाब को अगली पीढ़ी में ट्रांसफर कर दे। इनमें सबसे ज्यादा सफल नेहरू ही हुए। लोहिया और जयप्रकाश के उत्तराधिकारी लुंपेन बन गए। कुछ का कहना है कि वे शुरू से ही ऐसे थे, पर अपने को साबित करने का पूरा मौका उन्हें बाद में मिला। पर नेहरू का ख्वाब आज भी देश पर राज कर रहा है। नेहरू ने आधुनिक भारत का निर्माण किया था। हम आधुनिकतम भारत का निर्माण कर रहे हैं। सुनते हैं, इस बार के चुनाव का प्रमुख मुद्दा है, विकास। नेहरू का मुद्दा भी यही था। इसी मुद्दे पर चलते-चलते कांग्रेस के घुटने टूट गए। अब फिर वह दौड़ लगाने को तैयार है।

इस देश के सबसे बड़े और संगठित ख्वाब देखनेवाले कम्युनिस्ट थे। उनका ख्वाब एक अन्तरराष्ट्रीय ख्वाब से जुड़ा हुआ था। इसलिए वह वास्तव में जितना बड़ा था, देखने में उससे काफी बड़ा लगता था। यह ख्वाब कई देशों में यथार्थ बन चुका था, इसलिए इसकी काफी इज्जत थी। लेकिन जब तेलंगाना में असली आजादी के लिए संघर्ष शुरू हुआ, तो नेहरू के ख्वाब ने उसे कुचल दिया। तब का दर्द आज तक कम्युनिस्ट ख्वाब को दबोचे हुए है। किताब में कुछ लिख रखा है, पर मुँह से निकलता कुछ और है। कम्युनिस्टों के दो बड़े नेता - एक प. बंगाल में और दूसरा केरल में - एक नया ख्वाब देख रहे हैं। समानता के ख्वाब को परे हटा कर वे संपन्नता का ख्वाब देखने में लगे हुए हैं। ईश्वर उनकी सहायता करे, क्योंकि जनता का सहयोग उन्हें नहीं मिल पा रहा है।

बाबा साहब आंबेडकर ने भी एक ख्वाब देखा था। यह ख्वाब अभी भी फैशन में है। पर सिर्फ बुद्धिजीवियों में। राजनीति में इस ख्वाब ने एक ऐसी जिद्दी महिला को जन्म दिया है, जिसका अपना ख्वाब कुछ और है। वे आंबेडकर की मूर्तियाँ लगवाती हैं, गाँवों के साथ उनका नाम जोड़ देती हैं, उनके नाम पर तरह-तरह के आयोजन करती रहती हैं। पर उन्होंने कसम खाई हुई है कि आंबेडकर वास्तव में क्या चाहते थे, यह पता लगाने की कोशिश मैं कभी नहीं करूँगी। इसके लिए आंबेडकर साहित्य पढ़ना होगा और आजकल किस नेता के पास साहित्य पढ़ने का समय है? फिर इस जिद्दी महिला का ख्वाब क्या है? इस बारे में क्या लिखना! बच्चों से लेकर बड़ों तक सभी जानते हैं। सबसे ज्यादा वे जानते हैं, जो तीसरा मोर्चा नाम का चिड़ियाघर बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं।

हिन्दू राष्ट्र के दावेदारों ने भी एक ख्वाब देखा था। उनका ख्वाब काफी पुराना है। जब बाकी लोग आजादी के लिए लड़ रहे थे, तब वे एक छोटा-सा घर बनाकर अपने ख्वाब के भ्रूण का पालन-पोषण कर रहे थे। उनकी रुचि स्वतंत्र भारत में नहीं, हिन्दू भारत में थी। वैसे ही जैसे लीगियों की दिलचस्पी आजाद हिन्दुस्तान में नहीं, मुस्लिम पाकिस्तान में थी। हिन्दूवादी स्वतंत्र भारत के संविधान को ठेंगा दिखाने में लगे हुए हैं। लीगियों ने आजादी के पहले खून बहाया था, संघियों ने आजादी के बाद खून बहाया। शुरू में उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। वे सिर्फ अपना विचार फैला सके। बाद में जब भारतवाद कमजोर पड़ने लगा, तब हिन्दूवाद के खूनी पंजे भगवा दस्तानों से निकल आए। कोई-कोई अब भी दस्तानों का इस्तेमाल करते हैं, पर उनके भीतर छिपे हाथों का रंग दूर से ही दिखाई देता है।

अब कोई बड़ा ख्वाब देखने का समय नहीं रहा। कुछ विद्वानों का कहना है कि महास्वप्नों का युग विदा हुआ, यह लघु आख्यानों का समय है। भारत में इस समय लघु आख्यान का एक ही मतलब है, प्रधानमंत्री का पद। मंत्री तो गधे भी बन जाते हैं, घोड़े प्रधानमंत्री पद के लिए दौड़ लगाते हैं। अभी तक हम इस पद के लिए दो ही तीन गंभीर उम्मीदवारों को जानते थे। अब महाराष्ट्र से, बिहार से, उड़ीसा से, उत्तर प्रदेश से - जिधर देखो, उधर से उम्मीदवार उचक-उचक कर सामने आने लगे हैं। यह देख कर मुझे लालकृष्ण आडवाणी से बहुत सहानुभूति होने लगी है। बेचारे कब से नई धोती और नया कुरता पहन कर ड्राइंग रूम में बैठे हुए हैं। इस बार तो उनके इस्तेमाल का मौका नजदीक आते दिखाई नहीं देता। बल्कि रोज एकाध किलोमीटर दूर चला जाता है। चूँकि मैं सभी का और इस नाते उनका भी शुभचिंतक हूँ, इसलिए आडवाणी को प्रधानमंत्री बनने का आसान नुस्खा बता देना चाहता हूँ। इसके लिए सिर्फ दो शब्द काफी हैं-पीछे मुड़ (अबाउट टर्न)। सर, सम्प्रदायवाद, हिन्दू राष्ट्र वगैरह खोटे सिक्कों को सबसे नजदीक के नाले में फेंक दीजिए। आम जनता की भलाई की राजनीति कीजिए। अगली बार आपको प्रधानमंत्री बनने से कोई रोक नहीं सकेगा।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

आतंकवाद की किस्में

राजकिशोर

जम्मू और कश्मीर के वर्तमान मुख्यमंत्री गुलाम नबी आजाद और पूर्व मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला एक आलीशान सोफे पर बैठे हुए थे। उनके सामने एक सुंदर कश्मीरी युवती बैठी थी। उसका नाम करीना था। उसने हाल ही में राजनीतिशास्त्र में एमए की परीक्षा दी थी और परिणाम आने तक गांधीगीरी करने की सोच रही थी। वह इन दोनों तथाकथित नेताओं से अफजल को फाँसी मिलनी चाहिए या नहीं, इस विषय पर बातचीत करने आई थी।

आजाद - मैं सभी स्तरों पर कोशिश कर रहा हूँ कि अफजल को फाँसी नहीं मिले। देखिए क्या होता है।

फारूक - बेशक। अफजल को फाँसी लग जाती है, तो यह भारत के चेहरे पर एक बदनुमा दाग होगा।

करीना - लेकिन सर, भारत के ज्यादातर लोग तो यही चाहते हैं कि अफजल को फाँसी मिलनी चाहिए।

फारूक - लोगों को छोड़िए। वे भावुक होते हैं। भेड़ की तरह चलते हैं। मैंने काफी लंबे समय तक कश्मीर के लोगों को बेवकूफ बनाया है। जब जैसे चाहा, वैसे नचाया।

करीना - सच?

फारूक - अरे नहीं, मैं तो मजाक कर रहा था। कहीं लिख मत देना।

आजाद - हमारे फारूक साहब को मजाक करना बहुत पसंद है। उन्होंने सिर्फ कश्मीर के लोगों के साथ नहीं, बल्कि...(हँसने लगते हैं)

फारूक - और जनाब आप? क्या आप कश्मीर के साथ मजाक नहीं कर रहे हैं? मुझे तो लगता है, आप इसीलिए यहाँ भेजे गए हैं। वरना कांग्रेस में समझदार लोग भी थे। (हँसी)

आजाद - आप जिन्हें समझदार बता रहे हैं, उनमें से किसकी हिम्मत है कि वह अफजल की जान बचाने की कोशिश करे?

फारूक - मैं फिर कहता हूँ, मैं आतंकवाद के पूरी तरह खिलाफ हूँ। फिर भी अफजल को फाँसी पर चढ़ा देने की ताईद नहीं कर सकता, तो इसीलिए कि इससे कुछ हल होने वाला नहीं है।

करीना - यानी आप यह कह रहे हैं कि फाँसी किसी समस्या का हल नहीं है।

फारूक - मैंने ऐसा कब कहा? मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि अफजल पर रहम किया जाए और उसे फाँसी की सजा न दी जाए।

करीना - लेकिन क्यों? अफजल में ऐसा क्या है कि उसे जिंदा देखना चाहते हैं? आखिर वह आतंकवादी है और उसने संसद भवन पर हमला करने का षड्यंत्र रचा था।

आजाद - नहीं, वह मामूली आतंकवादी नहीं है। उसके पीछे काफी लोग हैं। उसे फाँसी लग जाएगी, तो घाटी की हालत और बदतर हो जाएगी।

फारूक - बेशक। हालत और खराब हुई, तो दहशतगर्द पता नहीं और कितने लोगों को भून देंगे।

करीना - गोया आप भी दहशतगर्दी से घबरा रहे हैं?

आजाद - दहशतगर्दी से कौन नहीं घबरा रहा है? क्या आप नहीं घबरा रही हैं? फिर मैं तो सरकार चला रहा हूँ। मुझे कई पहलुओं से सोचना पड़ता है।

फारूक - जब मैं सत्ता में था, तो मुझे भी कई पहुलओं से सोचना पड़ता था।

करीना - क्या इसीलिए कश्मीर में आतंकवाद बढ़ गया?

फारूक - नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है।

आजाद - हम कई पहलुओं से न सोचें, तब भी हालात सुधरने वाले नहीं हैं।

फारूक - देखिए, भारत सरकार की जो पॉलिसी है, उसमें आतंकवाद को तो बढ़ना ही था।

आजाद - नहीं, गलती भारत सरकार की नहीं है। हम शांतिप्रिय देश हैं। सारा दोष पाकिस्तान का है। उसकी शह पर ही हमारे यहाँ आतंकवाद फल-फूल

रहा है।

करीना - इसका मतलब यह हुआ कि अफजल ने जो किया, वह पाकिस्तान की शह पर किया। बहरहाल, सच्चाई जो भी हो, क्या आप मानते हैं कि आतंकवादियों को फाँसी की सजा नहीं मिलनी चाहिए?

फारूक - उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दी जानी चाहिए, पर जनता के जजबात पर भी गौर किया जाना चाहिए। मुद्दे की बात यह है कि कश्मीरी नौजवान बंदूक क्यों थाम रहा है? इस समस्या का इलाज कर दीजिए, सब कुछ ठीक हो जाएगा।

करीना - जब तक ऐसा नहीं होता, क्या आतंकवादियों के साथ मुलायमियत से पेश आना चाहिए?

फारूक - मैंने ऐसा कब कहा? ऐसा करेंगे, तो आतंकवादी निडर हो जाएँगे। वे और ज्यादा वारदातें करेंगे।

आजाद - हम कश्मीरी अवाम के साथ प्यार से पेश आएँगे, पर एक भी आतंकवादी को नहीं छोड़ेंगे।

करीना - सिवाय अफजल के।

आजाद - सिवाय अफजल के! सजा तो उसे भी मिलनी चाहिए, पर हम चाहते हैं कि उसे फाँसी की सजा न दी जाए।

करीना - तो फिर ऐसा क्यों न करें कि भारत से फाँसी की सजा ही हटा दी जाए? बहुत-से देशों ने सजा-ए-मौत खत्म कर दी है।

आजाद और फारूक दोनों अचानक गंभीर हो जाते हैं और करीना को घूरने लगते हैं।

करीना - मैंने ऐसा क्या कह दिया कि आप लोग संजीदा हो उठे? फर्ज कीजिए, फाँसी की सजा खत्म कर दी जाती है, तो किसे फाँसी दी जाए और किसे नहीं, यह बहस ही नहीं उठेगी।

आजाद - फाँसी खत्म कर दी जाए, तो राज्य कैसे चलेगा?

फारूक - फाँसी खत्म कर दी जाए, तो राज्य कैसे चलेगा?

आजाद - लोगों में डर खत्म हो जाएगा और वे एक दूसरे की जान लेने लगेंगे।

फारूक - लोगों में डर खत्म हो जाएगा और वे एक दूसरे की जान लेने लगेंगे।

आजाद - लोगों की जान बचाने के लिए लोगों की जान लेना जरूरी है।

फारूक - लोगों की जान बचाने के लिए लोगों की जान लेना जरूरी है।

करीना - थैंक यू। आप लोगों की बात मेरी समझ में आ गई। अब मुझे इजाजत दीजिए।

उस रात करीना ने अपनी डायरी में लिखा - ऐसा लगता है कि आतंकवाद की कोई एक किस्म नहीं है। सरकार भी अपना आतंक बनाए रखना चाहती है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

आत्महत्या का उपयोग

राजकिशोर

वह एक खुशनुमा दिन की मनहूस शाम थी। दूर के एक शहर में अपने पुराने जिगरी दोस्त के साथ दिन बिताने के बाद हम दोनों उसके घर में बैठे शराब पी रहे थे। मनपसंद साथ हो, तो शराब का नशा बढ़ जाता है। हम दोनों उसका मजा ले रहे थे कि दोस्त अचानक रोने लगा। शुरू में मैंने सोचा कि आँसुओं से धुल कर शराब का नशा पवित्र हो जाएगा। लेकिन जब मामला खुला, तो मेरी आँखों में भी आँसू आ गए। उसने बताया कि कल ही उसने अंतिम निर्णय लिया है कि अब आत्महत्या कर ही लेनी चाहिए। वैसे तो यह विचार उसके दिमाग से साल भर से घुमड़ रहा था, पर कल उसे लगा कि अब और टालना अपने साथ बेइंसाफी होगी।

कुछ कारण मुझे पता थे। अत्यंत योग्य होने के बावजूद उसे कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल पाई थी। पत्नी से अलगाव हो चुका था। वह पूर्ण रूप से भौतिकवादी थी। उसे सुख के साथ-साथ समृद्धि भी चाहिए थी। घर में अकसर किचकिच हो जाती। एक बार दोस्त ने तय किया कि वह नौकरी छोड़ कर तीन महीनों तक एक उपन्यास लिखेगा। उपन्यास नहीं लिखा गया तो मटरगश्ती करेगा। शादी के बाद से वह एक लगभग बँधा हुआ जीवन बिताता आया था। जिस शाम उसने अपनी इस योजना की घोषणा की, उस पूरी रात पत्नी ने उसे अपने पास फटकने नहीं दिया। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह इतिहास है। पत्नी द्वारा परित्याग के बाद उसकी जिंदगी में दो और स्त्रियाँ आईं। पहली विवाहित थी, दूसरी तलाकशुदा। दोनों ने ही उसे निराश किया। पहली ने कम, दूसरी ने ज्यादा। जैसे कोई नदी में आगे बढ़ता जाए - इस उम्मीद में कि आगे पानी गहरा होगा, पर उतना ही पानी मिले जितना किनारे पर था। इस निराशा से उबरा तो...इसके बाद की कहानी और भी दर्दनाक है।

जब मैंने हर तरह से ठोंक-बजा कर देख लिया कि आत्महत्या के उसके इरादे को न बदला जा सकता है न टाला जा सकता है, तो पूर्व कम्युनिस्ट होने के नाते, हम बहुत ही तार्किक ढंग से विचार करने लगे कि आत्महत्या का कौन-सा तरीका बेहतर होगा। बात ही बात में मैंने उससे कहा कि अगर तुम्हें मरना ही है तो क्यों न अपनी मृत्यु को किसी सार्वजनिक काम में लगा दो। उसे यह प्रस्ताव तुरंत जम गया।

बातचीत और बहस के बीच से कई विकल्प सामने आए।

विकल्प एक : वह दिल्ली आकर किसी ब्लूलाइन बस से कुचल जाए और इस तरह दिल्ली सरकर को इसके लिए बाध्य करने का एक और कारण बने कि शहर की सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था को दुरुस्त किया जाए। इस पर उसने कहा कि ब्लूलाइन रोज ही एक-दो की जान ले रही है। जान ही देनी है तो क्यों न प्रधानमंत्री या सोनिया गाँधी की कार के नीचे आकर दे दूँ और मेरी लाश के कुर्ते से उन कामों की एक सूची निकले जिन्हें करने से देश की वर्तमान स्थिति में रेडिकल सुधार आ सकता है। मैंने उसे बताया कि बच्चू, यह असंभव है। बड़े नेताओं की

गाड़ियाँ जब दिल्ली की सड़कों पर दौड़ती हैं तो कई किलोमीटर तक उनकी सुरक्षा व्यवस्था इतनी पुख्ता होती है कि कोई आदमजाद उन तक फटक नहीं सकता।

विकल्प दो : वह अहमदाबाद जाकर शहर के किसी प्रमुख चौराहे पर अपने को गोली मरवा ले, जिसके बाद पुलिस द्वारा मुठभेड़ हत्या का मामला बनाया जाए और मानवाधिकार आयोग में जाया जाए। इस योजना में खोट यह था कि गुजरात में ऐसे हजारों मामले पहले से लंबित हैं और केंद्र सरकार और उच्चतम न्यायालय भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं।

विकल्प तीन : वह घर में चुपचाप आत्महत्या कर ले और इस आशय का एक नोट छोड़ जाए कि मैंने तीन दिन पहले अपनी नौकरानी के साथ बलात्कार किया था, तभी से मेरी आत्मा छटपटा रही है। अपनी आत्मा पर इतना बड़ा बोझ लेकर मैं जीवित रहना नहीं चाहता। आशा है, मेरा यह कदम दूसरे बलात्कारियों के लिए एक प्रेरक उदाहरण बनेगा। यह विकल्प तो पाँच मिनट भी नहीं टिक सका। पाया गया कि बलात्कारियों के पास ऐसा हृदय होता, तो वे बलात्कार करते ही क्यों।

विकल्प चार : वह किसी जज की कार के नीचे आ जाए - यह चीखते हुए कि अदालतों में इतने ज्यादा केस पेंडिंग क्यों हैं? फिर उसके पास से परचे बरामद हों, जिनमें बताया गया हो कि देश के न्यायालयों में किस स्तर पर कितने मामले लंबित हैं और किसी भी केस के लंबा खिंचने पर मध्यवर्गीय परिवार की हालत क्या हो जाती है। यह विकल्प भी पोला साबित हुआ, क्योंकि हमारे देश की न्यायपालिका इस तरह के मुद्दों को विचार करने के योग्य नहीं मानती।

विकल्प पाँच : वह नागपुर जाकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुख्यालय के बाहर यह बयान जारी करने के बाद आत्मदाह कर ले कि जिस देश में आरएसएस जैसा संगठन खुले आम काम कर रहा हो, उस देश में मैं नहीं रहना चाहता। यह बहुत ही अच्छा मुद्दा था, पर मुश्किल यह थी कि इससे संघ वालों का बाल भी बाँका नहीं होगा। सरकार उनके बारे में सब कुछ जानती है, उसने सांप्रदायिक विद्वेष फैलाने के विरुद्ध ढेर सारे कानून भी बनाए हुए हैं, पर संघ के किसी पदाधिकारी या कार्यकर्ता पर मुकदमा नहीं चलाया जाता।

बोतल साफ हो चुकी थी, पर हमारे सामने अभी भी धुँधलका था। हम दोनों बेहद तकलीफ में थे : यह कैसा देश है, जिसमें कोई इस तसल्ली के साथ मर भी नहीं सकता कि मेरी मृत्यु ही मेरा संदेश है?

सुबह उठा, तो मेरा प्यारा दोस्त कूच कर चुका था। बगल की मेज पर उसकी लिखावट में एक पुरजा पड़ा था - पर्सनल इज पॉलिटिकल।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

आवश्यकता है

राजकिशोर

जल्द ही मार्केट में उतर रहे एक समाचार चैनल के लिए उदीयमान और सु-उदित पत्रकारों की घोर आवश्यकता है। इस समाचार चैनल में पैसा दिल्ली के एक बड़े बिल्डर, कुछ प्रॉपटी डीलरों और एक भाजपा नेता ने लगाया है। ऐसे पत्रकारों को वरीयता दी जाएगी, जो इन वित्त पोषकों के माध्यम से अप्रोच करेंगे। इन वित्त पोषकों के नामों की ओर यहाँ कोई इशारा नहीं किया जा रहा है। इसके माध्यम से हम उम्मीदवारों की खोजी पत्रकारिता के स्तर की परीक्षा लेना चाहते हैं। जो उम्मीदवार स्वतंत्र रूप से अप्लाई करेंगे, उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे उम्र, योग्यता और गुणों की निम्नलिखित कसौटियों पर पूरी तरह खरे उतरेंगे। जिनमें कोई कमी है, उनसे निवेदन है कि वे उचित सोर्स लगाए बिना अप्लाई न करें - ऐसे उम्मीदवारों के आवेदन पत्र को बिना विचारे रिजेक्ट कर दिया जाएगा।

उम्र : आवेदकों की उम्र 20 वर्ष से 35 वर्ष तक होनी चाहिए। महिला उम्मीदवारों को न्यूनतम उम्र में अधिकतम पाँच वर्ष की छूट दी जाएगी। यानी महिला उम्मीदवारों के लिए कम से कम 15 वर्ष का होना जरूरी है। अन्य गुण समान रहने पर ऐसे उम्मीदवारों को वरीयता दी जा सकती है। ऐसी महिलाएँ आवेदन करने का कष्ट न करें जो अपनी उम्र से अधिक दिखाई पड़ती हों।

रंग : उम्मीदवारों का रंग गोरा होना चाहिए। अन्य सभी योग्यताओं के रहते हुए भी ऐसे उम्मीदवारों को रिजेक्ट कर दिया जाएगा जिनका रंग साँवला होगा। कृपया ऐसे फोटाग्राफ न भेजें, जिनमें आपका असली रंग दिखाई न देता हो। ऐसा करने वाले उम्मीदवारों को हमेशा के लिए ब्लैकलिस्ट कर दिया जाएगा। महिला उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे कम से कम दस मुद्राओं में अपनी तसवीरें भेजें।

रूप : उम्मीदवारों के लिए सुन्दर होना जरूरी है। जो इस दृष्टि से ओबीसी की श्रेणी में आते हैं, उन्हें किसी अन्य क्षेत्र में कॅरियर बनाने की कोशिश करनी चाहिए। सुन्दरता को हमारे यहाँ फैशनेबल के अर्थ में परिभाषित किया जाता है। इस परिभाषा में चेहरे-मोहरे, शरीर की बनावट आदि के साथ-साथ आधुनिकतम परिधान की समझ भी शामिल है। हेयर स्टाइल पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। जो गंजे हो चुके हैं, उन्हें बालों की वीविंग करा कर आना चाहिए। अतिरिक्त रूप से प्रतिभाशाली उम्मीदवारों को इस शीर्ष सर्जरी के लिए ज्वायन करने के बाद छह महीनों का समय दिया जा सकता है। यह समय सिर्फ उनके लिए बढ़ाया जा जाएगा जो असाधारण रूप से धूर्त और चापलूस हों। उन उम्मीदवारों को, खासकर महिला उम्मीदवारों को, वरीयता दी जाएगी जो कम से कम एक वर्ष तक मॉडलिंग के व्यवसाय में रह चुके हैं। महिला उम्मीदवारों से अपेक्षा की जाती है कि वे साक्षात्कार के दौरान

अपनी इस कला का लाइव प्रदर्शन कर सकें। पुरुष उम्मीदवारों के लिए उन विज्ञापन फिल्मों की सीडी/डीवीडी लाना काफी है जिनमें उन्होंने काम किया हो।

शिक्षा : उम्मीदवारों के लिए कम से कम ग्रेजुएट तक शिक्षित होना आवश्यक है। चूँकि यह चैनल हिन्दी समाचारों का है, इसलिए इंग्लिश माध्यम से पढ़े हुए उम्मीदवारों को वरीयता दी जाएगी। जिन्हें यह सौभाग्य नहीं मिला है अर्थात जो हिन्दी माध्यम से ही पढ़ पाए हैं, उनसे अपेक्षा की जाएगी कि वे हिन्दी का उच्चारण अंग्रेजी स्टाइल में करें। एमए से अधिक योग्यता डी-मेरिट मानी जाएगी। पीएचडी किए हुए उम्मीदवारों को दरवाजे से ही वापस लौटा दिया जाएगा। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि हमारे लिए शिक्षा का अर्थ मात्र डिग्री से है। उम्मीदवारों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्होंने जीवन भर अखबार, पत्रिकाओं और अपने सीनियर्स के मिजाज के अलावा और कुछ न पढ़ा हो। जिस उम्मीदवार ने कोर्स के अतिरिक्त दस से ज्यादा किताबें पढ़ रखी हों, उसे टीवी के पेशे के लिए अनुपयुक्त मान कर साक्षात्कार के दौरान ही छाँट दिया जाएगा। हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि किसी भी कर्मचारी को अपने बॉस से अधिक पढ़ा-लिखा होने का अधिकार नहीं है। पढ़े-लिखे व्यक्तियों को नियुक्त करने में यह खतरा भी निहित है कि बॉस तथा अन्य कर्मचारियों में हीनता ग्रंथि फैल सकती है।

भाषा : उम्मीदवारों को अशुद्ध लिखना, अशुद्ध पढ़ना और अशुद्ध बोलना, तीनों ही दृष्टियों से निष्णात होना चाहिए। बोलचाल की भाषा के नाम पर अंग्रेजी शब्दों को ठूँसते जाने की कला आनी चाहिए। नुक्ता सही जगह पर लगाने की योग्यता हो या नहीं, नुक्ते के प्रयोग पर आग्रह बना रहना चाहिए। स्क्रीन के पीछे अंग्रेजी गालियों पर अच्छी पकड़ आवश्यक है। सिर्फ हिन्दी जानने वालों या बातचीत में हिन्दी ही बोलने वालों को हेय दृष्टि से देखा जाएगा।

वैवाहिक स्थिति : पुरुष उम्मीदवारों से विवाहित और महिला उम्मीदवारों से अविवाहित होने की आशा की जाती है। जो उम्मीदवार अपनी वास्तविक वैवाहिक स्थिति को छिपा कर रखना चाहते हैं, उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। हमारा मानना है कि विवाह एक व्यक्तिगत मामला है और इसका उस आचरण से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए जिसे टीवी चैनलों में वांछनीय माना जाता है।

नैतिक मान्यताएँ : नैतिक बंधन इस समय देश की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा हैं। हम प्रतिभाशाली टीवी पत्रकारों से उम्मीद करते हैं कि वे नैतिक द्वंद्वों से हमेशा मुक्त रहेंगे। इन द्वंद्वों के कारण न्यूज का पर्सपेक्टिव और प्रस्तुतीकरण दोनों प्रभावित होते हैं। अगर कभी यह द्वंद्व खड़ा हो जाए कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक, तो इसका निर्णय नियोक्ता या उसके चमचों पर छोड़ देना चाहिए। टीवी पत्रकार को हर स्थिति में इस मत पर अडिग रहना चाहिए कि गाय काली है या सफेद, इससे हमें कोई मतलब नहीं - उसके थनों में दूध पर्याप्त होना चाहिए।

चरित्र : उम्मीदवारों में निम्नलिखित चरित्रगत विशेषताएँ जितनी अधिक मात्रा में हों, उन्हें उतना ही ज्यादा तरजीह दी जाएगी : परले दर्जे का चापलूस, मतलबी, अवसरवादी, सिद्धांतहीन, धूर्त, मूर्ख, छुपा रुस्तम, विश्वासघातक, घमंडी, नीच, दूसरों को सीढ़ी बना कर चढ़ने के बाद उन्हें भुला देने वाला, विचारहीन, दलित और मुसलिम-विरोधी, वस्तुओं के प्रति उपभोगवादी और स्त्रियों के प्रति भोगवादी दृष्टि रखने वाला, असामाजिक, बदतमीज, जूनियर्स को हमेशा दुत्कारने वाला और सीनियर्स के सामने दुम हिलाने वाला, फायदे की संभावना

दिखने पर सीनियर्स को भी काट खाने वाला, चुगलखोर, बॉस को खुश रखने के लिए दिन को रात और रात को दिन बताने में सक्षम आदि।

वेतन : जूनियर्स को कम से कम और सीनियर्स को अधिक से अधिक वेतन दिया जाएगा। ट्रेनी और इंटर्न के रूप में नियुक्त किए जाने वाले उम्मीदवारों को कम से कम दो वर्ष तक वही वेतन दिया जाएगा जो अन्य चैनलों में दिया जाता है। यानी कुछ भी नहीं।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

इस्तीफे ही इस्तीफे

राजकिशोर

हाजी साहब घूमते ही रहते हैं, तो पंडित जी घर से कम ही निकलते हैं। कहते हैं, दुनिया बहुत देख चुका, अब उसे समझने की कोशिश कर रहा हूँ। जैसे हाजी साहब ने हज नहीं किया है और हम लोगों ने श्रद्धावश उन्हें हाजी बना दिया है, उसी तरह पंडित जी भी ब्राह्मण नहीं हैं और हम लोग उनके ज्ञान और उससे अधिक उनकी जिज्ञासा वृत्ति का आदर करने के लिए उन्हें पंडित जी कहते हैं। कल रात हैदराबाद से हाजी साहब का फोन आया कि क्या तुम्हें सचमुच लगता है कि मनमोहन सिंह इस्तीफा दे देंगे, तो मैंने कहा कि आज तक तो उन्होंने किसी पद से इस्तीफा दिया नहीं, फिर वे प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा कैसे दे सकते हैं? हाजी साहब ने तपाक से कहा, बेटा, तुम रहते दिल्ली में हो, पर दिल्ली की नब्ज नहीं पहचानते। भारत की राजनीति अब एक नए दौर में प्रवेश कर रही है। ऐसी-ऐसी घटनाएँ होनेवाली हैं कि देखते रह जाओगे। मेरी उत्सुकता बढ़ी। मैंने सोचा कि जरा पंडित जी से बातचीत कर देखूँ, वे क्या सोचते हैं।

पंडित जी के यहाँ पहुँचा, तो वे कुछ लिखने में व्यस्त थे। मैंने पूछा, क्या किसी अखबार के लिए लेख लिख रहे हैं? पंडित जी मुसकराए। बोले, लेख-वेख लिखना बच्चों का काम है। इससे उनका मन बहलता रहता है। वे सोचते हैं कि हमने परिस्थिति में हस्तक्षेप कर दिया। लेखों के आधार पर भारत सरकार नहीं चलती। मैंने चुहल की, क्या इसीलिए कोसल में विचारों की कमी है? पंडित जी ने मुझे बैठने का संकेत करते हुए कहा, कोसल में विचारों की कमी नहीं, अधिकता है। लेकिन ये दूसरी तरह के विचार हैं। परमाणु करार भी ऐसा ही एक अधिक विचार है। इस विचार को देश ने स्वीकार नहीं किया, तो प्रधानमंत्री इस्तीफा भी दे सकते हैं। मेरा सवाल था - देश से आपका अभिप्राय क्या है? परमाणु करार के बारे में तो देश की राय ही नहीं ली जा रही है। देश को तो ठीक से पता भी नहीं है कि इस करार में क्या-क्या बातें हैं। पंडित जी ने स्पष्ट किया, इस समय तो वामपंथ ही देश है। वही देश की अंतरात्मा का प्रतिनिधित्व कर रहा है। तभी तो मनमोहन जी उसी को राजी कराने में लगे हैं। अन्य दलों को तो वे पूछते भी नहीं हैं। न इस विषय पर सर्वदलीय बैठक बुलाते हैं। ऐसा लगता है कि परमाणु करार की वकत महिला आरक्षण विधेयक से भी कम है। महिला आरक्षण विधेयक पर कई बार सर्वदलीय बैठक हो चुकी है, पर परमाणु करार पर सिर्फ यूपीए ही गुत्थमगुत्था है। यह करार क्या सत्तारूढ़ गठबंधन का आंतरिक मामला है या इसका संबंध संसद में मौजूद दूसरे राजनीतिक संगठनों से भी है? जिस मुद्दे पर विफल होने पर प्रधानमंत्री इस्तीफा तक देने की बात सोच सकते हैं, वह मुद्दा मामूली नहीं हो सकता। वह राष्ट्रीय मुद्दा है। उसके साथ राष्ट्रीय ट्रीटमेंट होना चाहिए।

पंडित जी से सहमत न हो पाना अकसर मुश्किल होता है। मैंने जानना चाहा, बात तो आपकी जँच रही है, पर आप लिख क्या रहे थे, यह तो बताइए। उन्होंने कहा, मैं इस्तीफे लिख रहा था। मेरा कुतूहल बढ़ा, इस्तीफे? आप तो कभी किसी पद पर रहे नहीं। फिर इस्तीफा किससे देंगे? पंडित जी हँसने लगे, अपने लिए नहीं, मनमोहन सिंह के लिए लिख रहा था। जब देश का प्रधानमंत्री संकट में हो, तो नागरिक का फर्ज बनता है कि उसकी सहायता करे। मैं यही कर रहा था। तो आप प्रधानमंत्री के इस्तीफे का ड्राफ्ट तैयार कर रहे थे, मैंने जानना चाहा। उन्होंने कहा, इस्तीफा नहीं, इस्तीफे। मैं उन्हें कई इस्तीफे भेजने जा रहा हूँ। इनमें से जो अच्छा लगे, उसे वह स्वीकार कर लें।

थोड़ा रुक कर पंडित जी ने स्पष्ट किया - एक इस्तीफा तो परमाणु करार को लेकर है ही। इसमें लिखा गया है कि चूँकि इस मुद्दे पर मैं अकेला पड़ गया हूँ, इसलिए इस्तीफा दे रहा हूँ। मैंने 'एकला चलो रे' का महत्व रवींद्रनाथ टैगोर से सीखा है। दूसरा इस्तीफा महँगाई को ले कर है। इसमें कहा गया है कि स्वयं अर्थशास्त्री होते हुए भी मैं महँगाई को बढ़ने से रोक नहीं पा रहा हूँ, इसलिए मेरी अंतरात्मा मुझे धिक्कार रही है। कीमतें जिस तरह बढ़ती जा रही हैं, उसे देखते हुए प्रधानमंत्री पद पर मेरा बने रहना अनैतिक है। तीसरे इस्तीफे का संबंध शेयर बाजार की लगातार गिरावट से है। इसमें मनमोहन सिंह कहते हैं कि जब राव साहब प्रधानमंत्री थे, मैंने कहा था कि शेयर बाजार में क्या हो रहा है, इससे मैं अपनी रातों की नींद हराम नहीं कर सकता। लेकिन आज मैं खुद प्रधानमंत्री हूँ। शेयर बाजार की जिम्मेदारी से कैसे मुकर सकता हूँ? इसलिए मैं इस पद से इस्तीफा दे रहा हूँ। चौथा इस्तीफा...

मैंने कहा, बस, बस, इतना काफी है। अच्छा, यह बताइए, सभी इस्तीफों को मिला कर एक ही इस्तीफा बना दिया जाए, तो कैसा रहेगा?

पंडित जी का चेहरा खिल उठा। बोले, इधर तो मेरा खयाल ही नहीं गया था। अच्छा प्रस्ताव है। प्रधानमंत्री इसे मान लेंगे, तो वे भारत के इतिहास में अमर हो जाएँगे।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

ईमानदारी बनाम समझदारी

राजकिशोर

बहुत दिनों से कॉमरेड से मुलाकात नहीं हुई थी। उसकी खबर जरूर आती रहती थी। खबर हमेशा खुशनुमा नहीं होती थी। इसलिए मैं उसे परेशान नहीं करना चाहता था। मेरा नियम यह नहीं है कि जब कोई मुसीबत में हो, तो उसे अकेला छोड़ देना चाहिए। लेकिन कॉमरेड का मामला अलग है। मैं जब भी उसकी सहायता करने की कोशिश करता हूँ, वह थोड़ा और परेशान हो जाता है। उसे राजनीति करनी है। अतः नैतिक सवालों में घसीटना उसे दुखी करना है। इसलिए भरपूर प्यार के बावजूद मैं उससे थोड़ा दूर-दूर ही रहता हूँ। कह सकते हैं कि हमारे संबंध के बने रहने में इस दूरी का भी महत्व है। लेकिन दूरी की खूबसूरती इसी में है कि उसे बीच-बीच में झकझोर दिया जाए। इसीलिए कभी वह मेरे घर आ जाता है, कभी मैं उसके घर चला जाता हूँ।

उस शाम कॉमरेड के घर पहुँचा, तो पता चला कि वह सो रहा है। यह नई बात थी। क्रांतिकारी दिन में तो क्या, रात को भी नहीं सोते। इस मामले में वे साधु की तरह होते हैं। साधु के बारे में कबीर की मान्यता यह है कि वह रात भर जागता है और रोता रहता है। फर्क यह है कि क्रांतिकारी रोता नहीं है, रुलाने की योजनाएँ बनाता रहता है। लेकिन मेरा कॉमरेड दोनों से ही भिन्न है। वह ठीक समय पर जगता है और ठीक समय पर सोता है। बीच में जनवाद के मूल्यों की रक्षा करने के लिए संघर्ष करता रहता है। इसलिए यह जान कर मुझे हैरत हुई कि जब पूरी दिल्ली दफ्तर से निकल कर घर जा रही है, वह खर्राटे भर रहा है। मैंने भाभी से कहा कि उसे जगा दो, आया हूँ तो भेंट करके ही जाऊँगा। भाभी जगाने गईं, पर खाली हाथ लौट आईं। उसने कहा, गहरी नींद में हैं। आपका नाम लिया, तो बोले, उसे यहीं भेज दो। फिर आँखें मूँद लीं।

मैं गया। वह अब भी सो रहा था। भाभी चाय वहीं ले आईं। शायद यह चाय की खुशबू थी जिसने कॉमरेड को आँख खोलने पर मजबूर कर दिया। उसने उलाहना दिया, अकेले-अकेले चाय पीते शर्म नहीं आ रही है? मैंने कहा, उठो तो तुम्हें भी चाय मिल जाएगी। कॉमरेड बोला, सोने दो, यार। बहुत दिनों के बाद ऐसी गाढ़ी नींद आई है। मैंने जानना चाहा, आखिर बात क्या है? कोई अच्छी घटना हुई है क्या? क्या पोलित ब्यूरो में तुम्हें शामिल किया जा रहा है? उसने बताया, नहीं, उससे भी बड़ी घटना हुई है। हमें एक ईमानदार प्रधानमंत्री मिल गया है। मैं चकराया, क्या यह तुम्हें अब मालूम हुआ है। कॉमरेड बोला, हाँ। तुमने पढ़ा नहीं, कॉमरेड करात का बयान आ गया है। उन्होंने साफ-साफ कहा है कि हम प्रधानमंत्री का बहुत सम्मान करते हैं; उनकी ईमानदारी सन्देह से परे है। इसीलिए मैं निश्ंिचत होकर सो रहा था। इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है कि देश का नेतृत्व ईमानदार हाथों में है। तब तक उसके लिए भी चाय आ गई। लेकिन वह उठा नहीं। लेटे-लेटे ही चाय की चुस्की लेता रहा और मुझसे बात करता रहा।

- फिर प्रधानमंत्री से तुम लोगों का विवाद क्या था?

- विवाद? कैसा विवाद? मतभेद को तुम विवाद नहीं कह सकते।

- अमेरिका के साथ परमाणु समझौते पर तुम्हारी पार्टी ने प्रधानमन्त्री को क्या नहीं कहा?

- यह हमारी ईमानदारी थी कि हमने अपने दृष्टिकोण को छिपाया नहीं। यह प्रधानमंत्री की ईमानदारी थी कि वे भी अपने दृष्टिकोण पर अडिग रहे। वे अब भी अपने दृष्टिकोण पर अडिग हैं जैसे हम अपने दृष्टिकोण पर अडिग हैं। वे हमारी ईमानदारी की प्रशंसा भले न करें, पर हम उनकी ईमानदारी की तारीफ करते हैं।

- लेकिन अर्थनीति के सवाल पर भी तो तुम दोनों के बीच गंभीर मतभेद हैं। प्रधानमंत्री का कहना है कि इस मतभेद की वजह से देश का विकास रुका हुआ है।

- वे ठीक कहते हैं।

- वे ठीक कहते हैं?

- हाँ, सौ बार हाँ। यह भी हम दोनों की ईमानदारी का सबूत है। वे अर्थव्यवस्था को एक दिशा में ले जाना चाहते हैं, हम दूसरी दिशा में ले जाना चाहते हैं। वे भी अपने स्तर पर ईमानदारी से सोचते हैं, हम भी अपने स्तर पर ईमानदारी से सोचते हैं। इसीलिए तो हमारा साथ निभता जा रहा है। हमारा संबंध अवसरवाद पर नहीं, ईमानदारी पर टिका हुआ है। हम उनकी आलोचना ईमानदारी से करते हैं, वे हमारी आलोचना ईमानदारी से करते हैं। यह ईमानदारी ही बिरला सीमेंट की तरह हमें सख्ती से जोड़े हुए है। यह साथ पूरे पाँच साल तक चलता रहेगा। यह सरकार अपने पूरे टर्म तक बनी रहेगी।

- उसके बाद?

- उसके बाद हम उनकी ईमानदारी का फिर मूल्यांकन करेंगे। हो सकता है, हमें उनकी पार्टी के खिलाफ चुनाव लड़ना पड़े। आखिर हम अपनी ईमानदारी के साथ दगा तो नहीं कर सकते।

- तो अभी अपनी ईमानदारी के साथ दगा क्यों कर रहे हो? प्रधानमंत्री का बाहर से समर्थन करते रहो और भीतर कोई हस्तक्षेप मत करो। एक ईमानदार प्रधानमंत्री को अपना काम शान्ति से करने दो।

इस बार कॉमरेड तैश में आ गया। वह एक झटके में उठ बैठा और बोला, तुम मूर्ख हो और मूर्ख ही रहोगे। राजनीति में ईमानदारी ही सब कुछ नहीं होती। समझदारी का भी महत्व है। समझदारी में गड़बड़ी हो, तो ईमानदारी अकेले क्या कर लेगी? मुझे भी तैश आ गया। मैंने कहा, तो तुम्हारा कहना यह है कि प्रधानमंत्री की ईमानदारी में सन्देह नहीं है, पर उनकी समझदारी पर हमें भरोसा नहीं है। इसीलिए तुम्हारी पार्टी समय-समय पर हस्तक्षेप करती रहती है।

कॉमरेड बोला, इस बारे में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। देखते हैं, कॉमरेड करात अपने अगले इंटरव्यू में क्या कहते हैं!

मुझे हँसी आ गई - यानी तुम्हें अपनी ही समझदारी पर भरोसा नहीं है। यह हुई न ईमानदारी की बात।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

उसने कहा था

राजकिशोर

कोई सत्ताईस-अट्ठाईस साल पहले की बात है। अमिताभ बच्चन अपने नवजात पुत्र की जन्म कुंडली लेकर एक बहुत बड़े ज्योतिषी के पास पहुँचे। इसके पहले वे कई और ज्योतिषियों से मिल चुके थे और उनकी भविष्यवाणियाँ सुन चुके थे। इन भविष्यवाणियों में बहुत-सी एक-दूसरे से नहीं मिलती थीं। लेकिन अनुभवी अमिताभ जानते थे कि ऐसा होता है। सितारों की गति को कौन ठीक-ठीक समझ सकता है? अमिताभ खुद भी एक सितारा थे और जिन्दगी में काफी उतार-चढ़ाव देख चुके थे। उन्होंने जब यह सुना कि अमेरिका से एक ज्योतिषी सिर्फ सात दिनों के लिए मुंबई आया हुआ है और वह कोई मामूली ज्योतिषी नहीं है, बल्कि उसके पास एस्ट्रोनॉमी और गणित की बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हैं और वह सिर्फ बड़े-बड़े लोगों की कुंडली देखता है, तो वे उस ज्योतिषी से मिलने के लिए बेचैन हो गए।

ज्योतिषी ने जितने बजे का समय दिया था, वह उसके दो घण्टे बाद मिला। उसकी युवा अमेरिकी सेक्रेटरी ने मीठे-मीठे शब्दों में और बार-बार क्षमा याचना करते हुए अभिताभ बच्चन को बताया कि अचानक देश की एक बहुत बड़ी हस्ती का कॉल आ गया। उन्हें उसी शाम स्वीडन जाना था और वे सर से कुछ राय करना चाहते थे। नेताजी के पास बस यही दो घण्टे खाली थे - 'सर को आपके लिए बड़ा अफसोस हुआ, लेकिन वे क्या करते! उनसे इतनी विनती की गई कि वे मना नहीं कर सके।' अमिताभ ने अपनी प्रसिद्ध सज्जनतावश बुरा मान कर भी बुरा नहीं माना और शांतिपूर्वक इंतजार करते रहे।

जब ज्योतिषी के फाइव स्टार कमरे से एक फाइव स्टार खादी-युक्त आकृति निकली, तो अमिताभ बच्चन के लिए बुलावा आ गया। अमेरिका में रहने वाले भारतीय ज्योतिषी ने भी बहुत ही विनम्रता से और कई बार माफी माँगी। औपचारिकताएँ सम्पन्न हो जाने के बाद ज्योतिषी को अभिषेक बच्चन की कुंडली दी गई। वह काफी देर तक नंगी आँखों से, फिर एक खास तरह का चश्मा लगा कर कुंडली का अध्ययन करता रहा। फिर उसने अपनी एक और युवा सचिव को बुलाया। यह भी बला की खूबसूरत थी। इसने कुंडली को स्कैन किया। अब ज्योतिषी उसे एक ऐसे कंप्यूटर पर पढ़ रहे थे, जिसका मॉनीटर साधारण कंप्यूटर से कई गुना बड़ा था। यह सब करीब आधे घण्टे तक चला। अगले आधे घण्टे तक वह आँखें बन्द कर सोचता-विचारता रहा। बीच-बीच में ऐसा लगता जैसे वह कोई मंत्र पढ़ रहा हो। वह कभी-कभी आँखें खोल कर कंप्यूटर के स्क्रीन पर भी एक नजर डाल लेता था, जहाँ भारत के सबसे बड़े फिल्मी सितारे के बेटे का भविष्य अंकित था।

जब ज्योतिषी ने गणनाएँ पूरी कर लीं और आँखें खोलीं, तो उसके चेहरे पर एक दिव्य मुस्कान थी। उसने कहा, 'यह जन्म कुंडली नकली है। इस मुहूर्त में आपके परिवार में कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ। आपने मेरी परीक्षा ले ली है। अब आप कृपया असली कुंडली निकालें।'

अमिताभ बच्चन की जवाबी मुस्कान भी कम दिव्य नहीं थी। उन्होंने नकली कुंडली वापस ले ली और अपने ब्रीफकेस से एक और कुंडली निकाली। ऐसा लग रहा था, जैसे कुछ हुआ ही न हो। दोनों सिद्ध खिलाड़ी थे और कोई किसी का बुरा नहीं मान रहा था। अमिताभ ने नई कुंडली ज्योतिषी की हथेली पर रखते हुए कहा, 'यू नो...' ज्योतिषी की मुस्कान 10.5 प्रतिशत चौड़ी हो गई। वह जानता था।

ज्योतिषी ने फिर वही सब प्रक्रियाएँ पूरी कीं, जिनसे पहली कुंडली को गुजरना पड़ा था। फिर उसने उसी सौम्य मुस्कान के साथ पूछा, 'कृपया बताएँ, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।' अभिताभ बच्चन ने यह साफ-साफ नहीं कहा, लेकिन उनकी मुखमुद्रा ने जवाब दिया कि वही, जिसके लिए लोग ज्योतिषियों के पास जाते हैं।

ज्योतिषी ने बहुत-सी बातें बताईं, जिनमें से कुछ तो वही थीं, जो अन्य ज्योतिषी अन्य तरीकों से बता चुके थे और कुछ नई थीं। उसकी प्रत्येक भविष्यवाणी के साथ किन्तु, परन्तु, हालाँकि, वैसे, एक तरह से आदि में से कुछ न कुछ लगा हुआ था। थोड़ी देर तक चर्चा होने के बाद ज्योतिषी ने अचानक कहा, 'कृपया मेरी यह बात जरूर नोट कर लें। मास्टर अभिषेक को राजा की निकटता से खतरा है। दरअसल, यह मामला आनुवंशिक है। यह खतरा आपको और आपकी पत्नी को भी है।'

यह सुन कर अमिताभ थोड़ा संजीदा हो गए। बोले, 'लेकिन हममें से किसी को दिलचस्पी राजनीति में नहीं है। मेरे माता-पिता को भी राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी।'

ज्योतिषी ने शांत स्वर में उत्तर दिया, 'हम वर्तमान के बारे में नहीं, भविष्य के बारे में बात कर रहे हैं।'

अमिताभ ने भी शांत स्वर में पूछा, 'लेकिन भविष्य क्या वर्तमान का ही विस्तार नहीं है?'

ज्योतिषी - 'है, लेकिन अपना वर्तमान भी कौन पूरी तरह जानता है? फिर, कोई एक वर्तमान नहीं होता। प्रत्येक नया क्षण एक नया वर्तमान है। व्यक्ति का भविष्य भी इसी हिसाब से बदलता रहता है। आज से दस साल बाद आप यही कुंडली लेकर मेरे पास आएँगे तो हो सकता है, मैं कुछ दूसरी तरह की बातें बताऊँ। कुंडली वही रहती है, पर उसका अर्थ बदलता रहता है। आप अपने इतिहास को नहीं बदल सकते, पर आपका इतिहास आपको कभी घोड़ा और कभी गधा दोनों बना सकता है।'

इसके अनेक वर्षों के बाद, अमिताभ बच्चन को तब इस ज्योतिषी की बहुत याद आई, जब उन्होंने इलाहाबाद से हेमवती नंदन बहुगुणा के विरुद्ध लोक सभा चुनाव का परचा भरा, तब भी जब वे विशाल बहुमत के साथ जीत कर संसद में पहुँचे और तब और भी ज्यादा, जब उन्होंने बोफोर्स विवाद के बाद लोक सभा से इस्तीफा दे दिया और घोषणा की कि अब राजनीति के इस दलदल में कभी नहीं लौटूँगा।

इसके और भी अनेक वर्षों के बाद, अमिताभ को उस ज्योतिषी की फिर याद आई, जब उनकी पत्नी जया बच्चन को लाभ के पद पर होने के कारण लोक सभा से निकाल दिया गया।

इसके और भी ज्यादा वर्षों बाद, अभिताभ को उस ज्योतिषी की बेसाख्ता याद आई जब लखनऊ के एक कार्यक्रम में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव अभिषेक बच्चन को 'यश भारती' पुरस्कार प्रदान करते हुए उन्हें शॉल और मानपत्र भेंट कर रहे थे।

मुंबई लौटकर अमिताभ बच्चन ने उस अमेरिकी ज्योतिषी का पता लगाने की कोशिश की। पता चला कि एड्स से उसकी मृत्यु हो चुकी थी। यह भी पता चला कि मरने से पहले उसने एक नोट लिखा था, जिसमें कहा गया था, 'मुझे गहरा दुःख है कि मैंने जीवन भर बहुत-से बड़े-बड़े लोगों को बेवकूफ बनाया। आश्चर्य की बात यह है कि मेरी कई भविष्यवाणियाँ सच्ची कैसे साबित हुईं।'

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक अचूक नुस्खा

राजकिशोर

कल अचानक हाजी साहब से मुलाकात हो गई। वे मेरे पुराने दोस्तों में हैं। पर उनसे कब मुलाकात होगी, यह तय नहीं रहता। देश भर में घूमते रहते हैं। कभी कहीं से पोस्टकार्ड भेज देते हैं, कभी कहीं से फोन कर देते हैं। पिछली बार उनका फोन आया था, तो वे नंदीग्राम में थे, जहाँ पंचायत चुनाव चल रहे थे। वहाँ के हाल बताते हुए फोन पर ही रो पड़े थे। बोले, 'इस जुल्म की सजा सीपीएम को जरूर मिलेगी।' बाद में चुनाव परिणामों ने हाजी साहब के मुआयने की पुष्टि की।

बातों-बातों में महँगाई को लेकर चर्चा चल पड़ी। हाजी साहब हँसने लगे। बोले, इसका इलाज तो चुटकियों में हो सकता है। लेकिन कोई भी सरकार इस मामले में संजीदा नहीं है। इसलिए कुछ बोलना बेकार है।

मैंने कहा, मजाक की बात नहीं है। आप वही कहेंगे न जो पंडित नेहरू कहा करते थे - मुनाफेबाजों को सबसे नजदीक के लैंप पोस्ट से लटका दो।

हाजी साहब - तुम जानते हो, मैं किसी की जान लेने के खिलाफ हूँ। जान दे सकता हूँ, पर ले नहीं सकता।

मैंने जानना चाहा - तो क्या आपका फॉर्मूला वह है, जिसकी वकालत एक जमाने में बंगाल के कम्युनिस्ट किया करते थे? उनकी टोलियाँ मुहल्ले-मुहल्ले में घूमते हुए नारा लगाती थीं - जो बदमाश और भ्रष्ट हैं, उनकी 'गन धोलाई करते होबे, करते होबे।' गन धोलाई माने सार्वजनिक पिटाई।

हाजी साहब - मेरे लिए मारना-पीटना हत्या करने की ही निचली सीढ़ियाँ हैं।

- तो आपका सुझाव क्या है? कीमतों को कैसे थामा जा सकता है?

हाजी साहब - किसी न किसी ने कीमतों को जरूर थामा हुआ है। नहीं तो वे ऊपर-नीचे कैसे होती रहती हैं? कीमतें तो बेजान चीजें हैं। वे खुद कैसे चढ़-उतर सकती हैं?

- हाजी साहब, पहेलियाँ न बुझाइए। करोड़ों लोगों की जिंदगी का सवाल है।

हाजी साहब को हलका-सा ताव आ गया। बोले - तो सुनो। मेरे फार्मूले से कीमतें गिरें या न गिरें, पर यह तो मालूम हो ही जाएगा कि किसी चीज की असली कीमत क्या है। उसके बाद कीमतों को काबू में करना आसान हो जाएगा।

मैंने पूछा - किसी चीज की असली कीमत क्या है?

हाजी साहब - उसकी लागत के साथ उचित पारिश्रमिक या उचित मुनाफा जोड़ दो, तो असली कीमत सामने आ जाएगी। कोई चीज उससे ज्यादा पर नहीं बिकनी चाहिए।

तो क्या ऐसा नहीं हो रहा है? - मेरा अज्ञान उबल पड़ा।

हाजी साहब - नहीं, आज न तो सरकार को मालूम है, न जनता को कि किसी चीज की असली कीमत क्या है। मसलन दस रुपए का जो साबुन बिक रहा है या चार लाख रुपए की जो कार बिक रही है, उसकी असली लागत क्या है, यह सिर्फ साबुन या कार बनानेवाला या बेचनेवाला ही जानता है, और कोई नहीं।

- तो होना क्या चाहिए?

- होना यह चाहिए कि हर उद्योगपति और व्यापारी के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाए कि वह अपने सामान की लागत और अपने मुनाफे की रकम, दोनों की सूचना देते रहे। सरकार इस पर विचार करेगी कि वह लागत और वह मुनाफा जायज है या नहीं। अगर लागत को बढ़ा कर बताया गया है, तो उसे नीचे ले आएगी। अगर मुनाफा ज्यादा लिया जा रहा है, तो उसे भी कम करेगी। इस तरह हर चीज अपनी असली कीमत पर बिकेगी। जब लागत बढ़ेगी, तभी कीमत को बढ़ने दिया जाएगा। जो उचित कीमत से अधिक वसूलेगा, उसे जेल में रखा जाएगा। वहाँ उसे मुफ्त में नहीं रखा जाएगा, बल्कि उससे काम कराया जाएगा तब खाना-कपड़ा दिया जाएगा।

- और किसी को उसकी चीजों की वाजिब कीमत न मिल रही हो, तब? जैसे, किसान कहते हैं कि उन्हें अनाज का वाजिब दाम नहीं मिल रहा है। इसीलिए, किसानी घाटे का सौदा हो गई है।

- इसका भी इलाज है। अगर किसी को कोई चीज पैदा करने में घाटा हो रहा है, तो उससे कहा जाएगा, वह कोई और काम करे। जिस चीज की पैदावार राष्ट्रीय या सामाजिक हित में जरूरी है, उसकी उचित कीमत दिलाने की जिम्मेदारी सरकार की रहेगी। अगर व्यापारी पूरी कीमत देने से मना करते हैं, तो सरकार उसे उचित कीमत पर खरीद लेगी और जनता को बेचेगी। समर्थन मूल्य जैसी अवधारणा तुरंत खत्म हो जानी चाहिए। क्यों भइए, किसान भिखारी हैं क्या, जो उन्हें समर्थन मूल्य देते हो? गेहूँ, कपास, चावल, चीनी वगैरह का उचित मूल्य घोषित करो और चारों ओर मुनादी पिटवा दो कि जितना भी माल इस कीमत पर बिकने से रह जाएगा, उसे सरकार खरीद लेगी और कीमत तुरंत चुकाएगी। तब देखना, कितने किसान आत्महत्या करते हैं।

मैं सोचने लगा। बोला, हाजी साहब, बात तो आपकी सोलह आने जँचती है। पर सरकार ऐसा करेगी भी?

हाजी साहब - इसीलिए तो मैं इस बारे में कुछ बोलता नहीं। हाँ, एक और संभावना यह है कि जो काम सरकार नहीं करना चाहती, उसे जनता करके दिखाए। जन स्तर पर कीमत समितियाँ बनें और उचित कीमत की व्यवस्था को लागू करें। सरकार इसका विरोध नहीं कर सकेगी, क्योंकि जनता बड़े पैमाने पर इस अभियान का साथ देगी।

- तो हाजी साहब, आप ही यह अभियान शुरू क्यों नहीं करते? पुण्य का काम है।

हाजी साहब खिलखिला पड़े - अपन आनंदमार्गी हैं। अपन से विमर्श के सिवाय कुछ नहीं होगा। तुम कुछ नौजवानों से बात करो।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक अटूट कड़ी

राजकिशोर

वह एक छोटा-सा मध्यवर्गीय परिवार था। वैसे, बहुत छोटा भी नहीं और बहुत मध्यवर्गीय भी नहीं। फिर भी, हर मध्यवर्गीय परिवार की तरह दोनों चीजें वहाँ मौजूद थीं। मैं चाहता, तो 'दोनों चीजों' के स्थान पर 'दोनों व्यक्ति' लिख सकता था। लेकिन बरतन माँजनेवाली और झाड़ू-पोंछा करनेवाली के लिए व्यक्ति लिखना कुछ अधिक हो जाता है। क्या इन्हें व्यक्ति माना जाता है? 'सहायिकाएँ' लिखना शायद बेहतर है। लेकिन जिस लड़की या औरत से वह काम कराया जाता हो, जिसे हमारे देश की अधिकांश महिलाएँ नहीं करना चाहतीं, उसे सहायिका कहना भी उसे थोड़ा ऊँचा दर्जा देना है। इनके लिए लगभग हर जगह कामवाली शब्द ज्यादा प्रचलित है।

तो वह भी कामवाली थी। उसका काम था दिन में दो वक्त आ कर बरतन माँज जाना। जिसे मैंने देखा, वह एक दुबली-पतली लड़की थी। देखने में सात-आठ साल की, पर वास्तविक उम्र चौदह साल। इस उम्र की हमारी-आपकी बेटियाँ स्कूल जाती हैं। उनकी आँखों में सपने तैरने शुरू हो जाते हैं। वह बेचारी न स्कूल जाती थी न बेहतर जीवन के सपने देखती थी। वह बिना नागा रोज आती थी और बरतनों को चमका कर चली जाती थी, ताकि उनमें उस परिवार के लोग अपना भोजन बना सकें और खा सकें। उसे महीने के डेढ़ सौ रुपए मिलते हैं। मेरा संगणक बताता है, एक दिन में पाँच रुपए। एक वक्त के ढाई रुपए। किसी भी कसौटी से यह मेहनताना वाजिब नहीं कहा जा सकता। स्वयं उस परिवार के मुखिया इसे वाजिब नहीं मानते। लेकिन वे भी क्या कर सकते हैं? चलन यही है। वे चलन से बाहर जा कर अपना पैसा क्यों बरबाद करें? हम सभी ऐसा ही सोचते हैं और करते हैं।

अगर इसे कामवाली का शोषण कहा जाए, तो उस परिवार के मुखिया स्वयं भी शोषण के शिकार हैं। वे जिस कारखाने में तीस-पैंतीस वर्षों से काम कर रहे हैं, वह पिछले पाँच-छह वर्षों से बंद है। पहले वहाँ अच्छा वेतन मिलता था। मालिक विदेशी थे। जब से कारखाना देशी मालिकों के हाथों में आया, उन्होंने कारखाना और उसके कर्मचारी, दोनों के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर दिया। कारखाने को बंद करने की दिशा में ले जाने के लिए पहले कुछ सेक्शन बंद किए, फिर वेतन देने में देर करने लगे और अंत में सारा काम ही ठप कर दिया। दो वर्षों के बाद कारखाने को खोला, तो कुछ सेक्शन ही चलाए। उनके कर्मचारियों को आधा वेतन देना शुरू किया। इसके बाद बंद करने और खोलने का सिलसिला चलता रहा। जब कर्मचारियों को आधा पैसा दिया जा रहा था या बिल्कुल पैसा नहीं दिया जा रहा था, तब उत्तर प्रदेश की सरकार, भारत की सरकार सभी इस घटना से आँख मूँदे हुए थे। मामला अभी लेबर कोर्ट में चल रहा है, लेकिन देश के किसी भी सरकारी अधिकारी या संस्थान को रत्ती भर फिक्र नहीं है कि उस कारखाने के कर्मचारियों के घर में चूल्हा कैसे जलता होगा।

बेशक कामवालियों को नियुक्त करनेवाले सभी परिवारों की स्थिति इतनी नाजुक नहीं है। फिर भी, इनमें से अधिकांश परिवार स्वयं शोषित की कोटि में आते हैं। जैसे कामवाली की मजबूरी है कि वह अपना आर्थिक शोषण कराए, नहीं तो वह बेरोजगार हो जाएगी, वैसे ही इन शोषित मध्यवर्गीयों की मजूबरी है कि ये अपना आर्थिक शोषण कराएँ, नहीं तो ये बेरोजगार हो जाएँगे। अर्थात वर्तमान भारत में अधिकांश रोजगार ऐसे हैं, जो शोषण की किसी न किसी प्रक्रिया से

जुड़े हुए हैं। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि सिर्फ पैसेवाले गरीबों का

शोषण करते हैं। दरअसल, हमारी पूरी व्यवस्था ही शोषण के विभिन्न स्तरों पर

खड़ी है।

यही बात जीवन के अन्य क्षेत्रों के बारे में भी कहीं जा सकती है। जाति प्रथा भी मान-अपमान के विभिन्न स्तरों पर आधारित रही है। क जाति ख जाति को अपने से नीचा समझती है और ख ग को। इस तरह सब कहीं न कहीं ऊपर और कहीं न कहीं नीचे होते हैं। लिंग और उम्र के आधार पर जो शोषण या दमन होता है, वह भी सर्वव्यापक है और उसके भी इतने स्तर हैं कि थोड़ा-बहुत संतोष सभी को हासिल हो जाता है। सच तो यह है कि कोई भी अन्यायपूर्ण व्यवस्था इसीलिए चल पाती है कि उसमें शोषण के विभिन्न स्तर होते हैं और हरएक के पास शोषण का एक मुट्ठी आसमान होता है। कर्मचारियों के आर्थिक शोषण के खिलाफ जिन्होंने संघर्ष किया, उन्होंने शोषण के अन्य रूपों से आंख मूँद ली। इसीलिए वे शोषण की संस्कृति के खिलाफ व्यापक गुस्सा पैदा नहीं कर सके। इनमें से प्रायः सभी नेता और संगठन खुद कर्मचारियों का शोषण करते थे।

इसीलिए जो लोग शोषण के किसी एक स्तर को समाप्त करने के लिए लड़ रहे हैं, वे विफल होने को बाध्य हैं। शोषण खत्म होगा तो उसके सभी रूप एक साथ खत्म या कमजोर होंगे। नहीं तो जो रूप लुप्त हो चुके हैं, वे भी लौट कर आने की कोशिश करेंगे। प्रेम की तरह शोषण भी एक अटूट कड़ी है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक अल्पसंख्यक का पत्र

राजकिशोर

प्रिय प्रधानमंत्री जी, लोकतंत्र के इतिहास में आपका यह वाक्य अमर रहेगा कि देश के संसाधनों पर पहला हक अल्पसंख्यकों का है। इसका बाकी हिस्सा कि 'खासकर मुसलमानों का' अमर रहेगा या नहीं, मुझे इसमें संदेह है। संदेह इसलिए कि आपने राजनीतिक दृष्टि से एक अनुपयुक्त नाम ले लिया है। 'इस्लाम' या 'मुसलमान' शब्दों का प्रयोग करते समय आजकल बहुत सावधान रहना चाहिए। या तो आप मुसलमानों के प्रति अपने प्रेम के कारण मारे जाएँगे या उनके प्रति अपनी घृणा के कारण। इस्लाम-विरोध के कारण बुश लगातार अलोकप्रिय होते जा रहे हैं। आपने सोचा होगा कि मुसलमानों के प्रति प्रेम जाहिर कर मैं लोकप्रिय हो जाऊँगा। लेकिन नतीजा उलटा ही हुआ है। उन लोगों द्वारा संसद को कई दिनों तक ठप किया गया, जो मानते हैं कि देश के उन्हीं संसाधनों पर मुसलमानों का हक है, जिनकी हिन्दुओं को कोई जरूरत नहीं है। और, हक भी नहीं है, क्योंकि वे भारतीय मूल के नहीं हैं। देश में और भी अल्पसंख्यक समुदाय हैं।

आपके इस पूरे वक्तव्य से वे भी हैरान होंगे कि प्रधानमंत्री को हो क्या गया है? बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच बढ़ रही भयानक दूरी को कम करने के बाद अब वे क्या अल्पसंख्यकों को अल्पसंख्यकों से ही लड़ाना चाहते हैं? अब, संसाधनों पर पहले हक के लिए कोई और अल्पसंख्यक समुदाय लड़ेगा, तो जाहिर है, मुसलमान उससे नाराज हो जाएँगे। मुझे पूरा यकीन है कि आप मुसलमानों के लिए कुछ खास करने नहीं जा रहे हैं - न किया है, न करेंगे - लेकिन उनके पहले हक की बात आप जिस शैली में कर बैठे हैं, उससे उनके मुँह दिखाने की जगह नहीं रह गई है। उनके हिन्दू पड़ोसी भी उन्हें घूर कर देखते हैं।

जहाँ तक देश के संसाधनों पर अल्पसंख्यकों का पहला हक होने की बात है, मैं आपसे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। लोकतंत्र के सिद्धान्त में यह एकदम नई बात लगती है, पर इसकी हैसियत सनातन सत्य की है। अब तो विद्वान लोग भी कहने लग गए हैं कि लोकतंत्र बहुमत पर अल्पमत का शासन है। यह अल्पमत समाज के विशिष्ट वर्ग का होता है। यह वर्ग हमेशा अल्पसंख्यक ही होता है। इस अर्थ में जवाहरलाल, इंदिरा गांधी और मोरारजी भाई से लेकर विश्वनाथ प्रताप सिंह, इंदर कुमार गुजराल और नरसिंह राव तक सभी अल्पसंख्यक वर्ग या समुदाय में आते हैं। यह वह तबका है - भारत के करीब दस-पन्द्रह प्रतिशत लोगों का - जो देश पर शासन करता है। सुविधाओं की सभी देवियाँ इसी वर्ग के चारों ओर नाचती रहती हैं। आर्थिक नीतियाँ इसी वर्ग के हित में बनाई जाती हैं। ऐसा नहीं होता, तो डीडीए जैसी सरकारी नगर विकास या आवास विकास संस्थाएँ शहरों में नहीं, जहाँ मकानों की वैसे ही बहुतायत होती है, गाँवों में मकान बनातीं, जहाँ झोंपड़ियों की संख्या मकानों से ज्यादा है।

इस वर्ग की पहचान क्या है? व्यक्ति अंग्रेजी जानता हो, ऊँची जाति का हो और सुख-सुविधाओं से संपन्न हो। बेशक जाति की शर्त कभी-कभी ढीली कर दी जाती है, क्योंकि लोकतंत्र की कार्य प्रणाली ही ऐसी है कि विशेष परिस्थिति में कोई भी सत्ता पर कब्जादार हो जाए जैसे चरण सिंह, चन्द्रशेखर या देवगौड़ा हो गये थे। कल हो सकता है, लालू प्रसाद या मायावती प्रधानमंत्री हो जाएँ। ये सभी मूलतः उसी सुख-सुविधा सम्पन्न वर्ग के सदस्य ही हैं जिसका समाज के संसाधनों पर पहला हक है। लालू प्रसाद, मुलायम सिंह आदि को ओबीसी माना जाता है, पर सच यह है कि ये अपने ओबीसी समुदाय से विद्रोह कर उस एलिट वर्ग में शामिल हो चुके हैं, जिसके द्वारा किए गए या किए जा रहे शोषण को कोस-कोस कर ये अपने समुदाय के नेता बने थे। मेरा ख्याल है, मायावती भी अब दलित नहीं रह गई हैं। उन्होंने अपने दलित समुदाय का दलन करने वाले वर्ग की सदस्यता ले ली है।

तो सर, मामला यह है, जैसा कि आप अपनी जीवनशैली पर गौर करके भी समझ सकते हैं, कि अल्पसंख्यक वर्ग ही समाज पर शासन करता है। इस वर्ग में राजनेताओं और नौकरशाहों के अतिरिक्त पूँजीपति, भूसामंत, टेक्नोशाह, सरकार का समर्थन करने वाला बुद्धिजीवी वर्ग, टीवी और अखबार वाले भी शामिल हैं। किसी भी देश के आर्थिक संसाधनों पर पहला हक इसी वर्ग का होता है। इनके उपभोग के बाद जो कुछ बचता है, उसे बाकी लोगों में बाँट दिया जाता है। लेकिन इस सच्चाई को कोई स्वीकार नहीं करता। कहते सभी यही हैं कि लोकतंत्र तो बहुमत का शासन है। शायद इसलिए कि ऐसा न कहें, तो वे अपना अल्पसंख्यक शासन चला नहीं सकते।

अब अमेरिका और बिट्रेन को ही देखिए। वहाँ का बहुमत चाहता है कि वहाँ से अमेरिकी-ब्रिटिश सेनाएँ वापस आ जाएँ और उस देश को उसके हाल पर छोड़ दिया जाए, पर अल्पमत में होते हुए भी हुक्मरान लोग इराक में अभी भी जमे हुए हैं। ऐसे ही, भारत में बहुसंख्यक लोग शान्ति चाहते हैं, पर मुट्ठी भर लोग उपद्रव और हिंसा का वातावरण बनाए हुआ हैं। सरकार अगर अल्पसंख्यकों की तानाशाही को रोकने की कोई गंभीर कोशिश नहीं कर रही है, तो इसका मतलब मेरे लिए तो यह है कि देश के अल्पसंख्यक शासक वर्ग का इन अल्पसंख्यकों गुंडों के साथ कोई गुप्त समझौता जरूर है।

इसलिए आप न घबराइए, न शरमाइए। दहाड़कर बोलिए कि जब तक देश में समाजवाद नहीं आ जाता, संसाधनों पर पहला हक तो अल्पसंख्यकों का ही रहने वाला है, क्योंकि अब तक की रीत यही है। सर, मैं भी उन्हीं अल्पसंख्यकों में हूँ जो मानते हैं कि बहुमत का शासन न केवल संभव, बल्कि अपरिहार्य है। इसलिए मैं जानता हूँ कि मेरी किसी बात का असर आप पर होने वाला नहीं है। आप उस अल्पसंख्यक वर्ग में हैं जो बसें और रेलगाड़ियाँ चलवाता है, पर उनमें सफर नहीं करता।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक करोड़ से कुछ कम

राजकिशोर

वे पाँच थे। तीन के शरीर खादी से ढके हुए थे और दो के सफारी से। लेकिन इससे उनकी पहचान में कोई फर्क नहीं पड़ता था। अव्वल तो उनकी तरफ किसी शरीफ आदमी की नजर उठती ही नहीं थी और उठती तो तुरंत स्पष्ट हो जाता कि वे कांग्रेस नाम की उस संस्था के सदस्य हैं जो किसी भी घाट पर पानी पी सकती है और उससे जीवनी शक्ति अर्जित कर सकती है। उन पाँचों के चेहरे पर रुआब का जो पतला पानी था, वह कांग्रेस के गहरे गड्ढे से ही संचित किया हुआ था। ऐसी शख्सियतों से मेरा नजदीक का पाला कभी नहीं पड़ा। उनके बारे में मैं जो भी जानता था, उसका आधार उनके बारे में फैली हुई किंवदंतियाँ या सत्यकथाएँ थीं। अनेक जीवों को हमने देखा नहीं होता है, पर उनके गुणों से हम सभी अवगत होते हैं। हर जानकारी अगर अनुभव के आधार पर ही जुटानी पड़े तो मानव जाति तबाह हो जाएगी।

वे पाँच थे, पर उनमें मतैक्य था। कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण था, जो उन्हें इस क्षण ऐक्यबद्ध कर रहा था। विचारों से नहीं, इरादे से। वे मेरे घर में यद्यपि घंटी बजा कर, लेकिन साधिकार घुसे और सोफे पर इस तरह पसर गए जैसे वे रुबाई नहीं, गजल पढ़ने की तैयारी करके आए हों। शायद वे मेरे बारे में जानते थे और उन्हें मुझसे बहुत ज्यादा उम्मीद नहीं थी। फिर भी, जाहिर था कि उन्हें अपने आप पर पूरा भरोसा है। बिना इस भरोसे के राजनीति की भी नहीं जा सकती। लेकिन वे मेरे पास किसी राजनीतिक काम से नहीं आए थे। इसके लिए कोई नेता, चाहे वह कितना भी छुटभैया हो, नागरिक के पास नहीं आता। उनका ध्येय आर्थिक था, जैसा कि होता है।

स्वागत-सत्कार के बाद मैंने जानना चाहा कि मैं उनके लिए क्या कर सकता हूँ। उनमें से एक रहस्यमय ढंग से मुस्कराया, 'कुछ नहीं, बस आपका थोड़ा-सा सहयोग चाहिए।' 'फरमाइए।' 'ऐसा है कि हम चंदा माँगने के लिए निकले हैं।' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि कांग्रेस के बारे में मेरी समझ यह थी कि उसे अब जनसाधारण के पैसों की जरूरत नहीं रही। यहाँ तक कि अब चवन्निया सदस्य बनाने का अभियान भी नहीं चलाया जाता। पैसे जमा करने के मामले में वह फुटकर के बजाय थोक पर भरोसा करती है। मेरी आर्थिक स्थिति जैसी है, उसे देखते हुए कहीं से भी यह आशंका नहीं थी कि आज की कांग्रेस मुझे चंदा माँगने लायक समझ सकती है। सो मैंने अटकल लगाने की कोशिश की, 'यह परिवर्तन कैसे? क्या इस बार के चुनाव जनता के पैसे से लड़े जा रहे हैं?' यह उन्हें लहरा देने के लिए काफी था। चेहरे तो कई के तमतमाए, लेकिन जवाब उसने दिया जो सबसे ज्यादा खुर्राट जान पड़ता था, 'अजी, क्या बात कही आपने! क्या कांग्रेस की हालत इतनी पतली हो चुकी है कि वह चुनाव लड़ने के लिए भीख माँगती फिरे? माफ कीजिए, मैं आपको पढ़ा-लिखा समझता था।'

अपने अज्ञान पर मुझे शर्म आई। भारत के आम नागरिक की हैसियत यह हो चुकी है कि कोई भी उसे शर्मिंदा कर सकता है। अपनी शर्म मिटाने की कोशिश करते हुए मैंने जानना चाहा, 'माफ कीजिए, जबान फिसल गई। कृपया बताएँ कि आप किस अभियान पर निकले हैं।' बीच में बैठे हुए ने खँखारते हुए-से कहा, 'आपने अखबारों में देखा ही होगा कि सोनिया जी के पास एक करोड़ से कुछ कम की संपत्ति है। यही कोई पाँचेक लाख कम पड़ रहे हैं। हालांकि अनेक लोगों का कहना है कि सोनिया जी ने अपनी कुल संपत्ति का मूल्य बहुत कम करके दिखाया है, लेकिन यह सब उनके राजनीतिक विरोधियों का प्रोपेगैंडा है। यह हमारी राष्ट्रीय नेता के चरित्र हनन की कोशिश है। हम इस बेहूदा अभियान को सफल नहीं होने देंगे। लेकिन हम यह भी नहीं चाहते कि उनकी संपत्ति एक करोड़ से कम रह जाए।'

उसके बाईं ओर बैठे ने बात पूरी करने की कोशिश की, 'आज हम यह सोच कर निकले हैं कि कम से कम पाँच लाख रुपए जमा करके ही दम लेंगे। हम चाहते हैं कि यह राशि कल ही उन्हें सार्वजनिक रूप से भेंट कर दी जाए, ताकि कोई यह तोहमत न लगा सके कि कांग्रेस अध्यक्ष के पास एक करोड़ की भी संपत्ति नहीं है। दूसरे, हम उन्हें पाँच लाख की एक छोटी-सी कार भी भेंट करना चाहते हैं। बताइए, यह भी कोई बात हुई कि कांग्रेस जैसी ऐतिहासिक संस्था के अध्यक्ष के पास एक कार भी न हो! बताइए, आप कितना दे रहे हैं!'

दाईं ओर बैठे ने स्पष्ट किया, 'घबराइए नहीं, हम एक-एक पैसे की रसीद देंगे। हम टीवी वालों को यह दिखाना चाहते हैं कि सोनिया जी की इज्जत रखने के लिए जनसाधारण किस तरह उमड़ पड़ा है। टीवी पर सारी रसीदों की नुमाइश की जाएगी। और हमने यह भी तय किया है कि किसी एक आदमी से दस हजार से ज्यादा का सहयोग नहीं लेंगे। हम चाहते तो यह थे कि एक हजार की सीलिंग रखी जाए। मगर हमने हिसाब लगा कर देखा कि तब हमें कम से कम एक हजार आदमियों के पास जाना पड़ेगा। आजकल इतना समय किसके पास है? फिर दिल्ली में गर्मी कितनी पड़ रही है!'

मैंने कहा कि कांग्रेस तो गरीबों की पार्टी है। वह गरीबों के लिए काम करती है। फिर कांग्रेस अध्यक्ष के पास एक करोड़ की संपत्ति क्यों हो? इस पर पाँचों सकते में आ गए। जवाब बाईं ओर एकदम किनारे बैठे ने दिया, 'लगता है, आप अखबार भी नहीं पढ़ते। पढ़ते होते, तो आपको मालूम होता कि जयललिता के पास चौबीस करोड़ रुपए की संपत्ति है। करुणानिधि के पास बाईस करोड़ की संपत्ति है। मायावती के पास पता नहीं कितना होगा। पर आपसे इस बहस में क्या पड़ना। कुछ देना हो तो दीजिए, नहीं तो हमारा समय मत खराब कीजिए।'

मेरे गरीब-से चेहरे पर असमर्थता के भाव पढ़ कर उनमें जो सबसे बुजुर्ग था, वह बोल उठा, 'छोड़िए, आपको कुछ भी देने की जरूरत नहीं है। बस आप इस रसीद पर साइन कर दीजिए। आपकी ओर से दस हजार रुपए की रकम हम भर देंगे।'

राहत का अनुभव करते हुए, अपने जीवन में मैंने पहली बार महसूस किया, कांग्रेस के हृदय में गरीबों के प्रति सचमुच कितनी हमदर्दी है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक बार गर्ल की डायरी

राजकिशोर

वह दिन मेरे लिए कितनी खुशी का था, जब उच्चतम न्यायालय ने यह फैसला सुनाया कि बार में महिलाएँ भी शराब परोस सकती हैं। मैं जानती हूँ कि जेसिका लाल का खून इसी पेशे की वजह से हुआ था। लेकिन रोज कोई न कोई कार दुर्घटनाग्रस्त हो जाती है, इससे लोग खरीदना या कार में बैठना थोड़े ही छोड़ देते हैं। औरत होने के कारण मैं जानती हूँ कि जीवन अपने आपमें एक दुर्घटना है। जब से अपने औरत होने का एहसास हुआ, मैंने यही पाया है कि हर आदमी में एक भेड़िया छिपा हुआ होता है और मौका मिलते ही वह अपने शिकार पर छलाँग लगा बैठता है। इसलिए, औरत होने के नाते, मैं हर समय दुर्घटना की प्रतीक्षा में लगी रहती हूँ। जिस दिन कम दुर्घटनाएँ होती हैं, उस दिन मैं ऊपरवाले का धन्यवाद करती हूँ। सो बार में ग्राहक को शराब देने की नौकरी से मुझे बिल्कुल डर नहीं लगा। मैं जानती थी कि बार में मैं अकेली तो रहूँगी नहीं, फिर कोई क्या कर लेगा।

लेकिन जिस दिन मैं नौकरी के लिए इंटरव्यू देने गई, वह मेरे लिए एक मनहूस दिन साबित हुआ। मैं तो साकी (मैंने उर्दू शायरी बहुत पढ़ी है और साकी होने की कल्पना से ही मेरा तन-मन रोमांचित हो उठता है; अमिताभ बच्चन के फादर ने, जो बहुत बड़े कवि थे, इसे मधुबाला कहा है) बनने की तमन्ना से भरी हुई थी, पर बार मालिक ने मुझे एक तरह से हड़का दिया। इंटरव्यू के दौरान उन्होंने पूछा, 'अगर कोई शराबी तुम्हारे साथ बदतमीजी करने लगे, तो तुम क्या करोगी?' मैंने जवाब दिया, 'चप्पलों से मार-मार कर उसका भुरता बना दूँगी।' बार मालिक हँसने लगा। उसने कहा, 'मेरे बार में बैंगन नहीं, अमीरजादे आते हैं। तुमने ऐसा करना शुरू कर दिया, तो मेरा तो बिजनेस ही चौपट हो जाएगा। फिर तुम्हारी तनखा कहाँ से आएगी?' उनकी बात एक तरह से सही थी। सो मैंने कहा कि कस्टमर ज्यादा बहकने लगा, तो मैं सुरक्षा कर्मचारियों को बुलाऊँगी। वह फिर हँसने लगा। उसने कहा, 'मेरे सुरक्षा कर्मचारी उसे नहीं, तुम्हें ही अपने साथ ले जाएँगे और उसे शराब सर्व करने के लिए दूसरी लड़की को लगा देंगे। मुझे कस्टमरों को नाराज नहीं करना है।' यह सुन कर मैंने कहा, 'तब मैं उसके सामने बिछ जाऊँगी और कहूँगी, सर, मैं आपकी ही हूँ, मुझे जितना खुश रखेंगे, आपको उतना ही फायदा होगा।' इस दफा बार मालिक ठठा कर हँसने लगा। बोला, 'मेरा मतलब यह नहीं था। मैं कहना यह चाहता हूँ कि हम सभी को इस तरह विहेव करना चाहिए, जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। आखिर हम बिजनेस करने निकले हैं, मुशायरा करने नहीं।' मैंने मुसकरा दिया और मेरी नियुक्ति हो गई।

मैंने पाया, कॉल सेण्टर की नौकरी बेहतर थी। वैसे, दोनों जगह ही रात की ड्यूटी होती है, पर उसमें बोरियत बहुत ज्यादा थी। यहाँ रोज नए-नए दृश्य देखने को मिलते थे। शराब पी कर कोई रोने लगता था, कोई बहुत ज्यादा हँसने लगता था। कोई गमगीन या गंभीर हो जाता था, तो किसी की जुबान ही बंद नहीं होती थी। मैं सब पर नजर रखती थी, पर सबसे निरपेक्ष हो कर ड्यूटी बजाती थी। एक दिन बार मालिक ने मुझे बुला कर पूछा, 'तुम्हारा

टर्नओवर इतना कम क्यों है? सुजाता, रेशमा, छाया वगैरह की मेजों से दस-बारह हजार रुपए का बिल बनता है, तुम्हारा बिल किसी भी दिन पाँच हजार से ऊपर नहीं गया। अगर यही हाल रहा, तो हमें रिप्लेसमेंट के बारे में सोचना होगा। वैसे तो तुम बड़ी स्मार्ट हो। तुम पिलाओ तो मैं खुद एक रात में दो-तीन हजार की पी जाऊँगा। पर लगता है, तुम्हारे कस्टमर तुमसे खुश नहीं रहते।' उस शाम मुझे पता लगा कि मेरा काम सिर्फ बार टेंडर का नहीं है, सेल्स गर्ल का भी है। मेरा मन रुआँसा हो गया।

एक दिन एक कस्टमर मुझसे मेरा नाम, पता पूछने लगा। वैसे तो मैं बहुत हिम्मती हूँ, पर उसकी आँखों में मैं जो पढ़ पा रही थी, उसने मुझे डरा दिया। आखिर में मुझे कहना पड़ा, 'सर, मैं बार की नौकरी करती हूँ, बस। मेरा नाम सपना है, पर मैं अपना पता किसी को नहीं देती।' इस पर वह मेरा मोबाइल नंबर माँगने लगा। मैंने बचने के लिए कह दिया, 'मेरे पास मोबाइल नहीं है।' उसने आँखें तरेर कर कहा, 'आजकल तो मजदूरनें भी मोबाइल रखती हैं। खैर, तुम बिल लाओ, मैं देख लूँगा।'

उस रात देर तक मुझे नींद नहीं आई।

उसके तीसरे दिन एक और कस्टमर ने गलत व्यवहार किया। मैं पेग ले कर उसके पास गई, तो वह मेरी आँखों में आँख डाल कर बोला, 'गिलास में थोड़ा-सा सोडा भी डाल दो।' जब मैं सोडा डाल रही थी, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। कहने लगा, 'अरे, अरे, ज्यादा सोडा मिला दिया। अब क्या खाक मजा आएगा! जाओ, एक पेग और लाओ।' मैं पेग ले कर गई, तो वह कहने लगा, 'देखो, जिंदगी में असली चीज है प्रपोर्शन। शराब में भी प्रपोर्शन ठीक होना चाहिए और औरत में भी। तभी पूरा मजा आता है।' झेंप भरी मुसकान के साथ मैं चलने को हुई, तो उसने हाथ के इशारे से मुझे रोक लिया और कहने लगा, 'इस संडे को क्या कर रही हो? मेरे साथ कुछ समय बिताओ, तो मैं और भी बहुत-सी जरूरी चीजें तुम्हें सिखाऊँगा।' दूसरी मेज की ओर इशारा कर कि वहाँ मेरी जरूरत है, मैं चल दी। पर वह बार बंद तक वहाँ बैठा रहा और कनखी से मुझे घूरता रहा। उस दिन मेरी सेल काफी ऊपर चली गई, पर मुझे अपने ऊपर ग्लानि भी उतनी ही हुई। मुझे लगा, मैं किसी बार में नहीं, चकलाघर में काम करती हूँ।

अगले दिन बार मालिक ने मुझे सैक कर दिया। उसने कहा, 'तुम्हारे खिलाफ कस्टमर्स की शिकायत बहुत है।' मैं पूछना चाहा कि 'और कस्टमर्स के खिलाफ मेरी शिकायतें?' पर मैं चुप रह गई। मैं जानती थी, वह यही कहेगा - 'कस्टमर इज आलवेज राइट।'

घर जा कर मुझे लगा कि मुझे सैक नहीं किया गया है, मैंने ही बार मालिक को सैक कर दिया है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एक विचित्र प्रस्ताव

राजकिशोर

कई वर्ष पहले एक कार्टून देखा था, जिसमें एक छोटा बच्चा एक किताब पढ़ रहा था। किताब का नाम था - बच्चों का पालन-पोषण कैसे करें। एक व्यक्ति ने उससे पूछा कि तुम यह किताब क्यों पढ़ रहे हो? बच्चे का जवाब था - यह देखने के लिए कि मेरा पालन-पोषण ठीक से हो रहा है या नहीं।

कुछ ऐसी ही घटना पिछले हफ्ते हुई। एक बड़ी अदालत में हत्या के एक अभियुक्त पर मुकदमा चल रहा था। सुनवाई के दौरान अभियुक्त ने हाथ जोड़ कर कहा, हुजूर, मैं इस अदालत का ध्यान एक खास बात की ओर खींचना चाहता हूँ। मेहरबानी कर इसकी अनुमति प्रदान की जाए।

जज उदार था। ऐसे मौकों पर आम तौर पर यह कहा जाता है - मुकदमे की कार्यवाही को बीच में बाधित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जब आपकी पारी आएगी, उस समय आपको जो भी कहना है, आप कह सकते हैं। अभी हम वकीलों की बहस सुन रहे हैं। इसके बजाय जज ने कहा, कहिए, आपको क्या कहना है।

अभियुक्त ने कहा, हुजूर हम लोगों ने एक संस्था का गठन किया है। उसका नाम है - भारतीय अभियुक्त संघ। संघ का उद्देश्य है देश भर में जितने मुकदमे चल रहे हैं, उनके अभियुक्तों के हितों की रक्षा। मुझे इस संघ का महासचिव नियुक्त किया गया है। संघ की ओर से मैं इस अदालत से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

जज - भारतीय अभियुक्त संघ? ऐसी किसी संस्था के बारे में मैंने कभी नहीं सुना। मैं नियम से शहर से प्रकाशित होनेवाले सारे अखबार पढ़ता हूँ। बल्कि सुबह अखबार पढ़ कर ही अदालत में आता हूँ। मैंने ऐसा कोई समाचार नहीं पढ़ा।

अभियुक्त - आपकी बात सही है। लेकिन इस मामले में हम संघ के लोग क्या कर सकते हैं? यह मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह समाज हित में सभी महत्वपूर्ण समाचारों को प्रकाशित करे। आप चाहें तो यह समाचार प्रकाशित नहीं करने के लिए मीडिया को डाँट लगा सकते हैं।

जज - अदालत का काम किसी को डाँट लगाना नहीं है। उसका काम है न्याय करना। न्याय की माँग यह है कि भारतीय अभियुक्त संघ की ओर से कही जानेवाली बातों पर गौर नहीं किया जाए। वह इस मुकदमे में पार्टी नहीं है। आप चाहें तो इस मुकदमे से संबंधित कोई ऐसी बात कह सकते हैं जिसका संबंध आपसे हो।

अभियुक्त - हुजूर, भारतीय अभियुक्त संघ की ओर से मैं जो कहना चाहता हूँ, उसका गंभीर संबंध इस मुकदमे से है।

जज - कहिए। अनुमति दी जाती है।

अभियुक्त - हुजूर, भारतीय अभियुक्त संघ के दस प्रतिनिधि इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और श्रीलंका, पाकिस्तान तथा नेपाल की यात्रा करना चाहते हैं। इसका सारा खर्च सरकार को वहन करना चाहिए, क्योंकि अभियुक्त इस स्थिति में नहीं हैं कि इन यात्राओं का खर्च अपने पास से वहन कर सकें। अदालत से प्रार्थना है कि वह सरकार को इन यात्राओं का प्रबंध करने का आदेश पारित करे।

जज - आपका यह अनुरोध, एक शब्द में कहा जाए, तो विचित्र है। दुनिया के किसी भी हिस्से में ऐसा हुआ हो, इसकी कोई चर्चा कानून की उन किताबों में नहीं है, जो मैंने पढ़ी हैं। क्या आप इस पर रौशनी डालेंगे कि संघ की ये यात्राएँ आपके मुकदमे को किस तरह प्रभावित करने जा रही हैं?

अभियुक्त - इन यात्राओं का उद्देश्य है, विभिन्न देशों की न्याय प्रणालियों का निकट से अध्ययन करना, वहाँ की अदालतों की कार्य विधि को देखना तथा अभियुक्तों से बातचीत करना। यह सब इसलिए जरूरी है कि भारत की अदालतों में अभियुक्तों के साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसकी तुलना अन्य सभ्य देशों के व्यवहारों से की जा सके। इस तुलना के बाद ही मैं समझ सकता हूँ कि मेरे साथ इस अदालत में जो व्यवहार हो रहा है, वह कितना आधुनिक, न्यायपूर्ण तथा तर्कसंगत है।

जज - क्या आपको इस अदालत से कोई शिकायत है?

अभियुक्त - हुजूर, ऐसा तो मैं सपने में भी नहीं सोच सकता।

जज - फिर भारतीय अभियुक्त संघ की ये यात्राओं क्यों? आपको पता है, इन पर सरकारी खजाने पर कितना बोझ पड़ेगा?

अभियुक्त - उससे बहुत कम, जितना खर्च माननीय उच्चतम न्यायालय के मानवीय न्यायमूर्तियों की विदेश यात्राओं पर आता है। एक बहु-पठित अखबार में प्रकाशित समाचार के अनुसार, केंद्रीय सरकार के विधि और न्याय विभाग ने 'सूचना का अधिकार' के तहत बताया है कि देश की सबसे बड़ी अदालत के चीफ जस्टिस ने 2005 से अब तक कुल बारह यात्राएँ की हैं। इन यात्राओं के दौरान सिर्फ विमान किराए पर 75.3 लाख रुपए खर्च हुए। इसी तरह शीर्ष कोर्ट के कुछ अन्य जजों ने भी विदेश यात्राएँ कीं, जिनके खर्च का कुल योग करोड़ों रुपयों में पहुँचता है। जाहिर है, ये यात्राएँ मौज-मस्ती के लिए तो की नहीं गई होंगी। उन देशों की न्याय प्रणाली का अध्ययन करने के लिए की होंगी। जब न्यायमूर्ति लोग न्याय प्रणाली के बारे में और अधिक जानने के लिए विदेश यात्राएँ कर सकते हैं, तो अभियुक्तों के हितों की दृष्टि से भारतीय अभियुक्त संघ के प्रतिनिधि ऐसा क्यों नहीं कर सकते? कानून की नजर में हर कोई बराबर है।

जज - आप अदालत की तौहीन कर रहे हैं। हमारे माननीय न्यायमूर्तियों के आचरण पर टिप्पणी कर रहे हैं। आपकी माँग रद्द की जाती है। साथ ही, आपने अदालत का कीमती वक्त बरबाद किया, इसके लिए आप पर एक

अलग मुकदमा चलाने का आदेश दिया जाता है। आज की कार्यवाही यहीं खत्म होती है।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

एंकर के लिए इंटरव्यू

राजकिशोर

टीवी कुमारी ने जब इंटरव्यू कक्ष में प्रवेश किया, तो वहाँ की रोशनी थोड़ी-सी और बढ़ गई। उसे देखते ही लगता था कि वह निकली तो थी किसी फिल्म की शूटिंग के लिए, पर पता नहीं क्या सोच कर वह इस टीवी चैनल में आ गई। शायद ईश्वर ने उसे भेजा ही था टीवी पर एंकरिंग करने के लिए। यह भी हो सकता है कि ईश्वर ने उसे किसी और काम के लिए भेजा हो, पर उसने तय कर लिया हो कि उसे एंकरिंग ही करनी है और अपने को इस योग्य बनाने में उसने अपनी सारी प्रतिभा झोंक दी हो। नतीजा सामने था। परीक्षण के लिए उस टीवी चैनल के तीन अधिकारी उपस्थित थे- बाएँ, दाएँ और मध्य में।

पहला सवाल मध्य ने किया - तो आप एंकर बनना चाहती हैं! कुमारी ने जवाब दिया - यस, सर। बाएँ ने पूछा - लेकिन क्यों? टीवी में और काम भी तो होते हैं। कुमारी - सर, एंकरिंग में ग्लैमर है, पैसा है और अपने को साबित करने का मौका भी। मुझे एंकरिंग करना बहुत पसंद है। अब दाएँ की बारी थी - आपने पत्रकारिता की पढ़ाई कहाँ से की है? कुमारी ने बताया - सर, विवेकानंद स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से। दायाँ - विवेकानंद के बारे में आप कुछ बता सकती हैं? कुमारी - वे आरएसएस के बहुत बड़े नेता थे। दायाँ, बायाँ और मध्य तीनों एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकराए। बायाँ - उनकी मेन टीचिंग क्या थी? कुमारी के चेहरे पर हलकी-सी छाया पड़ी, पर उसने जल्द ही अपने को उबार लिया - सर... सर... वे पगड़ी पहनते थे। उनका चेहरा गोल-सा था। पर्सनालिटी बहुत ही रोबीली थी। सभी उनकी इज्जत करते थे। मध्य से नहीं रहा गया। उसने पूछा - अगर आपको स्वामी विवेकानन्द से इंटरव्यू करना पड़े, तो आप पहला सवाल क्या पूछेंगी? टीवी कुमारी कुछ देर तक सोचती रही। फिर उसने कहा - सर, मेरे पास दो सवाल हैं। इनमें से जो भी आप लोग पसंद करेंगे, वहीं मैं उनसे पूछूँगी। नंबर एक, बाबरी मस्जिद गिराने के बाद आपका अगला कार्यक्रम क्या है? राम मंदिर के कंस्ट्रक्शन में इतनी देर क्यों हो रही है? नंबर दो, पहले आपके जीवन से ही शुरू करते हैं। अच्छा यह बताइए कि आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया? क्या आपके जीवन में कभी कोई लड़की नहीं आई? इंटरव्यू लेने वाले खुल कर हँसने लगे। टीवी कुमारी ने इसे अपनी सफलता समझा।

मध्य ने बात आगे बढ़ाई - तो आप मानती हैं कि प्रत्येक पुरुष की जिंदगी में किसी लड़की का आना जरूरी है? बायाँ और दायाँ थोड़ा चौकन्ने हो गए। टीवी कुमारी मुसकराई। उसने कहा - सर, मेरे मानने-न मानने से क्या होता है? यह तो एक फैक्ट है। मध्य - तब तो इसका उलटा भी सही होगा। इन अदर वर्ड्स, प्रत्येक लड़की की जिंदगी में किसी लड़के का आना भी जरूरी है। कुमारी थोड़ा सावधान हुई। आगे पानी गहरा था। उसने कहा - इस बारे में मैं क्या कह सकती हूँ? अपनी-अपनी च्वाइस है। बायाँ - आपकी अपनी च्वाइस क्या रही है? टीवी कुमारी ने अपने को असमंजस में पाया। अभी तक उसकी शादी नहीं हुई थी। सच का सामना करने में कठिनाई थी। उसने

कहा - सर, यह मेरा प्राइवेट मामला है। इस बारे में मैं कुछ कहना नहीं चाहती। दायाँ बहुत देर से चुप था। उसने जानना चाहा - लेकिन टीवी इंडस्ट्री में तो कोई भी मामला किसी का प्राइवेट मामला नहीं होता। फिर तो यहाँ आपको बहुत मुश्किल होगी! कुमारी - जब मैं टेंथ में पढ़ती थी, तभी से यह कहावत मुझे याद है - लिव इन रोम एज रोमंस डू। इसलिए मुझे कहीं परेशानी नहीं होती। मध्य - क्या आपको पता है कि टीवी की दुनिया में क्या होता है? कुमारी - कुछ-कुछ पता है। लेकिन मैं हर चीज को एक चैलेंज की तरह लेती हूँ। बायाँ - बाप रे, फिर तो आप लड़ाकू किस्म की लड़की होंगी। कुमारी - चाहे जो कह लीजिए। वैसे मुझे लड़ने के मुकाबले एडजस्टमेंट करना ज्यादा पसंद है। मैं जानती हूँ कि मेरे चाहने से तो दुनिया बदलेगी नहीं। बदलना तो मुझे ही होगा। मध्य - यहाँ आप किस लेवेल तक समझौता करने को तैयार हैं? कुमारी कुछ बोलना चाहती थी, पर अचानक चुप हो गई। कुछ क्षणों के बाद उसने सिर थोड़ा-सा झुका लिया।

मध्य ने टीवी कुमारी को आश्वस्त करना चाहा - आप शरमाइए मत। हमारे यहाँ वह सब नहीं होता जिसके लिए दूसरे चैनल बदनाम हैं। यहाँ का माहौल बहुत डीसेंट हैं। आपके कंसेंट के बिना कोई आपको छू भी नहीं सकता। सेक्सुअल हैरसमेंट के कारण हमने अभी-अभी दो एडिटरों को निकाला है। टीवी कुमारी ने अब अपना सिर थोड़ा-सा उठाया। होंठों पर हलकी-सी मुस्कराहट भी आ गई थी, जो बता रही थी कि उसे विषयवस्तु से नहीं, अभिव्यक्ति की शैली से समस्या थी। उधर मध्य जारी था - यह और बात है कि हम किसी पर रिस्ट्रिक्शन भी नहीं लगाते। फ्री मिक्ंिसग के बिना टीवी चैनल चल ही नहीं सकते। समझौते से हमारा मतलब यह था कि आपको एंकर बने रहने के लिए फिजिकल फिटनेस पर बहुत ध्यान देना होगा। अपना वेट मेनटेन करना होगा। आप समझ सकती हैं, यह शो बिजनेस है। यहाँ अपीयरेंस का बहुत महत्व है। टीवी कुमारी - यह सब तो मैं अभी ही करती हूँ। आगे भी करती रहूँगी। इसमें कोई मुश्किल नहीं होगी। दायाँ - देर तक रुकना पड़ सकता है। नाइट ड्यूटी लग सकती है। स्टाफ के साथ बाहर ट्रैवल करना पड़ सकता है। यह सब तो आप जानती ही होंगी। कुमारी - जी, मुझे पता है। मध्य - तो ठीक है, आप जाइएगा नहीं। बाहर ही इंतजार कीजिए। तब तक हम कुछ और इंटरव्यू ले लेते हैं।

टीवी कुमारी कमरे से निकल रही थी, तो उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। उसके बाहर जाने के बाद परीक्षकों में से एक ने कहा - तैयार चीज है! इस पर ज्यादा काम नहीं करना होगा!

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कुछ और भत्ते

राजकिशोर

औरत जब खुश होती है तो कहती है, धत्त। नेता जब अपने को चुनाव की देहरी पर पाता है तो वह कहता है, भत्त। कहते हैं, भत्त से ही भत्ता शब्द बना है। चुनाव में हार से बचने के लिए नेता भत्ता बाँटने लगता है। कुछ दलों ने भत्ते का अर्थ भात लगाया है। वे चुनाव के पहले दो रुपया या एक रुपया किलो चावल देने का आश्वासन देने लगते हैं। चावल भात का ही असिद्ध रूप है। सिद्ध हो जाने पर यानी पक जाने पर वह भात बन जाता है। कई बार चावल पूरी तरह पक नहीं पाता। तब वह अपच पैदा करता है और नेता चुनाव हार जाता है। इसके ताजा और मार्मिक संस्मरण सुनने हों तो जयललिता से मिलना चाहिए। वे आजकल काफी फुरसत में हैं।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव को इस तरह की फुरसत बिलकुल पसंद नहीं है। उनके मुख्य सभासद अमर सिंह फुरसत के राजा हैं। जो-जो काम फुरसत में किए जाते हैं, उन्हें ही करने में अमर सिंह अपने को व्यस्त रखते हैं। लेकिन मुलायम सिंह को यह विकल्प उपलब्ध नहीं है। वे जानते हैं कि उनके इर्द-गिर्द सिंहों और सिंहनियों की भीड़ तभी तक कायम रहेगी जब तक वे उत्तर प्रदेश विधानसभा के नेता बने रहेंगे। सो उन्होंने अगले चुनाव की तैयारी अभी से शुरू कर दी है।

इस दिशा में उनकी पहली कोशिश यह है कि उनके राज्य में दो-चार सभासदों को नहीं, उन सभी को भत्ता मिलना चाहिए जो बीए, एमए होने के बाद भी फुरसत के शिकार हैं। यह फुरसत अमर सिंह वाली फुरसत नहीं है, जिसमें सत फुर्र से उड़ जाता है। यह वह फुरसत है, जिसमें सत के अभाव में आदमी की आत्मा फुर्र-फुर्र करती रहती है, पर उड़ नहीं पाती। इनमें से सात लाख तीन सौ बावन आत्माओं के परों पर एक-एक हजार रुपए का चेक रख कर मानवीय नेताजी ने देश में बेकारी भत्ता आंदोलन की शुरुआत कर दी। लोहिया का नारा था, काम दो, नहीं तो बेकारी भत्ता दो। मुलायम सिंह का नारा है, काम मत दो, सिर्फ बेकारी भत्ता दो। बेरोजगारी की समस्या का कितना सुंदर समाधान है! मुलायम सिंह के रास्ते पर अन्य सरकारें भी चलने लगें, तो देश में बेरोजगारी रह कर भी नहीं रह जाएगी।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री से निवेदन है कि उन्हें बेरोजगारों की तरह समाज के दूसरे वर्गों का भी ध्यान रखना चाहिए। आखिर वोट देने वे भी जाते हैं। या भविष्य में उनसे भी काम पड़ेगा। इसलिए मुलायम सिंह को कुछ और वर्गों के लिए भी भत्ते की घोषणा करनी चाहिए। तभी बेकारी भत्ता कोई आकस्मिक या अवसरवादी फैसला नहीं, बल्कि एक समग्र भत्ता नीति का आवश्यक अंग जान पड़ेगा। ये भत्ते और क्या हो सकते हैं? कुछ की कल्पना यहाँ की जाती है।

गाँव में रहने का भत्ता : यह भत्ता उत्तर प्रदेश के लिए बहुत ही माकूल है। राज्य के उद्योगीकरण की दिशा में मुलायम-अमर के भगीरथ प्रयत्नों के बावजूद उत्तर प्रदेश अब भी कृषिप्रधान राज्य है। ज्यादातर लोग गाँवों में ही रहते हैं, जहाँ एकमात्र अभाव बिजली का ही नहीं है। होशियार लोग शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं। जो गाँव में बचे रह जाते हैं, उन्हें जिंदा रहने के लिए तरह-तरह की होशियारी करनी पड़ती है। इनके जीवन को सुकर बनाने के लिए उन्हें गाँव में रहने का भत्ता जरूर मिलना चाहिए।

अशिक्षित होने का भत्ता : शिक्षित होना सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके बावजूद अन्य जरूरी कामों में व्यस्त रहने के कारण राज्य सरकार सभी के लिए शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर पाई। इसका उचित दंड यही है कि वह उन सभी को भत्ता दे, जो नहीं चाहते हुए भी अशिक्षित हैं। जिन्होंने अपनी मर्जी से अशिक्षित होने का विकल्प चुना है, उनकी बात अलग है। सरकार चाहे तो उन पर अशिक्षा-कर लगा सकती है।

चुनाव में हारने का भत्ता : लोकतंत्र का सुख सभी को उपलब्ध होना चाहिए। उन्हें तो यह सुख मिलता ही है जो चुनाव जीत जाते हैं, उन्हें भी मिलना चाहिए जो चुनाव हार जाते हैं। यह भत्ता इसलिए भी जरूरी है कि जो आज चुनाव जीत रहा है, वह कल चुनाव हार भी सकता है। ऐसे हारे हुए व्यक्तित्व भी चुनाव मैदान में बने रहें, तभी हम यह दावा कर सकते हैं कि हमारा लोकतंत्र जीवंत है।

खास बात यह है कि यह भत्ता अभी से शुरू हो गया, तो हो सकता है अगले चुनाव के बाद इसका सबसे ज्यादा लाभ समाजवादी पार्टी के उम्मीदवारों को ही मिले।

दल-बदल भत्ता : पिछले कई चुनावों से उत्तर प्रदेश में सरकार बनाने में दल-बदलुओं की निर्णायक भूमिका रही है। इनके बगैर कोई भी मुख्यमंत्री सरकार नहीं बना पाया है या बना पाया है, तो चला नहीं पाया है। लेकिन कई बार दल-बदल करने वालों को विधानसभा की सदस्यता से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए लोकतंत्र के हित में यह आवश्यक है कि हर दल-बदलू को तब तक एक सम्माननीय भत्ता मिले, जब तक वह मंत्री नहीं बन जाता। इसमें यह शर्त भी रखी जा सकती है कि पाँच वर्ष के एक टर्म में किसी भी विधायक को यह भत्ता एक बार के दल-बदल के लिए ही मिलेगा।

अपुरस्कृत भत्ता : उत्तर प्रदेश की सरकार हर साल लेखकों को इतने अधिक पुरस्कार देती है कि किसी के छूट जाने की आशंका नहीं रह जाती। फिर भी लेखकों की तादाद इतनी ज्यादा है कि कुछ न कुछ रह ही जाते हैं। ऐसे सभी लेखकों को तब तक अपुरस्कृत भत्ता दिया जाना चाहिए जब तक उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार से कोई पुरस्कार न मिल जाए। एक और भत्ते की सिफारिश करने का मन करता है...न लिखने का भत्ता, पर डर इस बात का है कि इस भत्ते के लोभ में कहीं ऐसा न हो कि हिन्दी का सारा लेखन ही ठप हो जाए।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कुछ नई परिभाषाएँ

राजकिशोर

साहित्यकार : पुराने जमाने का लेखक, जो अब भी किसी-किसी शहर में पाया जाता है; ऐसा लेखक, जिसका सम्मान उसकी उम्र के कारण किया जाता है; वह लेखक, जिसकी पुस्तकें पाठ्यक्रम में लगी हों; सम्मान, पुरस्कार आदि देने के लिए सबसे सुरक्षित नाम।

लेखक : जो कभी-कभी लिखता है; जो साहित्यिक गोष्ठियों में आता-जाता है; जिसका नाम समय-समय पर जारी होने वाले वक्तव्यों में अनिवार्य रूप से शामिल रहता है; जो किसी लेखक संघ का सदस्य है।

आलोचक : जो कविता, कहानी, उपन्यास आदि नहीं लिख सकता, फिर भी लेखक कहलाना चाहता है; जो किसी भी पुस्तक में दोष निकाल सकता है; जिसकी भाषा लेखकों की भी समझ में न आए; जिससे लेखक मन ही मन घृणा करता है, पर जिसे प्रसन्न रखने की पूरी कोशिश करता है; जो समकालीन रचनाएँ नहीं पढ़ता; विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग का प्रोफेसर।

गुट : लेखकों का गिरोह; एक-दूसरे की तारीफ करने के लिए स्थापित किया गया वह समूह, जिसकी अध्यक्षता कोई बुजुर्ग लेखक करता है; जिसके एक सदस्य पर हमला होते ही पूरा समूह टूट पड़ता हो, साहित्य में संप्रदायवाद।

पत्रिका : अपनी भड़ास निकालने के लिए प्रकाशित की गई पंजिका; जिसकी रचनाएँ कहीं और न छपती हों, ऐसे लेखक द्वारा निकाला गया नियमित पत्र; एक नशा, जो जल्दी नहीं छूटता; घर फूँक तमाशा देखने की साहित्यिक शैली।

अनियतकालीन : वह पत्रिका, जिसके प्रकाशन में एक प्रकार की नियमितता हो; ऐसी पत्रिका जो पर्याप्त विज्ञापन जुट जाने पर ही निकाली जाती है।

पारिश्रमिक : जिसे देने का वादा किया जाए; वह न्यूनतम राशि, जिससे लेखक की स्टेशनरी का खर्च निकल आए; कोलकाता के एक सांस्कृतिक संस्थान द्वारा दिए गए अनुदान का लघुतम अंश; वह राशि, जिसके कारण सरकारी पत्रिकाओं में रचनाओं की कमी नहीं होती।

प्रकाशक : वह व्यक्ति, जो पुस्तकें छापने और बेचने का ऐसा धन्धा करता है जिसके लिए सिर्फ साक्षर होना काफी है; लेखन से ज्यादा लाभप्रद कार्य; लेखकों का 'मेरा दोस्त मेरा दुश्मन', वह व्यापारी जिसे बड़े लेखक अपने

घर बुलाते हैं और जो छोटे लेखकों को अपने दफ्तर में बुलाता है; गरीब लेखक और गरीब पाठक के बीच की वह कड़ी, जो लगातार संपन्न होता जाता है।

पुस्तक : दोनों तरफ जिल्द से बँधे हुए काले-सफेद पन्ने, जिनकी संख्या तय करती है कि कौन कितना बड़ा लेखक है; जिसे छपवाने के लिए प्रकाशक को पैसे देना अनिवार्य न हो; जिसका पहला और आखिरी पाठक उसका प्रूफरीडर हो।

पाठक : विलुप्त हो रहे जीवों में अग्रणी; जो किताबें खरीद कर पढ़ना नहीं चाहता; जिसकी तलाश में लेखक मारे-मारे फिरते हैं; जो कभी-कभी पुस्तक मेले में प्रकट होता है; जिसके नाम पर, जिसके लिए नहीं, साहित्य लिखा जाता है।

पाठिका : जो हर लेखक का सपना है, पर किसी-किसी को ही नसीब होती है; जिसका एक पत्र पचास पाठकों के पत्रों पर भारी पड़ता है; जो अक्सर कस्बों में पाई जाती है; और महानगरों से जुड़ना चाहती है; वह युवती, जो लेखक बनना चाहती है, जिसके नाम पर कई खिलंदड़े पाठक लेखकों की नींद हराम कर देते हैं।

फ्लैप : एक से दो पृष्ठ की वह सामग्री, जिसमें लेखक को अपनी प्रशंसा खुद करने की अपरिमित छूट होती है; पुस्तक के बारे में प्रकाशक द्वारा लिखवाई गई वह सामग्री, जिसका अर्थ उस पुस्तक का लेखक भी नहीं समझता, जिसे पढ़ कर गागर में सागर है या सागर में गागर, यह तय करना मुश्किल हो जाए।

विशेषांक : वह भारी-भरकम अंक, जिसके संपादन का कष्ट संपादक स्वयं नहीं उठाना चाहता।

वार्षिक शुल्क : उन लोगों से वसूल की जाने वाली वह रकम, जिन्हें पत्रिका मुफ्त भेजना संपादक को अपने हित में नहीं लगता।

पहला संस्करण : अकसर अंतिम संस्करण।

पुस्तक समीक्षा : जिसे लिखने के लिए किसी प्रकार की विशेषज्ञता जरूरी न हो; ऐसी समीक्षा जो पुस्तक पढ़े बिना की जा सकती हो; फ्लैप की सामग्री का सरल भाषा में अनुवाद।

लेखिका : लेखक बनने की इच्छा रखने वाली स्त्री; संपादकों के इर्द-गिर्द पाई जाने वाली स्त्री, आलोचकों द्वारा बनाया गया मिथक, जो कभी-कभी यथार्थ में बदल जाता है।

राष्ट्रीय संगोष्ठी : वह संगोष्ठी, जिसमें दिल्ली, भोपाल और लखनऊ के लेखक भाग लेते हैं।

प्रगतिशील : जो जनवादी नहीं है।

जनवादी : जो प्रगतिशील नहीं है।

जन संस्कृतिवादी : जो न प्रगतिशील है और न जनवादी।

कलावादी : एक साहित्यिक गाली; गैर-मार्क्सवादी लेखक; अंतर्वस्तु से अधिक शिल्प पर ध्यान देने वाला कवि। स्त्री सौन्दर्य पर रीझने वाला और अपने को ऐसा बताने वाला (भी) कवि।

दलित साहित्य : आत्मकथा का एक विशेष प्रकार; वह साहित्य जो दलितों द्वारा गैर-दलितों के लिए लिखा जाता है।

नारीवाद : पुरुषों का ध्यान आकर्षित करने के लिए स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला विशेष प्रकार का लेखन; जाति प्रथा का नया संस्करण, जिसमें सिर्फ दो जातियों - पुरुष और स्त्री - का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है; वह पुरुष विरोधी कार्रवाई, जो परिवार के बाहर की जाती है।

रॉयल्टी : प्रकाशक द्वारा प्रसिद्ध लेखकों को दी जाने वाली वार्षिक राशि; वह राशि जो अपेक्षा से हमेशा कम होती है; वह राशि, जिसकी नए लेखकों को कामना भी नहीं करनी चाहिए; वह शब्द, जो अधिकतर प्रकाशकों की डिक्शनरी में नहीं पाया जाता।

लोकार्पण : दिल्ली के लेखकों की आत्मरति का एक नमूना; विज्ञापन का खर्च किए बगैर पुस्तक का विज्ञापन करने की प्रकाशकीय विधि; पीने-पिलाने के जुगाड़ की भूमिका।

पुरस्कार : जो दिया नहीं, लिया जाता है; जो एक बार मिलता है तो मिलता ही जाता है; वृद्ध लेखकों को मिलने वाली एकमुश्त पेंशन; जिन्हें नहीं मिलती, वे घोषणा करते रहते हैं कि मैं पुरस्कार नहीं लेता; जिसके बारे में सबको पता होता है कि इस बार वह किसे मिलने जा रहा है।

महत्तर सदस्यता : दिल्ली के वयोवृद्ध लेखकों को साहित्य अकादेमी द्वारा दिया जाने वाला अन्तिम सम्मान; वह सम्मान जिसे पाने के बाद लिखना जरूरी नहीं रह जाता; जिसे पाए बिना अनेक लेखक गुजर जाते हैं।

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

कभी अलविदा न कहना

राजकिशोर

राज्य सभा के नव निर्वाचित सांसद जॉर्ज फर्नांडिस के सोने का समय हो गया था। दो-तीन लोग उन्हें सहारा दे कर बिछौने तक ले जा रहे थे। तभी बैठकखाने से आ कर सेवक ने खबर दी कि सरदार बूटा सिंह मिलने आए हैं। जॉर्ज ने इशारे से पूछा, ये कौन हैं? सहयोगियों ने बूटा सिंह के बारे में बताया। तब भी जॉर्ज के चेहरे पर विस्मय के निशान बने रहे, तो एक सहयोगी ने उन्हें बूटा सिंह का फोटो दिखाया, जो उसी दिन के अखबार में छपा था। फोटो देखते ही जॉर्ज ने पहचान लिया। उनके चेहरे पर खुशी के निशान प्रगट हुए। उन्होंने पीछे मुड़ने की कोशिश की, ताकि बैठकखाने में जा कर बूटा सिंह का स्वागत कर सकें। पर विशेष सफलता नहीं मिली, क्योंकि सहयोगी उन्हें कस कर पकड़े हुए थे। सहयोगियों ने समझाया कि आप सोने के कमरे में ही चलिए, बूटा सिंह को वहीं ले आते हैं।

बूटा सिंह ने जॉर्ज फर्नांडिस को आदरपूर्वक नमस्कार किया। जॉर्ज ने उन्हें और नजदीक आने को कहा। बूटा सिंह आगे बढ़े। जॉर्ज ने उन्हें गले लगा लिया। बूटा सिंह की आँखों में आँसू आ गए। अपनी पगड़ी सँभालते हुए उन्होंने कहा, देखिए, मेरे बेटे को फँसाया जा रहा है। हमारे दुश्मन उसकी जिंदगी तबाह करने की कोशिश कर रहे हैं। जॉर्ज ने कुछ शब्दों से, कुछ हावभाव से कहा, वे ठीक कर रहे हैं। भ्रष्टाचार के साथ कोई समझौता नहीं किया जा सकता। बूटा सिंह हैरत में पड़ गए। बूटा सिंह ने कहा, आप भी ऐसा कहते हैं? इस तरह के आरोप तो आप पर भी लगाए जा चुके हैं। जॉर्ज ने उसी शैली में जवाब दिया, अच्छे नेता को इस तरह के आरोपों का सामना करने की कला आनी चाहिए। बूटा सिंह की बाँछें खिल गईं। बोले, आपसे मुझे इसी की उम्मीद थी।

इसके बाद बूटा सिंह जॉर्ज फर्नांडिस को बधाई देने लगे। बोले, मैं तो इतनी रात को छिप कर आपको हार्दिक बधाई देने आया था। राज्य सभा का सदस्य बन कर आपने अनुकरणीय कदम उठाया है। दूसरा कोई नेता होता, तो हिचकता। वह सोचता, अब इस उम्र में और इस हालत में सांसद क्या बनना। बहुत दिनों तक सांसदी कर ली। मंत्री भी रह लिए। घर में सब कुछ है। कोई कमी नहीं है। तबीयत भी ठीक नहीं रहती। न कुछ सुना जाता है, न बोला जाता है। लोगों को पहचान भी नहीं पाता। याददाश्त बिल्कुल चली गई है। कुछ याद नहीं रहता। अखबार तक नहीं पढ़ पाता। ऐसे हालात में संसद में बैठ कर क्या करूँगा? अभी तक मैं दूसरों पर हँसता रहा हूँ, अब दूसरे मुझ पर हँसेंगे। घर पर ही मैं ठीक हूँ।

जॉर्ज फर्नांडिस की कातर आँखें गीली हो आईं। लग रहा था, अब रोए कि तब रोए। सरदार बूटा सिंह ने उन्हें सँभाल लिया। बोले, जॉर्ज साहब, मैं आपको बहुत-बहुत बधाई देता हूँ कि आप इस फालतू की बकवास में नहीं पड़े। यह सोच औसत दर्जे के नेताओं का है। असल में ये डरपोक किस्म के लोग हैं। सोचते हैं, दुनिया क्या कहेगी? अरे,

दुनिया क्या कहेगी? दुनिया वही कहेगी जो हम कहेंगे। आप औसत आदमी नहीं हैं। शेर हैं, शेर। बुढ़ापे में शेर गीदड़ नहीं हो जाता। वह शेर ही रहता है। शेर ही तय करता है कि संसद में किस रास्ते से जाएगा। आपने राज्य सभा का ऑफर ठुकरा कर शेर की तरह लोक सभा का चुनाव लड़ा। कामयाबी नहीं मिली तो आप शेर की तरह राज्य सभा में आ गए। आप जैसे नेताओं को देख कर हम जैसे मामूली लोगों का भी हौसला बढ़ता है।

यह सुन कर जॉर्ज के बदन में ऐसी ताकत आ गई कि उन्होंने बूटा सिंह को खींच कर फिर गले लगा लिया। उनकी पीठ थपथपाते हुए साफ शब्दों में बोले, नहीं, बूटा सिंह जी, आप मामूली आदमी नहीं हैं। आपका यह बयान मुझे बहुत पसंद आया कि मैं जान दे दूँगा, पर इस्तीफा नहीं दूँगा। क्या बात है! आज तक किसी ने भी इतना उम्दा जुमला नहीं कहा है। जान दे दूँगा, इस्तीफा नहीं दूँगा। क्या कहने! नेता वही है जो जान हथेली पर ले कर चलता है। ऐसे ही हिम्मतवालों की वजह से हमें आजादी मिली है। अगर वे कहते कि आजादी मिले या न मिले, मैं जान नहीं दे सकता, तो हम अभी तक गुलाम ही रहते। आपका यह हिम्मत भरा बयान सुन कर मुझे बहुत अच्छा लगा। क्या बात है! जान दे दूँगा, पर इस्तीफा नहीं दूँगा। मैं तो जब से राजनीति में आया, तभी से जान हथेली पर ले कर चलता आया हूँ। बड़ौदा डायनामाइट काण्ड के बारे में तो आपने सुना ही होगा। बूटा सिंह जी, आपने बहुत हिम्मत का काम किया है। मैं आपको बधाई देता हूँ।

बधाइयों के आदान-प्रदान के बाद बूटा सिंह जॉर्ज की कोठी से बाहर आए, तो जम्मू और कश्मीर के मुख्यमंत्री ओमर अब्दुल्ला पर उनकी नजर पड़ी। ओमर किसी वजह से अपनी गाड़ी के बाहर खड़े थे। बूटा सिंह ने लपक कर उनका हाथ अपने हाथ में लिया और बोले, बधाई अब्दुल्ला साहब, दिली बधाई। आपने कमाल कर दिया। मैडम महबूबा की अच्छी काट निकाली। आपने सीएम के पोस्ट से इस्तीफा दे दिया और सीएम भी बने रहे।

ओमर अब्दुल्ला झेंप गए। उन्होंने झुक कर सलाम किया और अपनी गाड़ी की ओर बढ़ चले।

शीर्ष पर जाएँ